उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

MAJY-204

संहिता स्कन्ध

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

पाठ्यक्रम निर्माण समिति एवं अध्ययन समिति

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**3**	**1, 2, 3, 4**
डॉ. देशबन्धु असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वास्तुशास्त्र विभाग श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नईदिल्ली	**4**	**1, 2, 3, 4, 5, 6**

प्रकाशन वर्ष - 2020

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: - सहारनपुर इलेक्ट्रिक प्रेस, सहारनपुर, (उ.प्र.)

ISBN NO. -

संहिता स्कन्ध **MAJY-204**

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – संहिता स्कन्ध	**पृष्ठ - 2**
इकाई 1: संहिता ज्योतिष का परिचय	3 -12
इकाई 2: दैवज्ञ लक्षण	13-23
इकाई 3: ग्रहचार विवेचन	24-42
इकाई 4: ग्रहवर्ष फल विवेचन	43-56
इकाई 5: नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण	57-67
द्वितीय खण्ड – वृष्टि एवं आपदा	**पृष्ठ-68**
इकाई 1: वृष्टि के कारक	69-83
इकाई 2: मेघ गर्भ लक्षण	84-97
इकाई 3: वृष्टि विचार एवं वृष्टि भंग योग	98-109
इकाई 4: प्राकृतिक आपदा का विवेचन	110-131
इकाई 5: दकार्गल विचार	132-156
तृतीय खण्ड – विभिन्न चार फल विचार	**पृष्ठ- 157**
इकाई 1: रवि, चन्द्र, भौम, बुध चार फल	158-172
इकाई 2: गुरू, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु चार फल	173-188
इकाई 3: अगस्त्य चार फल	189-201
इकाई 4: सप्तर्षि चार फल	202-215
चतुर्थ खण्ड – वास्तु विचार	**पृष्ठ-216**
इकाई 1: वास्तु शास्त्र का स्वरूप, प्रवर्त्तक एवं आचार्य	217-238
इकाई 2: वास्तु पुरूष की अवधारणा	239-254
इकाई 3: भूमि लक्षण शोधन	255 –295
इकाई 4: खात, वास्तु पद विन्यास, पिण्ड निर्माण एवं द्वार विन्यास	296-315
इकाई 5: गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त	316-334
इकाई 6: गृहसमीप वृक्षादि विवेचन	335-351

एम.ए. (ज्योतिष)

द्वितीय वर्ष – चतुर्थ पत्र

संहिता स्कन्ध

MAJY-204

खण्ड - १
संहिता स्कन्ध

इकाई - १ संहिता ज्योतिष का परिचय

इकाई की संरचना

१.१. प्रस्तावना
१.२. उद्देश्य
१.३. संहिता ज्योतिष - सामान्य परिचय
१.४ संहिता ज्योतिष के प्रवर्त्तक व आचार्य
१.४.१ संहिता ज्योतिष के प्रमुख विषय
१.५. सारांश
१.६. पारिभाषिक शब्दावली
१.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
१.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
१.९. सहायक पाठ्य सामग्री
१.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

१.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – संहिता ज्योतिष का परिचय। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख गणित एवं होरा या फलित स्कन्ध का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

संहिता ज्योतिष किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

अत: आइए हम सब संहिता ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

१.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि संहिता ज्योतिष किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि संहिता ज्योतिष का इतिहास क्या है ।
- संहिता ज्योतिष के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- संहिता ज्योतिष के महत्व को समझा सकेंगे ।
- संहिता ज्योतिष में विशेष को प्रतिपादित कर सकेंगे। ।

१.३. संहिता ज्योतिष : सामान्य परिचय

ज्योतिष शास्त्र के प्रधान तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता और होरा। इन प्रधान स्कन्धत्रय में से जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको **'संहिता'** कहते हैं। संहिता ज्योतिष में बिन्दु से सिन्धु तक, व्यक्ति से समष्टि तक, भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक, ग्रह-नक्षत्र-तारादिपिण्डों से लेकर धूमकेतु, उल्कादि पिण्डों तक, वृष्टि- कृषि-पर्यावरणादि से लेकर समस्त सृष्टि पर्यन्त की यात्रा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संहिता ज्योतिष में विश्व के समस्त पदार्थ

समाहित हैं। अत्यन्त विस्तृत और विहंगम है संहिता ज्योतिष का क्षेत्र। सृष्टि के आरम्भ में जब जीव संसार के नये-नये अनुभवों को लेकर कार्य क्षेत्र में आता है तो कठिनाईयों का समाधान तथा अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति विभिन्न रीतियों से करता है। उन्हीं सम्बन्धों का अनुबन्ध स्वरूप प्रथम संहिता शास्त्र ज्योतिष का आविर्भाव हुआ। इसमें स्वप्न द्वारा शुभाशुभ फलों का ज्ञान, स्वर ज्ञान के द्वारा शुभाशुभ ज्ञान, अंगस्फुरण, पल्लीपतन, ग्रहचार, शुभ शकुन, उत्पातदर्शन, वृष्टि ज्ञान, सामुद्रिक विद्या आदि के द्वारा शुभाशुभ ज्ञानादि का विस्तृत विवेचन मिलता है।

संहिता ज्योतिष के बारे में बतलाते हुए आचार्य वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ 'वृहत्संहिता' में भी कहा है –

ज्योति: शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं।
तत्कात्स्नर्योपनस्य नाम मुनिभि: संकीर्त्यते संहिता।।

यहाँ तत्कात्स्नर्योपनस्य का अर्थ बताते हुए आचार्य कहते हैं– ''तस्य ज्योति:शास्त्रस्य कात्स् न्र्येन निरवशेषेणोपनय: कथनं यस्मिन् शास्त्रे तच्छास्त्रं संहितेति मुनिभिर्गर्गादिभिर्नाम संकीर्त्यते कथ्यते।'' जैसा कि भगवान गर्ग का भी वचन है -

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुंगव:।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्ट: संहितापारगश्च स:।।

अर्थात् जिस स्कन्ध के अन्तर्गत ज्योतिषशास्त्र के समस्त विषय समाहित हो, उसमें कुछ शेष न रह जाय, वह निरवशेष (शेष रहित) हो, उस स्कन्ध का नाम संहिता है। वस्तुत: संहिता स्कन्ध के विषय असीमित हैं। इन्हें विस्तारपूर्वक बताते हुए 'संहितापदार्था:' नाम से आचार्य ने उन विषयों का निर्देश किया है, जिनका विवेचन संहिता में किया गया है।

विदित है कि संहिता ज्योतिष का क्षेत्र भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक है। इनके अन्दर होने वाले परिवर्तनों एवं उनके परिणामों का निरूपण संहिता स्कन्ध करता है। संहिता ग्रन्थों के एक-एक अध्याय आज के विज्ञान के एक-एक विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

संहिता शब्द की व्युत्पत्ति –

संहिता शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक धा धारणे धातु से क्त प्रत्यय दधातेर्हि से धा को हि आदेश होकर संहित शब्द बनता है पुन: टाप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- सम्मिश्रण, संकलन अथवा संग्रह। विधि का संकलन ही मनुसंहिता, आचारसंहिता है। वेद का क्रमबद्ध पाठ वेदसंहिता तथा सन्धि के नियमों के अनुसार वर्णों का मेल व्याकरण की संहिता ''**पर:**

सन्निकर्ष: संहिता'' अष्टाध्यायी (१।४।१०९) है। जबकि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसे संहिता ज्योतिष कहा जाता है।

ज्योतिषशास्त्रस्य यस्मिन् स्कन्धे ग्रहचारवशात् ग्रहनक्षत्रादिबिम्बानां शुभाशुभलक्षणवशात् पशुपक्षिकीटादीनां चेष्टावशाच्च भूपृष्ठोपरि सामूहिकप्रभावस्य विवेचनं, प्राकृतिकाया आकाशीयाया: घटनायाश्च ज्ञानं क्रियते तत् संहिताशास्त्रम्।

अर्थात् ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध के अन्तर्गत ग्रहचारवशात् ग्रहनक्षत्रादि बिम्बों का शुभाशुभ लक्षण, पशु-पक्षी-कीटादियों के चेष्टावशात् भूपृष्ठ पर उनका सामूहिक विवेचन और इसके साथ-साथ प्राकृतिक, आकाशीय घटनाओं से जुड़े समस्त ज्ञान की प्राप्ति करते हैं, उसका नाम संहिता है।

संहिता स्कन्ध की प्रशंसा करते हुए वराहमिहिर स्वग्रन्थ वृहत्संहिता में कहते हैं –

संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति।
यत्रैते संहितापदार्था:।।

संहिता सम्बन्धी नि:शेष तत्वार्थ को जानने वाला दैवचिन्तक (पूर्वकृत कर्म को जानने वाला) होता है। जिसमें वक्ष्यमाण विषय का वर्णन होता है, उसका नाम संहिता है।

विस्तारपूर्वक वक्ष्यमाण पदार्थ के बारे में बतलाते हुए संहिता के बारे में कहते है –

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमाग मचारादिभि: फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार:। सप्तर्षिचार:। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहश्रृंगाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणी स्वात्याषाढीयोगा: सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्का दिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यायरागगन्धर्व नगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्यांगविद्यावायसविद्यान्तरचक्रमृग चक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखंजको त्पातशान्तिमयुरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वे भपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्त: पुरचिन्तापिटक्लक्षणोपानच्छेद वस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगत: प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। न चैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेनैव दैवज्ञेनान्येऽपि तद्विदश्चत्वार: कर्तव्या:। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चैशानी चेति। यस्मादुल्कापातादीनि शीघ्रमपगच्छन्तीति।

तस्याश्चाकारवर्णस्नेह प्रमाणादिग्रहर्क्षोपघातादिभि: फलानि भवन्ति।।

श्लोक का अर्थ है कि सूर्य आदि ग्रहों के संचार, उस संचार में होने वाला ग्रहों का स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, द्युति, संस्थान उर्ध्वाधोगामी तोरण, दण्ड आदि का संस्थान, अस्त, उदय, मार्ग, मार्गान्तर, वक्र, अनुवक्र, नक्षत्रों के साथ ग्रह का समागम, चार नक्षत्र में चलन- इनके फल, नक्षत्र विभाग द्वारा बने हुए कूर्मचक्र से देशों का शुभाशुभ फल, अगस्त्यमुनि का संचार, सप्तर्षियों वशिष्ठ आदि सात ऋषियों के संचार, ग्रहों की भक्ति, देश, द्रव्य प्राणियों के आधिपत्य, नक्षत्रों के व्यूह द्रव्य जनों के आधिपत्य, ग्रह- श्रृंगाटक एकर्क्षस्थित तारा ग्रहों के श्रृंगाटक आदि स्थितिवश शुभाशुभ फल, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रह के वर्षपति होने पर उसका फल, गर्भलक्षण, रोहिणी योग, स्वाती योग, आषाढ़ी योग, सद्योवर्षण, कुसुमलता का लक्षण, वृक्षों के फल-फूल की उत्पत्ति के द्वारा सांसारिक शुभाशुभ का ज्ञान, परिधि (प्रतिसूर्य का लक्षण), परिवेष, परिघ (सूर्य के उदयास्त काल में तिर्यक् स्थित मेघ रेखा का लक्षण), वायु, उल्कापात, दिग्दाह का लक्षण, भूकम्प, सन्ध्या की लालिमा, गन्धर्व-नगर का लक्षण, धूलि का लक्षण, निर्घात- लक्षण, अर्घकाण्ड, अन्न की उत्पत्ति, इन्द्रध्वज और इन्द्रधनुष का लक्षण, वास्तुविद्या, अंगविद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, वृक्षायुर्वेद, दकार्गल (भूमिगत जल की उपलब्धि), नीराजन, खंजन-लक्षण, उत्पातों की शान्ति, मयूरचित्रक, घृत, कम्बल, खड्ग, पट्ट, मुर्गा, कूर्म, गौ, अजा, कुत्ता, अश्व, हरित, पुरूष, स्त्री, अन्त:पुर की चिन्ता, पिटक, मोती, वस्त्रच्छेद, चामर, दण्ड, शय्या, आसन – इनका लक्षण, रत्नपरीक्षा, दीप-लक्षण, दन्त-काष्ठ आदि के द्वारा शुभाशुभ फल का लक्षण, संसार के प्रत्येक पुरूष और राजाओं में पूर्वोक्त लक्षण का विचार एकाग्रचित्त होकर दैवज्ञ को करना चाहिये।

प्रश्न मार्ग ग्रन्थ के अनुसार संहिता ज्योतिष –

जनुपुष्टिक्षयवृष्टिद्विरदतुरंगादिसकलवस्तूनाम्।
केतूल्कादीनां वा लक्षणमुदितं हि संहिते स्कन्धे।।

अर्थात् जनकल्याण, जनहानि, वृष्टिविज्ञान, हाथी, अश्वादि समस्त पालतू पशुओं के शुभाशुभ लक्षण, धूमकेतु, उल्कापिण्डादि के उदय का पृथ्वी पर प्रभाव – ये सभी विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत आते हैं।

जब किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में जन्म काल के समय से कुण्डली बनाकर त्रिकाल (भूत, भविष्य एवं वर्तमान) समय का विचार किया जाय, तो उसे जातक या फलित ज्योतिष कहा जाता है तथा वही विचार जब समाज, राष्ट्र या विश्व के लिए हो तो उसका विचार जिस विधा के द्वारा किया

जाता है, उसे संहिता ज्योतिष कहते है।

१.४ संहिता ज्योतिष के प्रवर्त्तक व आचार्य –

बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप में गर्ग, पराशर, असित, देवल, वृद्धगर्ग, कश्यप, भृगु, वसिष्ठ, बृहस्पति, मनु, मय, सारस्वत, ऋषिपुत्र आदि को संहिता ग्रन्थों के रचनाकर्त्ताओं के रूप में स्मरण करते हैं। आचार्य भट्टोत्पल ने वराहमिहिर विरचित सभी ग्रन्थों की टीकाऐं लिखी बृहत्संहिता ग्रन्थ की टीका लेखन के समय भट्टोत्पल ने वराहमिहिर से भी कहीं अधिक पूर्ववर्ती आचार्यों का स्मरण किया है। उन्होंने टीका ग्रन्थ में व्यास, भानुभट्ट, विष्णुगुप्त, विष्णुचन्द्र, यवन, रोम, सिद्धासन, भद्रबाहु, नन्दि, नग्नजित्, शक्र, कपिल, चाणिक्य, बलदेव, बृहद्रथ, गरुत्मान, कपिस्थल, ऋषभ, भदित्त, सवित्र, लाटदेव, हस्ताब्द, असित, अगस्त्य, द्रव्यवर्धन, विष्णुचन्द्र, इन्द्र, काश्यप, गार्ग, जीवशर्मा, गरुड, दैवल, देवस्वामी, नन्दी, नग्नजीत, नारद, पुलिशाचार्य, बादरायण, भट्टब्रह्मगुप्त, भानुभट्ट, भागुरि, भारद्वाज मुनि, मय, मयासुर, मणित्थ, माण्डव्य, यवन, यवनेश्वर, वज्रऋषि, वक्ष्यमाण, वररुचि, विष्णुगुप्त, विष्णु, विश्वकर्मा, वीरभद्र, शुक्र, समुद्र ऋषि, सत्याचार्य, सारस्वत, सिद्धसेन, सूर्य, श्रुतकीर्ति, हिरण्यगर्भ इत्यादि आचार्यों का स्मरण किया। इन आचार्यों के द्वारा रचित ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते हैं, केवल इनके नाम ही शेष रह गये हैं।

सम्प्रति संहिता ग्रन्थों में वृहत्संहिता, बार्हस्पतय संहिता, गर्ग संहिता, गुरु संहिता, नारद संहिता, महासंहिता, वाराह संहिता, रावण संहिता, पाराशर संहिता, भृगु संहिता, काश्यप संहिता, लोमश संहिता, गौतम संहिता और वसिष्ठ संहिता आदि के नाम सामने आते हैं, किन्तु इनमें सर्वसुलभ तथा लोक प्रचलित वृहत्संहिता और नारदसंहिता हैं। कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि वेदाङ्ग काल तक संहिताशास्त्र का पृथक् अस्तित्व नहीं था। संहिता ज्योतिष के तत्त्व विविध पुराणों में और इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

१.४.१ संहिता ज्योतिष के प्रमुख विषय -

अद्भुतसागरग्रन्थ में भी बृहत्संहिता के समान ही विषयों का वर्णन है, परन्तु उसमें अनेक नवीन विषयों का भी विवेचन किया गया जिनकी चर्चा बृत्संहिता में भी चर्चा नहीं है। उसमें दिव्याश्रय, अन्तरिक्षाश्रय और भौमाश्रय संज्ञक तीन भागों में विविध उत्पातों का सोपपत्तिक वर्णन किया है व उनकी शान्ति के उपाय भी वर्णित किये है। भौमाश्रय में भूकम्प, जलाशय अग्नि, दीप, देव प्रतिमा, शक्रध्वज, वृक्ष, गृह, वातज उपस्कर, वस्त्र, उपाहन, आसन, शस्त्र, दिव्य स्त्रीपुरुषदर्शन, मानुष, पिटक, स्वप्न, कायरिष्ट, दन्त जन्म, प्रसव, सर्वशाकुन, नाना मृग, विहग, गज, अश्व, वृष,

महिष, बिडाल, शकुन, शृगाल, गृहगोधिका, पिपीलिका, पतङ्ग, मशक, मक्षिक, लूता, भ्रमर, भेक, खन्जरीट दर्शन, पोतकी, कृष्णपेचिका, वायसाद्भुतावर्त्त, मिश्रकाद्भुतावर्त्त, अद्भुतशान्त्यद्भुतावर्त्त, सद्योवर्षनिमित्ताद्भुतावर्त्त, अविरुद्धाद्भुतावर्त्त और पाकसमयाद्भुतावर्त का निरूपण किया हैं जिनमें से अनेक विषयों की चर्चा बृत्संहिता में नहीं प्राप्त होती।

संहिता के विषय अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। इसमें सम्पूर्ण देश की स्थिति, देश का शुभाशुभ फल, कृषि सम्बन्धित फल, वृष्टि सम्बन्धित फल, वाणिज्य सम्बन्धित फल, राजनीति सम्बन्धित फल और अर्थ सम्बन्धित फल का विस्तृत रुप प्रतिपादन किया गया है। इसके निर्धारण हेतु आचार्य वराहमिहिर रचित बृहत्संहिता में वर्णन है कि सर्वप्रथम सत्ताईस नक्षत्रों को नव खण्डों में विभाजित किया गया। प्रत्येक खण्ड में तीन तीन नक्षत्र स्थापित किये। बृहद भारत देश के भूभाग को नक्षत्रों के आधार पर विभाजित किया। जब ग्रहों का सञ्चार उन नक्षत्रों पर होता हैं तब उनसे संबंधित देशों पर उन ग्रहों का शुभाशुभ का प्रतिपादन किया गया। किस स्थान पर कब कितनी मात्रा में वृष्टि होगी? व्यापार जगत में किन वस्तुओं के मूल्यों में तेजी या मन्दी होगी? इत्यादि विषयों का विचार भी संहिता ग्रन्थों में उक्त ग्रहचार के आधार पर किया गया।

१.४.२ संहिता ज्योतिष का महत्व

आचार्य वराहमिहिर द्वारा विरचित बृहत्संहिता एक अद्वितीय एवं विलक्षण संहिता ग्रन्थ है। उसमें दैवज्ञ प्रशंसा के सन्दर्भ में निर्देश किया है कि जो दैवज्ञ संहिता शास्त्र को सम्यक् रुप से जानता है, वहीं दैवचिन्तक होता है – "**संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति**"। जो दैवज्ञ गणित व होरा शास्त्र के साथ संहिता शास्त्र में भी पारंगत होता है उसकी "**सांवत्सर**" संज्ञा दी गई। सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व प्रतिपादित किया गया। सांवत्सर किसी देश, प्रदेश, जिले या नगर का शुभाशुभ फलकथन करने में समर्थ होता है, अतएव कहा गया कि अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को साम्वत्सर रहित देश में निवास नहीं करना चाहिये। जैसा कि आचार्य का कथन है –

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते।। (बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-११)

सांवत्सर का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने वर्णन किया – जैसे दीप्तिरहित रात्रि अन्धकार युक्त होता है, जैसे सूर्यरहित आकाश अन्धकारयुक्त होता है उसी प्रकार दैवज्ञ विहीन राजा अन्धकार में ही भ्रमण करता है –

अप्रदीपा यथा रात्रिः अनादित्यं यथा नभः।
तथा असांवत्सरो राजा भ्रम्यत्यन्ध इवाध्वनि।।(बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-८)

जो राजा विजय की कामना करता है उसे सिद्धान्त संहिता होरा रूप त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र में पारंगत सांवत्सर की अभ्यर्चना कर अपने राज्य में स्थान देना चाहिये –

यः तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।

अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा।। (बृहत्संहिता, अध्यायः-२, श्लोक-१९)

सांवत्सर का अत्यधिक महत्त्व आचार्य वराहमिहिर ने प्रतिपादित किया। यदि कोई दैवज्ञ भविष्य में घटित होने वाली आपदा का पूर्वानुमान कर लेता है तो वह एक बृहत्तम कार्य करता है जोकि न एक हजार हाथी मिलकर कर सकते है न ही चार हजार घोडे मिलकर कर सकते हैं। जैसा कि कहा गया –

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।

करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः।। (बृहत्संहिता, सांवत्सरसूत्राध्यायः, श्लोक-३८)

इस प्रकार त्रिस्कन्ध के वेत्ता दैवज्ञ की प्रशंसा करते हुए आचार्य वराहमिहिर ने संहिता स्कन्ध के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया। होरा शास्त्र का ज्ञाता ज्योतिषी तो केवल एक व्यक्ति विशेष का ही फल प्रतिपादन कर सकता है परन्तु संहिता स्कन्ध में कुशल दैवज्ञ तो सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिये चिन्तन करता है। अतः संहिता स्कन्ध को जानने वाला ज्योतिषी को ही दैवज्ञ की संज्ञा दी गई है, सभी को नहीं। आज भी संहिता ज्योतिष का अत्यन्त महत्त्व समाज में दिखाई देता है।

बोध प्रश्न

1. वृहत्संहिता निम्न में से किसकी रचना है?

   क. पृथुयश ख.वराहमिहिर ग.वशिष्ठ घ.नारद
2. संहित शब्द में कौन सा प्रत्यय लगकर संहिता शब्द बनता है?

   क. टाप् ख. डाप ग. क्त घ. मतुप
3. ज्योतिष शास्त्र के प्रधानतया कितने स्कन्ध है?

   क. २ ख. ३ ग.४ घ. ५
4. निम्न में भूगर्भ से लेकर अन्तरिक्ष तक किसका क्षेत्र है?

   क. सिद्धान्त ख. संहिता ग. होरा घ. प्रश्न
5. बल्लालसेन द्वारा लिखित संहिता ग्रन्थ का क्या नाम है?

   क. अद्भुतसागर ख. वशिष्ठ संहिता ग. भृगु संहिता घ. वृहत्संहिता

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र के प्रधान तीन स्कन्ध है – सिद्धान्त, संहिता और होरा। इन प्रधान स्कन्धत्रय में से जिसमें सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र के विषयों का वर्णन हो, उसको '**संहिता**' कहते हैं। संहिता ज्योतिष में बिन्दु से सिन्धु तक, व्यक्ति से समष्टि तक, भूगर्भ से आकाश तक, ग्रह-नक्षत्र- तारादिपिण्डों से लेकर धूमकेतुओं तक, वृष्टि- कृषि- पर्यावरण से लेकर समस्त सृष्टि की यात्रा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संहिता ज्योतिष में विश्व के समस्त पदार्थ समाहित हैं। अत्यन्त विस्तृत और विहंगम है संहिता ज्योतिष का क्षेत्र। जिस स्कन्ध के अन्तर्गत ज्योतिषशास्त्र के समस्त विषय समाहित हो, उसमें कुछ शेष न रह जाय, वह निरवशेष हो, उस स्कन्ध का नाम संहिता है। वस्तुत: संहिता स्कन्ध के विषय असीमित हैं। इन्हें विस्तारपूर्वक बताते हुए 'संहितापदार्था:' नाम से आचार्य ने उन विषयों का निर्देश किया है, जिनका विवेचन संहिता में किया गया है। संहिता ज्योतिष का क्षेत्र भूगर्भ से अन्तरिक्ष तक है। इनके अन्दर होने वाले परिवर्तनों एवं उनके परिणामों का निरूपण संहिता स्कन्ध करता है। संहिता के एक-एक अध्याय आज के विज्ञान के एक-एक विधाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। संहिता शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक धा धारणे धातु से क्त प्रत्यय दधातेर्हि से धा को हि आदेश होकर संहित शब्द बनता है पुन: टाप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- सम्मिश्रण, संकलन अथवा संग्रह। विधि का संकलन ही मनुसंहिता, आचारसंहिता है।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

स्कन्धत्रय – तीन स्कन्ध – सिद्धान्त, संहिता एवं होरा।

भूगर्भ - पृथ्वी के अन्दर

संहिता – जो निरवशेष हो। सम्मिश्रण, संकलन एवं संग्रह।

सिन्धु – सागर

मनुसंहिता – मनु द्वारा रचित संहिता

बल्लालसेन – अद्भुत सागर ग्रन्थ के रचयिता

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क

3. ख
4. ख
5. क

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा
2. वशिष्ठ संहिता – मूल प्रणेता- महात्मा वशिष्ठ, टीका- डॉ. गिरिजाशंकर शास्त्री
3. नारदसंहिता – मूल रचयिता - नारद, टीका-
4. अद्भुतसागर – मूल लेखक - बल्लालसेन, टीका – प्रोफेसर शिवाकान्त झा

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भृगु संहिता
2. नारद संहिता
3. रावण संहिता
4. प्रश्न मार्ग

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. संहिता ज्योतिष से आप क्या समझते है।
2. संहिता स्कन्ध में प्रतिपादित मुख्य विषयों का वर्णन कीजिये।
3. संहिता ज्योतिष का महत्व अपने शब्दों में लिखिये।
4. संहिता ज्योतिष के प्रवर्त्तक व आचार्यों का वर्णन कीजिये।
5. संहिता ज्योतिष पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - २ दैवज्ञ लक्षण विवेचन

इकाई की संरचना

२.१. प्रस्तावना
२.२. उद्देश्य
२.३. दैवज्ञ लक्षण परिचय
 २.३.१. दैवज्ञ की परिभाषा
२.४. वृहत्संहिता के अनुसार दैवज्ञ लक्षण कथन
 २.४.१ दैवज्ञ कैसा नहीं होना चाहिए
 २.४.२ त्रिस्कन्धवाक् (दैवज्ञ) की प्रशंसा
२.५. सारांश
२.६. पारिभाषिक शब्दावली
२.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
२.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
२.९. सहायक पाठ्य सामग्री
२.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

२.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के प्रथम खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – दैवज्ञ लक्षण विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में दैवज्ञ लक्षण का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

दैवज्ञ किसे कहते है? दैवज्ञों के लक्षण कौन-कौन से है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए दैवज्ञों एवं उनके लक्षण से जुड़े विभिन्न विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

२.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि दैवज्ञ किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि दैवज्ञ लक्षण क्या है।
- दैवज्ञ के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- दैवज्ञ के महत्व को जान लेंगे।
- दैवज्ञ की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

२.३. दैवज्ञ लक्षण परिचय

आचार्य वराहमिहिर ने ‘दैवज्ञ लक्षण’ ज्ञानार्थ स्वरचित ग्रन्थ वृहत्संहिता में सांवत्सरसूत्राध्याय नाम का एक स्वतन्त्र अध्याय का ही लेखन किया है, जो अपने आप में विशिष्ट बात है। अत: यहाँ सांवत्सरसूत्र का अर्थ है – संवत्सर को जानने वाला दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सर:। सूत्र्यते अर्थो ये तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थ:। जो संवत्सर तथा उसके फलाफल के बारे में जानने वाला हो, उसे सांवत्सर कहते हैं। इसीलिए आचार्य ने दैवज्ञ लक्षण कथन के लिए अध्याय का नामकरण किया- सांवत्सरसूत्राध्याय:।

२.३.१ दैवज्ञ की परिभाषा

आप सभी को ज्ञात होना चाहिए कि दैवज्ञ शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है- जो दैव अर्थात देवताओं के बारे में जानने वाला हो। आचार्य ने ज्योतिषी को दैवज्ञ कहकर सम्बोधित किया है, क्योंकि ज्योतिषी भी दैव को जानने वाला होता है। दैव का एक अर्थ विधि अर्थात् ब्रह्मा भी होता है।

२.४ वृहत्संहिता के अनुसार दैवज्ञ लक्षण

वृहत्संहिता में वराहमिहिर दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण बतलाते हुए कहते हैं –

तत्र सांवत्सरोऽभिजात: प्रियदर्शनो विनीतवेष: सत्यवागनसूयक: सम: सुसंहितोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारूकरचरणनखनयनचिबुकदशन-श्रवणलालभ्रूत्तमांगो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोष:। प्राय: शरीरकारानुवर्तिनो हि गुणा दोषाश्च भवन्ति।

ज्योतिषी कैसा होना चाहिए? इस श्लोक के अर्थ में वह कहते है –

ज्योतिषी को कुलीन, देखने में प्रिय, विनम्र, सत्यवादी, दूसरे के गुणों में दोष नहीं निकालने वाला, राग-द्वेष से रहित, दृढ़ और पुष्ट शारीरिक सन्धि वाला, सर्वांगपूर्ण, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथ, पैर, नाखून, आँख, ठोढ़ी, दाँत, कान, मस्तक और शिर वाला, सुन्दर तथा बोलने में गम्भीर और उदात्त प्रकृति वाला होना चाहिये। विदित हो कि शरीर की आकृति के अनुरूप ही दोष-गुण होते हैं। अत: दैवज्ञ को उक्तकथनानुसार होना चाहिये।

शुचिर्दक्ष: प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित् सात्विको न पर्षद्भीरू: सहाध्यायिभिरनभिभवनीय: कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरत: स्वतन्त्राश्चर्योत्पादितप्रभाव: पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययाद् ग्रहगणितसंहिता होराग्रन्थार्थवेत्तेति।।

दैवज्ञ के अन्य गुणों को बतलाते हुए आचार्य कहते है कि – दैवज्ञ को पवित्र, चतुर, सभा में बोलने वाला, वाचाल, प्रतिभाशाली, देश-काल को जानने वाला, व्यसनों से रहित, शान्तिक (उत्पातों के निवारणार्थ वेदोक्त मन्त्र पाठ विनियोग का अनुष्ठान), पौष्टिक (आयु, धन आदि को बढ़ाने वाली विद्या), अभिचार (मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, स्तम्भन, चालन आदि विद्या) इनको जानने वाला, देवपूजन, व्रत, उपवासों में निरत, अपने शास्त्र द्वारा आश्चर्यजनक विषय लाकर प्रभाव को बढ़ाने वाला, प्रश्नोत्तर करने वाला, दैवात्यय (प्राकृतिक अशुभ उत्पात) के निवारणार्थ बिना पूछे भी शान्तिकर्म बताने वाला और ग्रहों के गणित, संहिता, होरादि के ग्रन्थों का ज्ञाता – इन समस्त गुणों से युक्त होना चाहिए।

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पंचस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युग वर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्त्तनाडीप्रमाणत्रुटित्रुटयाद्यवयवादिकस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता।।

दैवज्ञों में अब तक कहे गये गुणों के अतिरिक्त और अन्य गुणों का भी उल्लेख करते हुए आचार्य

कथन है कि दैवज्ञ को ग्रहगणित के प्रसंग में पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर, पैतामह- इन पाँच सिद्धान्तों में प्रतिपादित युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घटी, पल, प्राण, त्रुटि, त्रुटि के अवयव आदि कालों का तथा भगण, राशि, अंश, कला, विकला आदि क्षेत्रों का ज्ञाता होना चाहिए।

दैवज्ञ के गुणों के क्रम में विस्तृत वर्णन करते हुए आचार्य कहते है कि -

चतुर्णां च मानानां सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः।

युगों का प्रमाण, सौरवर्ष प्रमाण, अयनज्ञान प्रमाण, सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र मासों को, अधिकमास, क्षयमास इनके उत्पत्ति कारणों को जानने वाला ज्योतिषी होना चाहिए।

षष्टयब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिच्छेदवित्।

प्रभव आदि ६० संवत्सर, तदन्तर्गत युग, वर्ष, मास, दिन, होरा इनके अधिपतियों की प्रतिपत्ति और छेद निवृत्ति का ज्ञान भी दैवज्ञ को होना चाहिये।

सौरादीनां च मानानामसदृशसदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः।

दैवज्ञ को अनेक शास्त्रों में कहे गये सौर आदि मानों में यथार्थ और अयथार्थ का विचार करने में सकुशल होना चाहिये अर्थात् इन शास्त्रोक्त भिन्न-भिन्न मानों में कौन ठीक है? कौन नहीं? इसका विचार करने में योग्य होना चाहिये।

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डललेखासम्प्रयोगाभ्युदितां शकानां छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः।।

सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अयननिवृत्ति के भेद, सममण्डल प्रवेशकालिक उदित अंशों के भेद, छाया जलयन्त्र से दृग्गणितैक्य को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

सूर्यादीनां च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः।।

सूर्य आदि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाण स्थितिविमर्दवर्णा देशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा।।

सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान, स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रहसमागम और ग्रहयुद्धों को बताने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।

प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्ष्याप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलः।।

प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षाप्रमाण और प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में दैवज्ञ को कुशल होना चाहिये।

भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरण प्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञ:।।

पृथ्वी, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्याचापांश, चापखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला दैवज्ञ को होना चाहिये।

नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसन्तापाभिनिवेशै:
कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो भवति।

कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की तरह अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार चोद्य प्रश्नभेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होना चाहिये।

२.४.१ दैवज्ञ कैसा नहीं होना चाहिए -

न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्ट:।
निगदति न च शिष्येभ्य: स कथं शास्त्रार्थविज्ज्ञेय:।।

जो शास्त्रयुक्त अर्थ को नहीं कहता, प्रश्न पूछने पर एक का भी उत्तर नहीं देता और छात्रों को नहीं पढ़ाता, वह किस तरह शास्त्रज्ञ हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। इसलिए दैवज्ञ को ऐसा नहीं होना चाहिए।

ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थ करणं यश्चान्यथा करोत्यबुध:।
स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकेनार्याम्।।

जिस तरह ग्रन्थ का आशय है, उसको नहीं समझकर जो मूर्ख उसका विरूद्ध अर्थ करता है, वह मानो ब्रह्मा जी के पास में जाकर वेश्या की तरह उनकी स्तुति करता है। अत: दैवज्ञ को इस प्रकार का नहीं होना चाहिए।

२.४.२ त्रिस्कन्धवाक् (दैवज्ञ) की प्रशंसा

तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या।।

जो मनुष्य शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, छाया, जलयन्त्र आदि साधनों के द्वारा लग्न का ज्ञान कर सकता हो और फलित शास्त्र को अच्छी तरह जानता हो, ऐसे गुणसम्पन्न बताने वाले

की वाणी कभी भी वन्ध्या अर्थात् निष्फल नहीं होती।

अप्यर्णवस्य पुरुष: प्रतरन् कदाचि
दासादयेदरिनलवेगवशेन पारम्।
न त्वस्य कालपुरूषाख्यमहार्णवस्य
गच्छेत्क्दाचिदनृषिर्मनसापि पारम्।।

तैरता हुआ मनुष्य कदाचित् वायु के वेग से समुद्र को पार कर सकता है, पर कालपुरूष संज्ञक ज्योतिषशास्त्र रूप महासमुद्र को ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य मन से भी पार नहीं कर सकता।

कृत्स्नांगोपांगकुशलं होरागणितनैष्ठिकम्।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति।।

सब प्रकार से कुशल, होराशास्त्र और गणित में प्रवीण ज्योतिषी की पूजा जो राजा नहीं करता, वह नाश को प्राप्त होता है।

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहा:।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम्।।

वन में रहने वाले, ममत्वरहित और किसी से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाले भी ग्रह, नक्षत्र आदि को जानने वाले दैवज्ञों से पूछते हैं।

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभ:।
तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि।।

दीपहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाश की तरह ज्योतिषी से हीन राजा शोभित नहीं होता हुआ अन्धे की तरह मार्ग में घूमता रहता है।

मुहूर्त्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा।
सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि।।

यदि ज्योतिषी न हो तो मुहूर्त्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु, अयन आदि समस्त विषयों को कौन बताएगा? उलट पलट हो जायें।

तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणी:।
जयं यश: श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता।।

अत: जय, यश, श्री, भोग और मंगल की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिये कि विद्वान्, श्रेष्ठ ज्योतिषि के पास जाकर अपना भविष्य पूछना चाहिए।

नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता।

चक्षुर्भूतो हि यत्रैव पापं तत्र न विद्यते।।

सब प्रकार से अपने कुशल की इच्छा रखने वाले मनुष्य को दैवज्ञहीन देश में निवास नहीं करना चाहिये, क्योंकि जहाँ पर नेत्रस्वरूप दैवज्ञ निवास करते हैं, वहाँ पाप का निवास नहीं होता।

न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।

ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तक:।।

ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन करने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता एवं ज्योतिष शास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरूष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत्कृत्स्नं जानाति यो द्विज:।

अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजित: पंक्तिपावन:।।

जो द्विज ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण शब्दार्थ को जानता है, वह श्राद्ध में सर्वप्रथम भोजन कराने के लायक, पंक्ति को पवित्र करने वाला तथा आदरणीय होता है।

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।

ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विज:।।

जिन म्लेच्छों यवनों के पास यह शास्त्र रहता है, वे भी जब ऋषि की तरह पूजित होते है, तब दैवज्ञ ब्राह्मण की क्या बात? अर्थात् उनकी पूजा तो निश्चित ही होती है।

कुहकावेशपिहितै: कर्णोपश्रुतिहेतुभि:।

कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित्।।

इन्द्रजाल विद्या से अपने शरीर को छिपाकर गुप्त रूप से प्रश्नकर्ता का अभिप्राय समझकर बताने वाले और कर्मपिशाची सिद्धि से प्रश्न आदि बताने वाले ज्योतिषी को सब जगह नहीं पूछना चाहिये, क्योंकि वह दैवज्ञ नहीं होता है।

अविदित्वैव यच्छास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।

स पंक्तिदूषक: पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचक:।।

जो मनुष्य ज्योतिष शास्त्र को बिना जाने अपने-आपको दैवज्ञ कहकर व्रत, उपवास आदि बताता है, उस पंक्तिदूषक पापी को नक्षत्रसूचक जानना चाहिये।

नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति य:।

स व्रजन्त्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिा।।

नक्षत्रसूचक द्वारा बताये गये व्रत, उपवास आदि को जो मनुष्य करता है, वह उस ऋक्षविडम्बी नक्षत्रसूचक के साथ अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है।

नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम्।
आदेशस्तद्वदज्ञानां य: सत्य: स विभाव्यते।।

जिस तरह पुरद्वार में स्थित मृत्खण्ड के समीप की हुई याचना कभी-कभी पूरी हो जाती है, उसी तरह मूर्खों का आदेश भी कभी-कभी सत्य हो जाता है, परमार्थत: कभी भी सत्य नहीं होता।

सम्पत्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रिय:।
मत्त: शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृंगमहीक्षिता।।

सम्पत्ति पाने के लोभ से जो आदेश करता है और ज्योतिष शास्त्र से भिन्न कथा से जिसका स्नेह है ऐसे शास्त्र के एक देश को जानने से मत्त ज्योतिषी का राजा द्वारा त्याग कर देना चाहिये।

यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिता:।
अभ्यर्च्य: स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा।।

जय की इच्छा रखने वाले राजा को होरा, गणित, संहिता इन तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाले दैवज्ञों की पूजा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा माननी चाहिये।

न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तक:।।

देश काल को जानने वाला एक दैवज्ञ जो काम करता है, वह हजार हाथी और चार हजार घोड़े भी नहीं कर सकते।

दु:स्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि।
क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिन: श्रुत्वा भसंवादम्।।

चन्द्र के नक्षत्र संवाद सुनने से बुरे स्वप्न, बुरे चिन्तन, बुरे दर्शन, बुरे कर्म इन सभी का शीघ्र नाश होता है।

न तथेच्छति भूपते: पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्त: सबलस्य दैववित्।।

अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिए दैवज्ञ जिस तरह राजा का हित करता है, उस तरह उसके माता-पिता, स्वजन और मित्र भी नहीं करते।

प्रश्न मार्ग ग्रन्थानुसार दैवज्ञ लक्षण –

ज्योतिषशास्त्रविदग्धो गणितपटुवृत्तवांश्च सत्यवचा:।

विनयी वेदाध्यायी ग्रहयजनपटुश्च भवतु दैवज्ञः।।
दैवविदेवम्भूतो यद्वदति फलं शुभाशुभं प्रष्टुः।
तत्सर्वं न च मिथ्या भवति प्राज्ञैस्तया चोक्तम्।।
दशभेदं ग्रहगणितं जातकमवलोक्य निरवशेषं यः।
कथयति शुभमशुभं वा तस्य न मिथ्या भवेद्वाणी।।
अनेकहोरातत्वज्ञः पंच सिद्धान्तकोविदः।
उहापोहपटुः सिद्धमन्त्रो जानाति जातकम्।।

दैवज्ञ को ज्योतिषशास्त्र में पारंगत होना चाहिए। वह सच्चरित्र तथा गणितशास्त्र में कुशल हो, सत्य बोलने वाला हो। वह विनयशील, नित्य वेदों का स्वाध्याय करने वाला ग्रहयज्ञ शान्तिकर्म एवं अनुष्ठानादि करने में निपुण होना चाहिये।

इस प्रकार की अर्हता को प्राप्त दैवज्ञ प्राश्निक के प्रश्न का जो कुछ भी शुभाशुभ उत्तर कहता है वह सब प्राचीन ऋषियों के मतानुसार कभी असत्य नहीं होता है।

दैवज्ञ को दस प्रकार के ग्रहगणित को सीखना बहुत आवश्यक है। उसे सम्पूर्ण जातकशास्त्र का सविस्तार अध्ययन करना चाहिए, फिर उसके द्वारा जो भी शुभाशुभ फल कहा जायेगा वह सदा सत्य होगा।

बोध प्रश्न -

1. वृहत्संहिता किसकी रचना है।
   क. वराहमिहिर ख. वेंकटेश ग.वशिष्ठ घ.लोमश
2. वराहमिहिर ने स्वग्रन्थ में दैवज्ञ लक्षण का वर्णन किस अध्याय में किया है?
   क. दकार्गल ख. ग्रहचाराध्याय ग. सांवत्सरसूत्राध्याय घ. वृक्षायुध्याय
3. निम्न में संवत्सरं वेत्ति .... होगा?
   क. सांवत्सरः ख. प्रभव ग. विजयः घ. कोई नहीं
4. ज्योतिषी को कैसा होना चाहिये?
   क. प्रिय ख. कुलीन ग. पवित्र घ. उपयुक्त सभी
5. संवत्सरों की संख्या कितनी है?
   क. ५० ख. ६० ग. ७० घ. ८०
6. नारद द्वारा रचित ग्रन्थ का क्या नाम है?

क. प्रश्नमार्ग   ख. वशिष्ठ संहिता   ग. वृहत्संहिता   घ. नारद संहिता

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि आचार्य वराहमिहिर ने 'दैवज्ञ लक्षण' ज्ञानार्थ स्वरचित ग्रन्थ वृहत्संहिता में सांवत्सरसूत्राध्याय नाम का एक स्वतन्त्र अध्याय का ही लेखन किया है, जो अपने आप में विशिष्ट बात है। अत: यहाँ सांवत्सरसूत्र का अर्थ है – संवत्सर को जानने वाला दैवज्ञ (ज्योतिषी) का लक्षण। संवत्सरं वेत्ति सांवत्सर:। सूत्र्यते अर्थो ये तत्सूत्रं सांवत्सरसूत्रमित्यर्थ:। जो संवत्सर तथा उसके फलाफल के बारे में जानने वाला हो, उसे सांवत्सर कहते हैं। इसीलिए आचार्य ने दैवज्ञ लक्षण कथन के लिए अध्याय का नामकरण किया- सांवत्सरसूत्राध्याय:।

आप सभी को ज्ञात होना चाहिए कि 'दैवज्ञ' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है- जो दैव अर्थात देवताओं के बारे में जानने वाला हो। आचार्य ने ज्योतिषी को दैवज्ञ कहकर सम्बोधित किया है, क्योंकि ज्योतिषी भी दैव को जानने वाला होता है। दैव का एक अर्थ विधि अर्थात् ब्रह्मा भी होता है।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

दैवज्ञ – ज्योतिषी

लक्षण - स्वरूपादि का विवेचन

विधि – ब्रह्मा

दैव – देवता या ब्रह्मा

वृहत्संहिता – आचार्य वराहमिहिर द्वारा लिखित ग्रन्थ

नारद संहिता – महर्षि नारद द्वारा विरचित

संहिता – सम्मिश्रण

२.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ग
3. क

4. घ
5. ख
6. घ

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा
2. नारद संहिता – टीकाकार – पं. रामजन्म मिश्र
3. प्रश्न मार्ग – टीकाकार - आचार्य गुरु प्रसाद गौड़
4. वशिष्ठ संहिता – मूल लेखक – महात्मा वशिष्ठ, टीका – प्रोफेसर गिरिजाशंकर शास्त्री

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भृगु संहिता – महात्मा भृगु।
2. रावण संहिता – (मूल ग्रन्थ - अप्राप्य)
3. प्रश्न मार्ग –
4. वशिष्ठ संहिता –

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. दैवज्ञ किसे कहते है? समझाते हुए लिखिये।
2. वराहमिहिर द्वारा प्रणीत दैवज्ञ लक्षण का वर्णन कीजिये।
3. वृहत्संहिता में दैवज्ञों के बारे में क्या कहा गया है। लिखिये
4. दैवज्ञ का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई – 3 ग्रहचार विवेचन

इकाई की संरचना

३.१. प्रस्तावना
३.२. उद्देश्य
३.३. ग्रहचार - सामान्य परिचय
३.४. नारदसंहिता के अनुसार ग्रहचार विवेचन
३.५. सारांश
३.६. पारिभाषिक शब्दावली
३.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
३.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
३.९. सहायक पाठ्य सामग्री
३.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

३.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – ग्रहचार विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने संहिता ज्योतिष का परिचय एवं दैवज्ञों के लक्षण से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है अब आप सूर्यादि ग्रहों का चार अर्थात् ग्रहचार का अध्ययन करेंगे।

ग्रहचार से तात्पर्य ग्रहों के चलन से है। चर शब्द का अर्थ चलने से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप सूर्यादि समस्त ग्रहों का चार एवं उसके फल का अध्ययन करने जा रहे हैं।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े सूर्यादि समस्त ग्रहों के चार एवं उसके शुभाशुभ फल का अध्ययन हम इस इकाई में करते है।

३.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि ग्रहचार किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि ग्रहों का चार कैसे होता है।
- सूर्य एवं चन्द्रमा ग्रह के चार फल को जान सकेंगे।
- मंगल, बुध एवं गुरु ग्रह के चारफल को बता सकेंगे।
- शुक्र एवं शनि ग्रह के चारफल का विश्लेषण करने में समर्थ हो जायेंगे।

३.३. ग्रहचार : सामान्य परिचय

ज्योतिष शास्त्र में ग्रहचार का अर्थ है – ग्रहों का चलन। 'चर' शब्द चलन अर्थ में प्रयुक्त होता है। सूर्यादि ग्रहों का चार एवं चारफल का वर्णन समस्त संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया है। आइए सर्वप्रथम सूर्य के चार से आरम्भ करते है -

आदित्य (सूर्य) चार –

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमायनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु।।

श्लोकार्थ है कि - यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी, नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती।

आज का मत –

साम्प्रतमयनं सवितु: कर्कटकाद्यं मृगादिश्चान्यत्।
उक्ताभावो विकृति: प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्ति:।।

इस समय कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम विकार है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते है।

३.४ नारदसंहिता के अनुसार ग्रह चार विवेचन–

सूर्य चार -

दंडाकारेकबंधे वा ध्वांक्षाकारेऽथ कीलके।
दृष्टेऽर्कमण्डले व्याधिर्भीतिश्चौरार्थनाशनम्।।

सूर्य मण्डल में दण्ड की आकृति, कबन्ध (बिना सिर का शरीर), ध्वांक्ष (काक) की आकृति अथवा कील दृष्टिगोचर होने पर व्याधि, भय एवं चोर भय तथा धन का नाश होता है।

सितरक्तै: पीतकृष्णैस्तैर्मिश्रैर्विप्रपूर्वकान्।
हन्ति द्वित्रिचतुर्भिर्वा राज्ञोऽन्यत्र जनक्षय:।
उर्ध्वैर्भानुकरैस्ताम्रैर्नाशं याति च भूपति:।।

श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण एवं मिश्रित रंग यदि सूर्य का दृष्टिगोचर हो तो क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यजों को कष्ट होता है। दो तीन या चार वर्ण यदि एक साथ दिखलाई दे तो राजा का अन्यथा प्रजा का नाश होता है। यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें ताम्र वर्ण की दिखाई दें तो राजा का नाश होता है।

पीतैर्नृपसुत: श्वेतै: पुरोधाश्चित्रितैर्जना:।
धूम्रैर्नृप: पिशंगैश्च जलदोधो मुखैस्तथा।।

यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें पीतवर्ण की हों तो राजपुत्र श्वेत होने पर पुरोहित, चित्रित होने पर जनता, धूम्रवर्ण होने पर राजा तथा पिंगल होने पर मेघों की क्षति होती है।

उदयास्तमये काले स्वास्थ्यं तै: पाण्डुसन्निभै:।
भास्करस्ताम्र संकाश: शिशिरे कपिलोऽपि वा।।
कुंकुमाभौ वसन्तर्त्तौ कपिलो वापि शस्यते।।

उदय और अस्तकाल में सूर्य किरणें यदि पाण्डुरंग की हों तो वे स्वास्थ्य का नाशक होती है। शिशिर में ताम्रवर्ण या कपिलवर्ण, वसन्त में कुंकुमवर्ण या कपिल वर्ण शुभ होता है।

पीताभकृष्णवर्णोऽपि लोहितस्तु यथाक्रमात्।
इन्द्रचापार्द्धमूर्तिश्चेत् भानुर्भूपविरोधकृत्।।

यदि आकाश मण्डल में सूर्य की आकृति अर्द्ध धनुषाकार तथा उसका रंग पीला, काला और लाल हो तो राजाओं में विरोध उत्पन्न करने वाला होता है।

मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति।
शशरक्तनिभे भानौ संग्रामो ह्यचिराद् भवेत्।।

यदि सूर्य का बिम्ब मोर के पंख के समान दिखाई दे तो १२ वर्ष तक वृष्टि नहीं होती।तथा यदि सूर्य बिम्ब शशक खरगोश के रक्त के सदृश हो तो शीघ्र ही युद्ध होता है।

चन्द्रस्य सदृशो यत्र चान्यं राजानमादिशेत्।
अर्के श्यामे कीटभयं भस्माभे शस्त्रतो भयम्।।

चन्द्रमा के समान रविबिम्ब के दिखलाई देने पर राज परिवर्तन होता है। तथा श्याम वर्ण सूर्य के दृष्टिगोचर होने पर कीट भय एवं भस्म के सदृश वर्ण का यदि सूर्य दृष्टिगोचर हो तो शस्त्रभय होता है।

छिद्रेऽर्कमण्डले दृष्टे तदा राजविनाशकृत्।
घटाकृतिः क्षुद्भयकृत् पुरहा तोरणाकृतिः।।
छत्राकृतिर्देशहन्ता खण्डभानुर्नृपान्तकृत्।
उदयास्तमये भानोर्विद्युदुल्काशनिर्यदि।।
तदा नृपवधो ज्ञेयस्त्वथवा राजविग्रहः।।

सूर्यमण्डल में छिद्र दृष्टिगोचर हो तो राजा का नाश, घड़े की आकृति के समान होने से क्षुधा का भय, तोरण की आकृति होने से पुर का नाश होता है। छाते की आकृति से देश का नाश तथा खण्डित सूर्यबिम्ब दर्शन से राजा का नाश होता है। सूर्य के उदय और अस्त के समय यदि बिजली चमके, उल्कापात दिखलाई पड़े या विजली गिरे तो राजा का वध होता है अथवा राजविग्रह होता है।

पक्षं पक्षार्द्धमर्केन्दू परिविष्टावहर्निशम्।
राजानमन्यं कुरुतो लोहितावुदयास्तगौ।।
उदयास्तमये भानुराछिन्नः शस्त्रसन्निभैः
घनैर्युद्धं खरोष्ट्राद्यैः पापरूपैर्भयप्रदः।।

यदि सूर्य और चन्द्रमा एक पक्ष या आधे पक्ष तक निरन्तर परिवेश में रहें, अथवा उदयास्त के समय

रक्तवर्ण के हों तो राजा का परिवर्तन होता है। सूर्य उदय और अस्त काल में शस्त्र के सदृश आकार वाले बादलों से कटा दृष्टिगोचर हो अथवा आकाश में सूर्य, गदहा और ऊँट जैसा पाप स्वरूप मेघों से आच्छादित दृष्टिगोचर हो तो भयानक युद्ध होता है।

चन्द्रमा का चार –

याम्यश्रृंगोन्नतश्चन्द्रोऽशुभदो मीनमेषयो:।
सौम्यश्रृंगोन्नत: श्रेष्ठोनृयुग्मकरयोस्तथा।।

मीन और मेषराशिगत चन्द्रमा का याम्यश्रृंग उन्नत होना अशुभ फलदायक तथा मिथुन और मकर राशिगत चन्द्रमा का सौम्य श्रृंग श्रेष्ठफलसूचक होता है।

समोऽक्षघटयो: कर्कसिंहयो: शरसन्निभ:।
चापकीटभयो: स्थूल: शूलवत्तौलिकन्ययो:।।
विपरीतोदितश्चन्द्रोदुर्भिक्षकलहप्रद:।
यथोक्तोभ्युदितश्चेन्दु: प्रतिमासं सुभिक्षकृत्।।

वृष और कुम्भ के चन्द्रमा के दोनों कोने समान, कर्क और सिंह राशियों में वाण की आकृति का, वृश्चिक और धनु राशियों में स्थूल, तुला और कन्या राशियों में शूल के सदृश होता है। यथोक्त प्रकार से उदित चन्दमा सुभिक्षकारक तथा इससे विपरीत उदय होने पर चन्द्रमा दुर्भि और कलह प्रद होता है।

आषाढद्वयमूलेन्द्रधिष्णयानां याम्यग: शशि:।
अग्निप्रदस्तोयचरवनसर्पविनाशकृत्।।

आषाढाद्वय, मूल, ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में यदि चन्द्रमा का याम्यश्रृंग उन्नत हो तो अग्निप्रद तथा जलचर, वन एवं सर्पों का विनाश करने वाला होता है।

विशाखामैत्रयोर्याम्यपार्श्वग: पापकृत्सदा।
मध्यग: पितृदैवत्ये द्विदैवत्ये शुभोत्तरे।।

सदैव विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों में याम्यश्रृंग उन्नत होने पर पापकारक होता है। तथा मघा में मध्यम और विशाखा में उत्तर श्रृंग शुभ होता है।

सम्प्राप्य पौष्णभात् रौद्रात्षट् ऋक्षाणि शशी शुभ:।
मध्यगो द्वादशर्क्षाणि अतीत्य नव वासवात्।।

रेवती से ६ नक्षत्र को प्राप्त कर चन्द्रमा शुभ होता है। तथा आर्द्रा से १२ नक्षत्रों में मध्यम और ज्येष्ठा से ९ नक्षत्रों को पारकर चन्द्रमा पुन: शुभफलदायक होता है।

यमेन्द्राहिभतोयेशा मरूतश्चार्द्धतारका:।

ध्रुवादिति द्विदैवा स्युध्यर्द्धाश्च परा: समा:।।

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, पू0षा0 तथा स्वाती ये अर्द्ध तारक या अर्द्धसंज्ञक नक्षत्र हैं तथा ध्रुव अर्थात् तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुनर्वसु, विशाखा इन नक्षत्रों की संज्ञा भी अर्धतारक है। शेष नक्षत्र सम होते हैं।

याम्यश्रृंगोन्त: श्रेष्ठ: सौम्यश्रृंगोन्नत: शुभ:।

शुक्ले पिपीलिकाकारे हानिर्वृद्धियथाक्रमात्।।

चन्द्रमा का दक्षिणश्रृंग उन्नत होना अशुभ और उत्तरश्रृंग उन्नत होना शुभ होता है। चन्द्रमा की आकृति में यदि चींटी का सा चिह्न दृष्टिगोचर हो तो क्रमश: कृष्णपक्ष में हानि और शुक्लपक्ष में वृद्धि होती है।

सुभिक्षकृद्विशालेन्दुरविशालोर्घनाशन:।

अधोमुखे शस्त्रभयं कलहो दण्डसंनिभे:।।

यदि चन्द्रमा का विशाल स्वरूप दृष्टिगोचर हो तो सुभिक्ष होता है तथा छोटा रूप दृष्टिगोचर हो तो दुर्भिक्ष होता है। चन्द्रमा के अधोमुख दृष्टिगोचर होने पर शस्त्रभय तथा दण्डाकार दृष्टिगोचर होने पर कलह उत्पन्न होता है।

कुजाद्यैर्निहते श्रृंगे मण्डले वा यथाक्रमात्।

क्षेमार्धवृष्टिनृपतिजनानां नाशकृच्छशी।।

यदि चन्द्रश्रृंग या चन्द्रमण्डल मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि से आहत हो तो क्रमश: क्षेम, अर्घ, वृष्टि, नृप वर्ग का तथा जन नाश करने वाला होता है।

भौमचार –

सप्ताष्टनवमर्क्षेषु स्वोदयाद्विक्रिते कुजे।

तद्वक्रमुष्णं तस्मिन्स्यात् प्रजापीडाग्निसंभव:।।

अपने उदय नक्षत्र से सातवें, आठवें तथा नवें नक्षत्र में यदि मंगल वक्री हो तो उसे उष्णसंज्ञक कहते हैं। इसमें अग्नि भय होता है तथा प्रजा पीड़ित होती है।

दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशे वा प्रतीपगे।

वक्रमल्पसुखं तस्मिन् तस्य वृष्टिविनाशनम्।।

यदि दशम, एकादश या द्वादश नक्षत्र में मंगल वक्री हो तो इसमें अल्प सुख हो तथा अवर्षण होता है।

कुजे त्रयोदशे ऋक्षे वक्रिते वा चतुर्दशे।

व्यालाख्यवक्रं तत्तस्मिन् सस्यवृद्धिरहेर्भयम्।।

यदि उदय नक्षत्र से तेरहवें या चौदहवें नक्षत्र में मंगल वक्री हो तो इसे व्याल नामक वक्र कहते हैं। इसमें धान्य की वृद्धि होती है तथा सर्पभय होता है।

पंचदशे षोडशर्क्षे तद्वक्रं रूधिराननं।

सुभिक्षकृत्भयं रोगान्करोति यदि भूमिज:।।

यदि १५ वें या १६ वें नक्षत्र पर मंगल ग्रह वक्री हो तो इसे रूधिरानन वक्र कहते हैं। इसमें सुभिक्ष होता है तथा भय एवं रोग होता है।

अष्टादशे सप्तदशे तदासिमुसलं स्मृतम्।

दस्युभिर्धनहान्यादि तस्मिन्भौमे प्रतीपगे।।

१८ वें १७ वें नक्षत्र में मंगल वक्री हो तो इसे असिमुसल नामक वक्र कहते हैं। इसमें चोरों से तथा डाकुओं से धन की हानि होती है।

फाल्गुन्योरूदितो भौमो वैश्वदेवे प्रतीपग:।

अस्तगश्चतुरास्यर्क्षे लोकत्रयविनाशकृत्।।

यदि मंगल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदय होकर उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में वक्री हो और पुन: रोहिणी में अस्त हो जाय तो तीनों लोकों का नाश करने वाला होता है।

उदित: श्रवणे पुष्ये वक्रतो नृपहानिद:।

यद्दिग्भ्योऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूपभयप्रद:।।

यदि मंगल श्रवण नक्षत्र में उदित हो और पुण्यनक्षत्र में वक्री हो तो राजाओं को हानिप्रद होता है। तथा जिस दिशा में उदय होता है उस देश के राजा के लिए भय उत्पन्न करता है।

मखा मध्यगतो भौमस्तत्रैवं च प्रतीपग:।

अवृष्टिशस्त्रभयद: पाण्डुदेशाधिपातकृत्।।

यदि मंगल मघा नक्षत्र के मध्य में उदय होकर मघा नक्षत्र में ही वक्री हो जाय तो अवृष्टि हो, शस्त्रभय हो तथा पाण्डु देश के राजा का मरण होता है।

पितृद्विदैवधातृणां भिद्यन्ते योगतारका:।

दुर्भिक्षं मरणं रोगं करोति यदि भूमिज:।।

यदि मंगल मघा, विशाखा और रोहिणी से योगतारा विद्ध हो तो दुर्भिक्ष, मरण तथा रोग होता है।

त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां नैऋते श्रवणेन्दुभे।

अष्टष्टिदश्चरन् भौमो रोहिणी दक्षिणे स्थित:।।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, मूल, श्रवण, मृगशीर्ष में चलते हुए यदि मंगल रोहिणी के दक्षिण भाग में हो तो अनावृष्टि
होती है।

भूमिज: सर्वधिष्ण्यानामुदग्गामी शुभप्रद:।
याम्यगोनिष्टफलदो भेदे भेदकरो नृणाम्।।

मंगल यदि किसी भी नक्षत्र के उत्तर भाग से गमन करे तो शुभदायक होता है। दक्षिण भाग से गमन करे तो अनष्टिकारक होता है। तथा भेद होने पर राजाओं में भेद उत्पन्न करता है।

बुधचार –

विनोत्पातेन शशिज: कदाचिन्नोदयं व्रजेत्।
अनावृष्टयग्निभयकृदनर्थं नृपविग्रहम्।।

बिना उपद्रव के बुध कभी उदय नहीं होता। इसके उदय होने पर अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ तथा राजाओं में विग्रह होता है।

वसु श्रवण विश्वेंदु धातृभेषु चरन् बुध:।
भिनत्ति यदि तत्तारामवृष्टि व्याधिभीतिकृत्।।

वसु धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़ा, मृगशिर्ष, रोहिणी इन नक्षत्रों में गमन करता हुआ यदि इन्हें वेध भी करे तो अनावृष्टि, व्याधि और भयकारक होता है।

आर्द्रादि पितृभ्रान्तेषु दृश्यते यदि चन्द्रज:।
तदा दुर्भिक्षकलहो रोगाणां वृद्धिभीतिकृत्।।

आर्द्रा से लेकर मघा पर्यन्त ६ नक्षत्रों में यदि बुध दिखाई दे तो वह दुर्भिक्ष कलह तथा रोग की वृद्धि करने वाला एवं भयदायक होता है।

हस्तादि रसतारासु विचरन् इन्दुनन्दन:।
क्षेमं सुर्भिक्षमारोग्यं कुरुते पशुनाशनम्।।

हस्त से ज्येष्ठा तक ६ नक्षत्रों में भ्रमण करते हुए बुध, क्षेम सुभिक्ष, आरोग्य प्रदान करता है, किन्तु पशुओं का नाश करता है।

अहिर्बुघ्नयार्यमाग्नेययमभेषु चरन् यदि।
धातुक्षयं च जन्तुनां करोति शशिनन्दन:।।

अहिर्बुध्न्य उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, भरणी नक्षत्र में यदि बुध गमन करें तो जन्तुओं का धातु क्षय करता है। अर्थात् दुर्भिक्ष होता है।

पूर्वात्रये चरन् सौम्यो योगतारां भिन्नति चेत्।
क्षुच्छस्रामय चौरेभ्यो भयदः प्राणिनस्तदा।।

बुध, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदादि नक्षत्रों में भ्रमण करते हुए यदि इनका भेद करे तो भूख-शस्त्र रोग और चोरों से प्राणी वर्ग को भय देता है।

याम्याग्निधातृवायव्यधिष्णयेषु प्राकृता गतिः।
ईशेंदुसापिर्पत्र्येषु ज्ञेया मिश्राह्वया गतिः।।

बुध की भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, स्वाती नक्षत्रों में प्राकृता गति तथा आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा नक्षत्रों में मिश्रा गति होती है।

संक्षिप्तादितिभाग्यार्यमेज्यधिष्णेषु या गतिः।
गतिस्तीक्ष्णाजचरणेऽहिर्बुध्न्येन्द्राश्विभेषु च।।

पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, उ0फा0, पुष्य इन नक्षत्रों में संक्षिप्ता तथा पू0भा0, उ0भा0 ज्येष्ठा और अश्विनी में बुध की गति को तीक्ष्णा गति कहते हैं।

मिश्रसंक्षिप्तयोर्मध्ये फलदो ऽन्यास्वर्निष्टदः।
वैशाखे श्रावणे पौषे – आषाढेप्युदितो बुधः।।
जनानां पाफलदस्त्वितरेसु शुभप्रदः।
इषोर्जमासयोः शस्त्रदुर्भिक्षाग्निभयप्रदाः।।
उदितश्चन्द्रजः श्रेष्ठो रजतस्फटिकोपमः।।

मिश्र और संक्षिप्त गतियों में बुध शुभफलदायक होता है तथा अन्य गतियों में अनिष्टकारके होता है। वैशाख, श्रावण, पौष, आषाढ में यदि बुध उदित हो तो प्रजावर्ग के लिए अशुभ होता है। आश्विन और कार्तिक मासों में शस्त्रभय, अग्निभय तथा दुर्भिक्ष होता है और शेष मासों में शुभ होता है। यदि बुध चाँदी और स्फटिक मणि के समान स्वच्छ उदित हो तो शुभफलदायक होता है।

गुरु चार -

द्विभा उर्जादिमासाः स्युः पंचात्यैकादशस्त्रिभाः।
यद्धिष्ण्याभ्युदितो जीवस्तन्नक्षत्राह्ववत्सरः।।

कार्तिक आदि महीने दो-दो नक्षत्रों के होते हैं किन्तु पाँचवाँ फाल्गुन अन्त्य आश्विन और एकादश भाद्रपद मास तीन-तीन नक्षत्रों का होता है तथा गुरु जिस नक्षत्र में उदय होता है उसी नक्षत्र के नाम से उस सम्वत्सर का नाम होता है। जैसे कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र में गुरु के होने पर कार्तिक मास तथा उस सम्बत्सर का नाम कार्तिक होगा।

पीडास्यात्कार्तिकेवर्षे रथगोऽग्न्युपजीविनाम्।
क्षुच्छस्राग्निभयंवृद्धिः पुष्पकौसुम्भजीविनाम्।।

कार्तिक नामक वर्ष कृत्तिका, रोहिणी में रथ, अग्नि तथा गायों से आजीविका चलाने वाले को पीड़ा होती है। भूख, शस्त्र और अग्नि का भय जनवर्ग को होता है तथा लाल और पीले रंग के फूलों की वृद्धि होती है। अथवा पुष्पों से आजीविका चलाने वाले सुखी रहते है।

अनावृष्टिः सौम्यवर्षे मृगाखुशलभाण्डजैः।
सर्वसस्यवधो व्याधिर्वैरं राज्ञां परस्परम्।।

सौम्य नामक वर्ष में वर्षा नहीं होती। मृग, चूहे, टीड्डी तथा अण्डज पक्षी आदि जीवों से फसल की हानि, रोग और वैर से जनकष्ट तथा राजाओं में पारस्परिक मनोमालिन्य रहता है।

निवृत्तवैराः क्षितिपाः जगदानन्दकारकाः।
पुष्टिकर्मरताः सर्वे पौषेऽब्देध्वरतत्पराः।।

पौष नामक वर्ष में राजा वैररहित हो जाते हैं। संसार में आनन्द व्याप्त होता है। सभी प्राणी पौष्टिक कार्य में रत तथा यज्ञ कार्य में तत्पर होते हैं।

माघेऽब्दे सततं सर्वे पितृपूजनतत्पराः।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वृष्टिः कर्षकसंमता।।

माघ नामक वर्ष में सभी लोग पितरों की पूजा में संलग्न तथा माता-पिता की आज्ञा में रहते हैं। सुभिक्ष रहता है, सब का कल्याण होता है तथा निरोग रहते हैं एवं कृषकों के मन चाहे जल को मेघ देते हैं।

चौराश्च प्रबलाः स्त्रीणां दौर्भाग्यं स्वजनाः खलाः।
क्वचित्वृष्टिः क्वचित्सस्यं क्वचिद्वृद्धिश्च फाल्गुने।।

फाल्गुन नामक वर्ष पू0फा0, उ0फा0 हस्त में चोरों का प्राबल्य, स्त्रीजाति को कष्ट, स्वजन विरोध, खण्डवृष्टि तथा कहीं-कहीं फसल उत्तम दृष्टिगोचर होती है।

चैत्रेऽब्दे मध्यमा वृष्टिरुत्तमान्नं सुदुर्लभम्।
सस्यार्घवृष्ट्य: स्वल्पा राजान: क्षेमकारिण:।।

चैत्र नामक वर्ष में सामान्य वृष्टि होती है। उत्तम अन्न प्राय: दुर्लभ हो जाता है। अन्न मंहगे होते हैं। वृष्टि स्वल्प होती है तथा राजा लोग जनता के अनुकूल कल्याण करते हैं।

वैशाखे धर्मनिरता राजान: सप्रजा भृशम्।
निष्पत्ति: सर्वसस्यानामभयोद्युक्त्चेतस:।।

वैशाख नामक वर्ष में प्रजा के सहित राजा धर्मकार्य में निरत होते हैं। सभी प्रकार का अन्न पैदा होता है तथा जनवर्ग निर्भय रहता है।

इसी प्रकार **ज्येष्ठ** नामक वर्ष में वृक्ष गुल्म और लताओं की वृद्धि तथा धान्य का नाश होता है, साथ ही धर्म के विचारक राजा के साथ शत्रुओं से कष्ट पाते हैं।

आषाढ़ नामक वर्ष में अवर्षण के कारण कहीं धान होगा और कहीं नहीं होगा तथा सभी राजा परस्पर जय की आकांक्षा वाले हो जाते हैं।

श्रावण नामक वर्ष में अनेक प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण भूमि पर देवताओं का पूजन होता है। तथा पाप और पाखण्ड का नाश होकर भूमि सुशोभित होती है।

भाद्रपद नामक वर्ष में वर्ष का पूर्वार्द्ध सस्यसम्पन्न तथा उत्तरार्द्ध में धान का नाश होता है। वृष्टि मध्यम होती है तथा राजाओं में युद्ध होता है और कहीं-कहीं क्षेम होता है, कहीं-कहीं समृद्धि सुभिक्ष और कही-कहीं अतिवृष्टि होती है।

आश्विन नामक वर्ष में सुवृष्टि होती है तथा सभी धान्य सफली होते हैं एवं सभी जीव प्रसन्न रहते हैं।

सौयभागे चरन् भानां क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत्।
विपरीतं गुरोर्याम्ये मध्ये च प्रतिमध्यमम्।।

यदि गुरु नक्षत्रों के उत्तर भाग से गमन करे तो क्षेम, आरोग्य एवं सुभिक्षकारी होता है। दक्षिण भाग से गमन करे तो विपरीत फल तथा मध्य भाग से गमन करे तो मध्यम फल देता है।

अनावृष्टिधूम्रनिभ: करोति सुरपूजित:।
दिवादृष्टो नृपवधंत्वथवा राजनाशनम्।।

गुरु यदि धूम्रवर्ण का दिखाई दे तो अनावृष्टि हो, दिन में दिखाई दे तो राजा का वध हो अथवा राज्य का नाश होता है।

द्वादश राशि में गुरु का चार –

मेष राशि पर गुरु हो तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषिका, शलभा, शुक, अत्यासन्नश्यराजान इन छ: का भय तथा भेड़-बकरियों का नाश होता है।

वृष राशिगत गुरु में अन्नों की उपज, प्रजा आरोग्य युत तथा कृषकों के अनुकूल वृष्टि होती है। किन्तु बालक, स्त्री और पशुओं की हानि होती है।

मिथुन राशि के गुरु मध्यम वृष्टि, धान्यहानि, राजाओं में युद्ध, जनता में भय तथा होता है एवं धान्य की वृद्धि होती है।

कर्क राशि पर गुरु के जाने से गायें अधिक दूध देनेवाली, सज्जनों का सुख, स्त्रियाँ मदमाती तथा धान्य से सम्पन्न पृथ्वी होती है।

सिंह राशि के गुरु में विप्र धनहीन हो जायें तथा अतिवृष्टि, सर्पभय और युद्ध में राजाओं का नाश होता है।

कन्या राशि के गुरु में सुन्दर वृष्टि हो, राजा स्वस्थ और प्रसन्न रहें। ब्राह्मण धर्म रत तथा सम्पूर्ण प्रजा स्वस्थ रहती है ।

तुला राशि में जाने पर सभी प्रकार का धातु तथा मूल अत्यधिक होता है एवं सुवृष्टि से पृथ्वी धनधान्य परिपूर्ण होती है।

वृश्चिक राशि में गुरु के जाने पर मदोन्मत्त राजाओं में युद्ध से जनपदों का नाश होता है एवं वृष्टि अत्यल्प या अत्यन्त उग्र एवं भयानक होती है। जिससे व्यग्रता रहती है।

धनु के गुरु में इति भीति तथा राजभय, अल्पवृष्टि उग्रराज पीड़ा तथा राजा धनरहित हो या राजाओं के धन का नाश होता है।

मकर राशि के गुरु में जनता शत्रु रहित, पृथ्वी धान्य, वृष्टि एवं धन से पूर्ण तथा जनवर्ग रोगभय से मुक्त रहता है।

कुम्भ राशि के गुरु में जनता देवताओं से स्पर्धा करने वाली होती है। पृथ्वी फल पुष्प समर्धता एवं वृष्टि से परिपूर्ण एवं रोग भय से भूमि रहित होती है।

मीन राशि गत गुरु में धान्य, समर्घ और वृष्टि से भूमि पूर्ण तथा कहीं-कहीं रोग एवं कहीं भय होता है और राजा न्याय करने वाले होते हैं।

शुक्र चार –

सौम्यमध्यमयाम्येषु मार्गेषु त्रित्रिवीथय:।

शुक्रस्यदस्रभाद्यैश्च पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभि:।।
नागेभैरावताश्चैव वृषभो गोजरद्गवा:।
मृगाजदहनाख्या: स्युयाम्यान्ता वीथयो नव।।

उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्ग में शुक की क्रमश: तीन-तीन वीथिया अश्विन्यादि क्रम से होती है। जिनका नाम क्रमश: १. नागवीथि, २. गजवीथि, ३. ऐरावत, ४. वृषभ, ५. गो, ६. जरद्गव, ७. मृग, ८. अज तथा ९. दहन वीथि याम्यान्त क्रम से होती हैं।

सौम्यमार्गेषु तिसृषु चरन् वीथिषु भार्गव:।
धान्यार्घवृष्टिसस्यानां परिपूर्तिं करोति स:।।

सौम्य मार्ग में नाग, गज तथा ऐरावतवीथियों से जब शुक्र गमन करता है तब धान्यार्घ वृष्टि और सस्य वृद्धि करता है।

मध्यमार्गेषु तिसृषु करोत्येषां तु मध्यम:।
याम्यमार्गेषु तिसृषु तेषामेवाधमं फलम्।।

मध्यमार्ग में (वृषभ-गो-जरद्गव) नामक वीथियों में जब शुक्र गमन करता है। तब मध्यम फलदायक होता है तथा याम्य मृग-अज-दहन नामक वीथियों से जब शुक्र गमन करता है तब अधम फलदायक होता है।

मघा से ५ नक्षत्रों में शुक्र के रहने पर पूर्व दिशा के मेघ शुभद होते हैं। स्वाती, विशाखा और अनुराधा में शक्र पश्चिम में शुभद होता है। इसके विपरीत अनावृष्टि होती है। तथा बुध के साथ हो तो सुवृष्टि होती है। कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या को यदि शुक्र उदय या अस्त होता है तो सुवृष्टि से भूमि को जलमय करता है। यदि गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशि में होकर पूर्व और पश्चिम वीथि में हों तो अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और मरण प्रद होते हैं। मंगल, बुध,गुरु और शनि, शुक्र के अग्रसर होते हैं, तो क्रमश: युद्ध, वाताधिक्य, दुर्भिक्ष एवं जल का नाश करने वाले होते हैं। कृष्ण, रक्त वर्ण का शुक्र उपवनों का नाश कारक होता है।

शनिचार –

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणी भाग्यभेषु च।
चरन् शनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत्।।

श्रवण, स्वाती, हस्त, हस्त, आर्द्रा, भरणी, पू0फा0, नक्षत्रों में यदि शनि गमन करे तो सुभिक्ष, आरोग्य तथा धान्यकारक होता है।

जलेशसार्पमोहेन्द्र नक्षत्रेषु सुभिक्षकृत्।
क्षुत् शस्त्रावृष्टिदोर्मूलेऽहिर्बुध्न्यान्त्यभयोर्भयम्।।

शतभिषा, आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रों में सुभिक्ष करने वाला, मूल नक्षत्र में भूख, शस्त्र भय तथा अवृष्टि कारक एवं उ0भा0 पद और रेवती नक्षत्रों में भयप्रद होता है।

मूर्धिन चैकं मुखे त्रीणि गुह्ये द्वे नयने द्वयम्।
हृदये पंच ऋक्षाणि वामहस्ते चतुष्टयम्।।
वामपादे तथा त्रीणि देया त्रीणि च दक्षिणे।
दक्षहस्ते च चत्वारि जन्मभाद्रविजस्थित:।
रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभसौख्यं च बन्धनं।।
आयासं चेष्टयात्रा च अर्थलाभ: क्रामात्फलम्।
वक्रकृद्रविजस्येह तद्वक्रफलमीदृशम्।
करोत्येवं सम: साम्यं शीघ्रगो व्युत्क्रमात्फलम्।।

पुरुषाकार शनि के शिर पर १, मुख में ३, गुह्य भाग में, नेत्र में २, हृदय में ५, बायें हाथ में ४, बायें पैर में ३, दाहिने पैर में ३, और दाहिने हाथ में ४ नक्षत्र की स्थापना जन्म नक्षत्र से क्रमश: करना चाहिए। इस प्रकार क्रमश: रोग, अलाभ, हानि, लाभ, सौख्य, बन्धन, दु:ख, इष्ट यात्रा तथा अर्थलाभ यह फल समझना चाहिए। यदि शनि वक्री हो तो विपरीत फल देता है और सम में समफल तथा शीघ्रगामी हो तो भी विपरीत फल देता है।

राहुचार –

अमृतास्वादनाद्राहु: शिरश्छिन्नोपि सोऽमृत:।
विष्णुना तेन चक्रेण तथापि ग्रहतां गत:।।

अमृत पान करने के कारण भगवान विष्णु के द्वारा सुदर्शन चक्र से शिर के कट जाने पर भी राहु अमर हो गया तथा छाया ग्रह की श्रेणी में आ गया।

वरेण धातुरर्केन्दू ग्रसते सर्वपर्वणि।
विक्षेपावनतेर्वश्याद्राहुर्दूरं गतस्तयो:।।

श्लोक का अर्थ है कि ब्रह्मा से वरदान पाकर अमावस्या और पूर्णिमा पर क्रमश: सूर्य और चन्द्र को ग्रसता है। विक्षेप की अवनति के कारण राहु, सूर्य और चन्द्रमा से दूर चला गया।

सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण ६ मास के वृद्धि के द्वारा होता है। इन ग्रहण काल के पर्वों का अधिपति

कल्पादि के क्रम से सात देवता होते हैं।

ब्रह्मा, इन्दु, इन्द्र, कुबेर, वरूण, अग्नि और यम नामक अधिपति होते हैं। ब्रह्म नामक पर्व में ग्रहण होने से पशु, अन्न और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की वृद्धि होती है।

ब्रह्म पर्व के सदृश सभी फल चन्द्र पर्व में भी समझना चाहिए। किन्तु इसमें बुद्धिजीवी वर्ग को कष्ट होता है। इन्द्र पर्व में राजाओं में विरोध तथा दु:ख एवं धान्यहानि होती है।

कुबेर नामक पर्व में ग्रहण होने से धनिक वर्गों के धन की हानि किन्तु अन्न की उपज होती है। तथा वरूण नामक पर्व में ग्रहण होने से राजाओं के लिए अशुभ तथा सामान्य जनता के लिए कल्याण प्रद होता है।

हुताशन पर्व में धान्य की वृद्धि, उत्तम वृष्टि तथा प्रजा का कल्याण। यम पर्व में अनावृष्टि, धान्यहानि तथा दुर्भिक्ष से जनवर्ग पीड़ित होता है।

दिशाक्रम से जाता हुआ राहु ब्राह्मणादि वर्णों को कष्टप्रद होता है। ग्रास के १० तथा मोक्ष के दश भेद होते हैं। देवताओं के द्वारा भी ग्रास और मोक्ष के दशविधभेद दृष्टिगोचर नहीं होते फिर सामान्य जनों की बात ही क्या है। अत: सिद्धान्त गणित द्वारा ग्रहों का आनयन कर उनका चार चिन्तन करना चाहिए।

केतुचार –

उत्पातरूपा केतूनां उदयास्तमया नृणाम्।
दिव्यान्तरिक्षा भौमास्तेशुभाशुभफलप्रदा:।।

केतु का उदय और अस्त होना उत्पात रूप है। ये केतु, दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम भेद से ३ प्रकार के हैं। ये मनुष्यों को शुभ तथा अशुभ फलदायक होते हैं।

जो केतु यज्ञध्वज, अस्त्र, भवन, रथ, वृक्ष, गज, स्तम्भ, शूल और गदा के आकार के हैं उन्हें अन्तरिक्ष केतु कहते हैं। नक्षत्रों में जो स्थित हैं उन्हें दिव्यकेतु और जो भूमि पर स्थित हैं उन्हें भौम केतु कहते हैं। अभिन्न रूप से एक भी केतु जीवों के अमंगल का कारण होता है।

यावन्तो दिवसा: केतुर्दश्यतेविविधात्मक:।
तावन्मासै: फलं वाच्यं मासैश्चैव तु वासरा:।।
ये दिव्या: केतवस्तेऽपि शश्वतीव्रफलप्रदा:।
अन्तरिक्षा मध्यफला भौमा मन्दफलप्रदा:।।

विविध प्रकार का केतु जितने दिनों तक दिखाई देता है उतने ही महीनों तक फल देता है। तथा जितने महीनों तक दिखाई दे उतने वर्षों तक उसका शुभाशुभ फल होता है जो दिव्यकेतु हैं वे भी कटुफलदायक, अन्तरिक्ष केतु मध्यम और भौमकेतु मन्द फल देने वाला होता है।

श्वेतकेतु छोटा चिकना और स्वच्छ होता हैतथा सुभिक्ष सूचक होता है। दीर्घकेतु यदि पूर्व दिशा में अस्त हो तो सुवृष्टिकारक होता है। इन्द्रधनुष के समान आकृतिवाला धूमकेतु अनिष्टप्रद और २,३,४ शूल के रूप में दिखाई देने वाला केतु राजा का अन्त करने वाला होता है।

मणिहार सुवर्णाभा दीप्तिमन्तोऽन्तर्कसूनवः।
केतवोभ्युदिताः पूर्वापरयोर्नृपघातकाः।।
बन्धूकबिम्बक्षतजशुकतुण्डाग्निसन्निभाः।
हुताशनप्रदास्तेपि केतवश्चाग्निसूनवः।।

मणि, हार तथा सोने की कान्ति के समान चमकने वाले केतु सूर्यपुत्र कहलाते हैं यदि ये उदय हों तो पूर्व तथा पश्चिम दिशा के राजाओं का नाश होता है। दोपहर का फूल, बिम्बा फल रूधिर, तोते का चोंच तथा अग्नि के वर्ण के केतु अग्निभय करते हैं तथा ये अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं।
ब्रह्माण्ड नामक केतु प्रजा का नाशक होता है। ईशान कोण में शुक्रपुत्र श्वेत केतु अनिष्ट देने वाले होते है/ शनिपुत्र केतु दो शिखावाले स्वर्ण वर्ण के होतें हैं जो अनिष्टकारक होते है। गुरु के पुत्र केतु विकच नाम से प्रसिद्ध है, ये दक्षिण में दिखाई देते हैं और अशुभफलदायक होते है।
बुधपुत्र केतु सूक्ष्म आकार के तथा श्वेत होते है। यह घोर तथा चौर भयकारक होते हैं। मंगलपुत्र केतु कुंकुम नामक रक्तवर्ण वाला अनिष्टकारक होता है। अग्नि से उत्पन्न केतु विश्वरूप से प्रसिद्ध है। यह शुभप्रद होता है।
कृत्तिका नक्षत्र से उत्पन्न केतु धूमकेतु कहलाता है तथा यह प्रजावर्ग का नाश करने वाला होता है। प्रासाद, पर्वत, और वृक्षों पर दृष्टिगोचर होने वाला केतु राजा का नाश करता है। कुमुद पुष्प के समान केतु कुमुद केतु कहलाता है तथा सुभिक्षकारक होता है। आवर्त्त नामक केतु सूर्यावर्त सदृश होता है तथा शुभद है। संवर्त केतु तीन सिरवाला लाल वर्ण का अनिष्टकारक होता है तथा यह संध्या में दिखाई देता है।

बोध प्रश्न -

1. ग्रहचार शब्द का अर्थ क्या है।

क. ग्रहचलन ख. ग्रह ग. ग्रहस्वरूप घ. उपग्रह

2. सूर्य जब मकरादि राशियों में हो तो क्या होता है।

क. उत्तरायण ख. दक्षिणायन ग. उत्तर गोल घ. दक्षिण गोल

3. सूर्य यदि रक्त वर्ण का दिखलाई देता है तो निम्न में किसके लिए अशुभ होता है।

क. ब्राह्मण ख. क्षत्रिय ग. वैश्य घ. शूद्र

4. मिथुन और मकर राशिगत चन्द्रमा का सौम्य श्रृंग का फल क्या होगा।

क. श्रेष्ठ ख. अशुभ ग. हानि घ. कोई नहीं

5. बुध के उदय का फल कैसा होता है?

क. शान्तिप्रद ख. शुभप्रद ग. उपद्रवकारी घ. लाभकारी

6. गुरु यदि धूम्रवर्ण का दिखलाई दे तो क्या फल होगा –

क. अतिवृष्टि ख.अनावृष्टि ग. उल्कपात घ. शान्तिकारक

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिष शास्त्र में ग्रहचार का अर्थ है – ग्रहों का चलन। 'चर' शब्द चलन अर्थ में प्रयुक्त होता है। सूर्यादि ग्रहों का चार एवं चारफल का वर्णन समस्त संहिताचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किया। यह निश्चित है कि किसी समय आश्लेषा के आधे भाग से रवि का दक्षिणायन और धनिष्ठा के आदि भाग से उत्तरायण की प्रवृत्ति थी, नहीं तो पूर्वशास्त्र में इसकी चर्चा नहीं होती। सम्प्रति कर्कादि से सूर्य के दक्षिणायन की और मकरादि से उत्तरायण की प्रवृत्ति होती है। इस तरह कथित अर्थ के अभाव का नाम विकार है। ये सब प्रत्यक्ष देखने से स्पष्ट होते है। सूर्य मण्डल में दण्ड की आकृति, कबन्ध (बिना सिर का शरीर), ध्वांक्ष (काक) की आकृति अथवा कील दृष्टिगोचर होने पर व्याधि, भय एवं चोर भय तथा धन का नाश होता है। श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण एवं मिश्रित रंग यदि सूर्य का दृष्टिगोचर हो तो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्त्यजों को कष्ट होता है। दो तीन या चार वर्ण यदि एक साथ दिखलाई दे तो राजा का अन्यथा प्रजा का नाश होता है। यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें ताम्र वर्ण की दिखाई दें तो राजा का नाश होता है।यदि सूर्य की उर्ध्वगामी किरणें पीतवर्ण की हों तो राजपुत्र श्वेत होने पर पुरोहित, चित्रित होने पर जनता, धूम्रवर्ण होने पर राजा तथा पिंगल होने पर मेघों की क्षति होती है। इसी प्रकार मंगल, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रह का भी चार होता है। द्वादश राशियों का चार फल

कहा गया है।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

उत्तरायण – मकरादि छः राशियों में सूर्य की स्थिति का नाम उत्तरायण है।

ग्रहचार - ग्रहचलन

रक्त वर्ण – लाल रंग

राशिगत – राशि में गया हुआ

वक्री – उल्टा

अनावृष्टि – अल्प वर्षा

संक्रमण – परिवर्तन

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. ख
4. क
5. ग
6. ख

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर:, टीका – पं. अच्युतानन्द झा

2. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

3. वशिष्ठ संहिता – टीका – आचार्य गिरिजाशंकर शास्त्री

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. भृगु संहिता
2. वशिष्ठ संहिता
3. लोमश संहिता
4. रावण संहिता

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहचार से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहचार का वर्णन कीजिये।
3. नारद संहिता के अनुसार गुरु एवं शुक्र ग्रह चार का उल्लेख कीजिये।
4. वृहत्संहिता के अनुसार सूर्यचार का प्रतिपादन कीजिये।
5. सूर्यादि समस्त ग्रहों का चार वर्णन कीजिये

इकाई - 4 ग्रह वर्षफल विवेचन

इकाई की संरचना

४.१. प्रस्तावना
४.२. उद्देश्य
४.३. ग्रहवर्ष फल- सामान्य परिचय
 ४.३.१ वर्षपति निर्णय
 ४.३.२ शक-संवतादि विचार
४.४. वृहत्संहिता के अनुसार सूर्यादि ग्रहों के वर्षफल विवेचन
४.५. सारांश
४.६. पारिभाषिक शब्दावली
४.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
४.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
४.९. सहायक पाठ्य सामग्री
४.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

४.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – ग्रह वर्षफल विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने संहिता ज्योतिष से जुड़े ग्रहचार सम्बन्धित विषय का अध्ययन कर लिया है अब आप सूर्यादि ग्रहों का वर्षफल का अध्ययन करेंगे।

संहिता ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रहों के वर्षफल का वर्णन किया गया है। वस्तुत: ग्रहों के वर्षफल सम्बन्धित विवरण को ही ग्रह वर्षफल के नाम से जानते है।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े सूर्यादि समस्त ग्रहों का वर्षफल का अध्ययन हम इस इकाई में करते है।

४.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वर्षफल किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि सूर्य तथा चन्द्रमा का वर्षफल क्या है।
- बुध एवं गुरु के वर्षफल को समझ सकेंगे।
- शुक्र एवं शनि के वर्ष फल को जान लेंगे।
- वर्षफल में विशेष तथ्यों को समझा सकेंगे।

४.३. वर्ष फल परिचय

वर्षफल संहिता ज्योतिष का महत्वपूर्ण अध्याय माना गया है। इसमें प्रत्येक वर्ष के अधीश्वर तथा उसके शुभाशुभ फल का निर्णय किया जाता है। चैत्रादि मासों में क्रमश: सूर्य का संक्रमण प्रमिमास होते रहता है, क्योंकि सूर्य ३० दिन में ३० अंश अर्थात् १ राशि का परिक्रमण करता है। अब आइए यहाँ वर्षफल का अध्ययन करते हैं।

४.३.१ वर्षपति का निर्णय -

चैत्राद्येष्वपि मासेषु मेषाद्या: संक्रमा: क्रमात्।
चैत्रादितिथिवारेशस्तस्याब्दस्य त्वधीश्वर:।।

अर्थात् चैत्रादि मासों में क्रमश: मेषादि राशियों की संक्रान्ति होती है। तथा चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन जो वार पड़ता है उस वार का अधिपति ग्रह उस वर्ष का अधीश्वर (राजा) होता है।

मेषसंक्रान्तिवारेशो भवेत्सोपि च भूपति:।
कर्कटस्य तु वारेशो सस्येशस्तत्फलं तत:।।

मेष संक्रान्ति का वारेश भी भूपति होता है तथा कर्क संक्रान्ति का वारेश सस्येश होता है।

तुलासंक्रान्तिवारेशो रसानामधिप: स्मृत:।
मकराधिपति: साक्षाद्रसस्याधिपति: क्रमात्।।

तुला संक्रान्ति का वारेश रसाधिपति या रसेश कहलाता है तथा मकर संक्रान्ति का वारेश भी रसाधिपति या निरसेश कहलाता है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा दिवाकर:।
तस्मिन्नब्दे नृपक्रोध: स्वल्पसस्यार्धवृष्टिकृत्।।

जिस वर्ष वर्षपति राजा मन्त्री या सस्येश यदि **सूर्य** हो तो उस वर्ष राजा क्रोधयुक्त रहता है, अन्न की उपज कम होती है तथा वृष्टि भी कम ही होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा निशाकर:।
तस्मिन्नब्दे करोति क्ष्मां पूर्णां शालिफलेक्षुभि:।।

जिस वर्ष वर्षपति राजा मन्त्री या सस्येश **चन्द्रमा** होता है, उस वर्ष पृथ्वी को धान, फल तथा ईख से परिपूर्ण करता है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा महीसुत:।
तस्मिन्नब्दे चौरवह्निवृष्टिक्षुद्भयकृत्सदा।।

अब्दपति राजा मन्त्री या सस्येश **मंगल** हो तो उस वर्ष चोरों से भय, अग्निभय, वृष्टिभय तथा भूख से पीड़ा होती है। अर्थात् भूखमरी होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा शशांकज:।
अतिवायुं स्वल्वृष्टिं करोति नृपविग्रहम्।।

अब्दपति राजा मन्त्री या सस्येश **बुध** हो तो उस वर्ष वायु प्रकोप, स्वल्प वृष्टि तथा राजाओं में युद्ध होता है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा सुरार्चित:।
करोत्यनुत्तमां धात्रीं यज्ञधान्यार्थवृष्टिभि:।।

अब्दपति राजा मन्त्री या सस्येश **गुरु** हो तो उस वर्ष यज्ञ, धान्य तथा वृष्टि से पृथ्वी परिपूर्ण होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा भृगोः सुतः।

करोति सर्वां संपूर्णां धात्रीं शालिफलेक्षुभिः।।

अब्दपति, राजा या सस्येश यदि **शुक्र** होता है तो भूमि धान फल तथा ईख आदि से परिपूर्ण होती है।

अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वार्कनन्दनः।

आतंकश्चौरवह्न्यंबुधान्यभूपभयप्रदः।।

अब्दपति, राजा सस्येश यदि **शनि** हो तो, मृत्यु या आतंक, चौर, अग्नि, जल, धान्य हानि तथा राजभय होता है।

४.३.२ शक-संवतादि विचार

शक्-संवतादि प्रवर्त्तक राजाओं के नाम –

श्रीवीर विक्रमकृता इह संवदाख्या

अब्दास्ततः शकनृपेण कृताः शकाब्दाः।

श्रीमत् सिकन्नरनरेशकृताः सनाख्या

ज्ञेया इमे बुधजनैर्जगति प्रसिद्धाः।।

अर्थात् श्री वीर विक्रम कृत संवत्, शकनृपकृत शक और सिकन्नरनरेश कृत सनाब्द के प्रवर्त्तक कहे गये है। इन्हीं से इन सब की परम्परा आरम्भ हुई। ऐसा आप सभी को समझना चाहिए।

वर्षप्रवृत्तिकाल निरूपणम् –

चैत्रस्य कृष्णप्रतिपत्प्रवृत्ते संवत्प्रवृत्तिस्त्वजगं दिनेशे।

शाकस्य कृष्ण प्रतिपत्प्रवृत्तेः स्याच्छ्रावणस्यापि सनप्रवृत्तिः।।

चैत्र कृष्ण प्रतिपत्तिथि के आरम्भ हसे संवत्त् की प्रवृत्ति, सूर्य की मेष संक्रानित से शकाब्द की और श्रावण कृष्ण प्रतिपतिथि के आरम्भ से सनाब्द की प्रवृत्ति होती है।

शक से वर्ष फल –

सूर्याश्रयत्वाच्छकवत्सराणामुक्ता फलार्थं खलु मुख्यताऽतः।

वक्ष्ये शकाब्दब्दफलं जनानां हिताय गर्गादिमुनिप्रणीतम्।।

शकाब्द को सूर्याश्रय होने से फलादेश में उसकी प्रधानता है, अत: गर्ग आदि मुनि प्रणीत वर्षफल को जनहिताय शकाब्द द्वारा कहा जा रहा है।

वर्षलग्न शुभाशुभ विचार –

यस्मिन्देशे यत्र लग्ने शकस्य

प्रारम्भः स्यात्तत्रतद्वर्षं लग्नम्।

तच्चेत्स्वामी सौम्य युक्तेक्षितं वा
लग्नस्वामी शोभन: शोभनक्षे।।

जहाँ जिस लग्न में शकाब्द आरम्भ हो, वहाँ का वह वर्ष लग्न होता है। अर्थात् मेषसंक्रान्ति के प्रारम्भ में जो लग्न हो, वह वर्ष लग्न है। वर्षलग्न अपने अधिपति एवं शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो, अथवा लग्नेश शुभराशि में हो तो वर्ष शुभ होगा, ऐसा जानना चाहिए।

स्वर्क्षेतुंगे कोणकेन्द्रे सुहृदभे, सौम्यैर्युक्तो वीक्षित: शोभनोब्द:।
यद्यन्यर्क्षे क्रूरयुक्तेक्षितो वा लुप्तो नीचे नैवशस्तस्तदानीम्।।

अपनी राशि में या उच्च में अथवा लग्न से १,४,७,१०,९,५ इन स्थानों में से किसी एक स्थान में हो, या मित्रग्रह की राशि में हो और शुभ ग्रह से युत दृष्ट हो तब वह वर्ष शुभ होता है। यदि उक्त स्थान से अन्य स्थान में हो और पापग्रह से युत दृष्ट हो या अस्त अथवा अपनी नीच राशि में हो, तब वर्ष शुभ नहीं होता है।

शुभाशुभवर्षफल

प्रजा: प्रमुदिता: सर्वा भूरिशस्या वसुन्धरा।
सुवृष्टि: शोभने वर्षे जायते नात्र संशय:।।
नृपभीतिर्महत्कष्टा महार्घं च धरातलम्।
भवेत्सूर्यकरैतप्तं दुर्भीक्षं क्रूरवत्सरे।।

शुभवर्ष में सभी प्राणी प्रसन्न रहते है और अच्छी उपज एवं सुवृष्टि होती है, इसमें सन्देह नहीं है। अशुभ वर्ष में राजभय, विशेषकष्ट, महर्घत, विशेषगर्मी और दुर्भिक्ष होता है।

शक से सुभिक्षादि ज्ञान –

त्रिघ्नेशके बाणयुतेऽद्रिभक्ते शेषात्क्रमेणाब्दफलं प्रवाच्यम्।
सुभीक्षदुर्भीक्ष सुभीक्षकानि महर्घदुर्भीक्षसमत्वनाशा:।।

त्रिगुणित शकाब्द में ५ जोड़कर ७ का भाग देने पर एक आदि शेष के क्रम से सुमिक्ष, दुर्भिक्ष, सुभिक्ष, महर्घता, दुर्भिक्ष, सम और विनाश ये फल जानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता के अनुसार शुभाशुभ वर्ष ज्ञान –

तिथिवारर्क्षयोगानां योग: संवत्सरान्वित:।
प्रष्टुर्नामाक्षरैर्युक्तस्त्रिहत: शेषत: फलम्।।
शशिशेषे भवेत्क्लेश: समताद्विमिते तथा

त्रिशेषे बहुधा सौख्यं वदन्ति मुनयोऽमला:।।

प्राश्निक जिस दिन वर्षफल ज्ञान के लिए प्रश्न करें, उस दिन के तिथि, वार, नक्षत्र और योगों की संख्या को जोड़कर उसमें संवत्सर और पूछने वाले के नामाक्षर की संख्या जोड़ दें, योगफल में ३ का भाग देकर शेष के क्रम से फल जानना चाहिए। १ शेष में क्लेश, २ में मध्यम और ३ शेष में सुख होता है।

चैत्रशुक्लप्रतिपतिथि फल –

चैत्रस्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ चेद्वारो खेश्चित्रितवृष्टिरब्दे
चन्द्रस्य वारो बहुवृष्टिदः स्यात् भौमो यदा शोषमुपैति पृथ्वी।
सौम्यो गुरुर्वा भृगुजो यदि स्यात् संपत्प्रयुक्ता धरणी सुशस्या
वारो यदि सूर्यसुतस्य दैवाद् दुर्भीक्षदु:खैर्विकलाधरित्री।।

अर्थात् चैत्रशुक्ल प्रतिपदा तिथि यदि रविवार को पड़े तो चित्रवृष्टि, सोमवार को बहुवृष्टि, मंगल में न्यून वृष्टि, बुध, गुरु और शुक्र वारों में धान्यादि की उपज अच्छी होती है। यदि शनिवार पड़े तो दुर्भीक्ष और अनेक उत्पात से पृथ्वी के प्राणी विकल होते है।

पौषामावस्याफल –

रविकुजकिजवासरकेषु चेत्सहसिदर्शतिथिर्गिरजेऽखिला।
बहुधर्नर्धरणी परिपूरिता सकलशस्ययुता मुदति प्रजा।।

अर्थात् यदि पौष की अमावस्या तिथि, रवि, मंगल या शनि वार को पड़े तो उस वर्ष सम्पूर्ण पृथ्वी अनेक संपत्ति और विविध अनाजों से परिपूर्ण रहती है तथा सभी प्रजा प्रसन्न रहती है। ऐसा आपको जानना चाहिए।

४.४ वर्ष फल विचार

अब यहाँ वृहत्संहिता ग्रन्थ के अनुसार वर्ष फल का उल्लेख करते हैं-

सूर्य का वर्षफल विचार -

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि
दैवाद् बिभक्षयिषुदंष्ट्रिसमावृतानि।
नद्यश्च नैव हि पयः प्रचुरं स्त्रवन्ति

रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि।।
तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले
नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः।
नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्च
सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि।।
हस्त्यश्वपत्तिमदसह्याबलैरुपेता
बाणासनासिमुशलातिशयाश्चरन्ति
घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान्
संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे।।

सूर्य से वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करने वाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ-फाल्गुन) में भी सूर्य का भयंकर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दुःखी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों का नाश करते हुये विचरण करते हैं।

चन्द्र वर्षफल -

तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीव
फुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि।
गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा
रामा रतैरविरतं रमयन्ति रामान्।।
गोधूमशालियवधान्यवरे क्षुवाटा
भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढया।
चित्यङ्किता क्रतुवरेष्टिविघुष्टनादा
संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्तिः।।

चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (मषिश्रृंग) के सामन निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरतयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित

वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री (निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली), गेहूँ, शाठी, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती हैं।

भौम का वर्षफल-

वातोद्धतश्चरति वहिरतिप्रचण्डो
ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः।
हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति
निःस्वीकृता विपशवो भुवि मर्त्यसङ्गः।।
अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽप
मुंचन्ति कुत्रचिदपः प्रचुरं पयोदाः।
सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं
निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति।।
भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः
पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः।
एवंविधैरुपहता भवति प्रजेयं
संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या।

मंगल के संवत्सर, मास या दिन में वायु से संचालित ग्राम, वन और नगरों का दग्ध करने की इच्छा रखने वाली भयंकर अग्नि चलती हैं। चोरों से निर्धन किये हुये पीड़ित मनुष्यगण हाहाकार करते हैं। आकाश में संगठित मूर्ति वाले मेघ कहीं भी अधिक वृष्टि नहीं करते। निम्न स्थान में उत्पन्न धान्य सूख जाते हैं तथा पके हुये धान्य भी वज्रपात आदि उत्पातों से नष्ट हो जाते हैं। राजा लोग धर्मपालन में तत्पर नहीं रहते हैं। पैत्तिक रोगों की अधिकता होती हैं। सर्पों से लोगों को पीड़ा होती हैं। इस तरह मंगल के स्वामित्व में प्रजागण पीड़ित और धान्यों का नाश होता हैं।

बुध का वर्ष फल-

मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां
गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः।
पिप्रीषया नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि
दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः।।

वार्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च
सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः।
अध्यक्षरस्वभिनिविष्टधियोऽपि केचि-
दान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः।।
हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां
युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च।
हार्दिं करोति मृगलांगनछनजः स्वकेऽब्दे
मासेऽथवा प्रचुरता भुवि चौषधीनाम्।।

बुध के वर्ष, मास या दिन में प्रपंचों में कुशल, इन्द्रजाल विद्या को जानने वाले, आश्चर्य देखने वाले, अर्थोत्पत्ति स्थान को जानने वाले, नगरों में रहने वाले, गान विद्या जानने वाले, लेखक, गणितज्ञ और अस्त्र विद्या जानने वाले उन्नतियुत होते हैं। राजा लोग परस्पर प्रीति बढ़ाने की इच्छा से आश्चर्यजनक और हर्षोत्पादक द्रव्य परस्पर एक-दूसरे को देने की इच्छा करते हैं। वार्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य) अवितथा (सफल) होती हैं। त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद) का अत्यधिक पाठ होता हैं। मनु राजा से रचित दण्डनीति नामक पुस्तकोक्त नीति की तरह नीति चलती है अर्थात् जिस तरह मनु राजा प्रजारक्षण करते थे, उसी तरह उस वर्ष के राजा अपनी प्रजा की रक्षा करते हैं। कोई अध्यात्म विद्या (योगशास्त्र) में और कोई आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या) में विरत होते हैं। हास्यज्ञ, दूत, कवि, बालक, नपुंसक, युक्तिज्ञ, सेतु (स्थल), जल और पर्वत पर निवास करने वाले प्रसन्न होते हैं तथा पृथ्वी पर औषधियों की अधिकता होती हैं।

गुरु का वर्षफल -

ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन्।
विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम्।।
क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढया।
क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्द्धिजना तदा विभाति।।
विविधैर्वियदुन्नतैः पयोदैर्वृतमुर्वीं पयसाभितर्पयद्भिः।
सुरराजगुरोः शुभे तु वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता।।

गुरू के शुभ वर्ष, मास या दिन में यज्ञों में रात्रिवर्जित काल में श्रेष्ठ ब्राहाम्ण से उच्चरित, विस्तीर्ण, स्वर्ग तक पहुँचने वाली, यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों से मन को भेदन करने वाली और इन्द्रादि के मन को प्रसन्न करने वाली वेदध्वनि होती हैं। राजाओं से अच्छी तरह परिरक्षित, उत्तम

धान्य, बहुत हाथी, पदाति, घोड़ा, धन और विस्तृत गोकुलों से पृथ्वी परिपूर्ण होती हैं। देवता के समान मनुष्य होते हैं। सदा भूमि को जल से परिपूण करते हुये उन्न्त, विविध मेघों से आकाश व्याप्त होता हैं तथा बहुत तरह के धान्य और समृद्धि से युत पृथ्वी होती हैं।

विशेष- यहाँ पर शुभ वर्ष इसलिये कहा गया हैं कि बृहस्पतिचारोक्त पिंगल-कालयुत और रौद्रनामक बृहस्पति के वर्ष अशुभ हैं। अतः इस वर्ष का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता; किन्तु प्रभव, शुक्ल, प्रमोद आदि वर्षों का स्वामी होने पर बृहस्पति का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता हैं।

शुक्र का वर्ष फल -

शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभ-
धाराधरोज्झितपयः परिपूर्णवप्रा।
श्रीमत्सरोरुहतताम्बुतडागकीर्णा
योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङीग।।
क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्ष-
मुद्घुष्टनैकजयशब्दविराविताशम्।
संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां
गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढयाम्।।
पेपीयते मधु मधौ सह कामिनीभि-
र्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम्।
बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्न-
मब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः।।

शुक्र के वर्ष, मास या दिन में शाली और इक्षु (ईख -गन्ना) से युत, पर्वत के समान मेघों से गिरे हुये जल से परिपूर्ण तट वाली, सुन्दर कमल और जल से परिपूर्ण तालाब से व्याप्त; अतः विविध वर्णों से युत पृथ्वी सम्पूर्ण भूषणों से युत स्त्री की तरह शोभित होती हैं। पृथ्वी पर शत्रुपक्ष के बहुत सेनाओं को नाश करने से उद्घोषित जयशब्दों से सभी दिशाओं को पूर्ण करने वाले राजवर्ग होते हैं। आनन्दयुत सज्जनगण, विनष्ट दर्जन-गण और अर्थोत्पतिस्थानों से युत पृथ्वी होती हैं। वसन्त समय में स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक बार-बार मद्यपान करती हैं, बाँसुरी और वीणा के साथ श्रवणसुखद गीत गाती हैं, अभ्यागत, मित्र और बन्धुओं के साथ बार-बार भोजन करती हैं तथा सब जगह कामदेव का जय-जयकार होता हैं।

शनि वर्षफल-

उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि।
रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च।।

वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्ष-
मारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः।
नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा
तोयाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः।।
जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाश-
मृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि।
सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रु-
र्वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते।।

शनि के वर्ष, मास या दिन में चोरों से सम्बन्धित युद्धों से व्याप्त, पशु और धानों से रहित, संग्राम में बन्धुजनों के मारण से बार-बार रोते हुये वंशों से युत, प्रधान रोग तथा क्षुधा से व्याकुल राष्ट्र होते हैं, वायु से उड़ायें गये मेघों से रहित आकाश होता हैं, अनेक तरह से नष्ट वृक्षों से युत पृथ्वी होती हैं, सूर्य और चन्द्रकिरणों से रहित आकाश होता हैं, धूलियों से स्थागित वापी, कूप और तालाब होते हैं तथा नदियों में अत्यन्त कम जल होता हैं। इन्द्र अल्प वर्षा करता हैं, इसलिये कहीं-कहीं पर जल के विना धान्य नष्ट हो जाते हैं और कहीं-कहीं पर जल से सिक्त होकर पुष्ट होते हैं।

वर्षफल में विशेष विचार

अणुरपटुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा
न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा यः।
यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः
शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योन्यतायाम्।।

जो ग्रह सूक्ष्म, अस्पष्ट किरण वाला, नीच स्थानस्थित या ग्रहयुद्ध में पराजित हो, वह सम्पूर्ण फल देने वाला नहीं होता हैं। इससे विपरीत लक्षणयुत होने से सम्पूर्ण फल देने वाला होता हैं। अशुभ वर्ष में रवि, मंगल और शनि के अशुभ मासफल की वृद्धि होती हैं। इससे या सिद्ध होता है कि अशुभ ग्रह के वर्ष में अशुभ ग्रह का मासाधिपतित्व होने पर अत्यन्त अशुभ फल होता हैं तथा वर्षाधिप, मासाधिप-दोनों शुभग्रह हों तो शुभ फल कह वृद्धि और एक शुभ एवं दूसरा अशुभ हो तो याप्य (अल्प फल) होता हैं।

बोध प्रश्न

1. सूर्य की मासिक गति है।
   क. ३० अंश ख.४० अंश ग.५० अंश घ.६० अंश
2. कर्क संक्रान्ति का वारेश क्या होता है।
   क. मेघेश ख. रसेश ग. सस्येश घ. सुखेश
3. विक्रम संवत् का प्रचलन किसके काल से हुआ है।
   क. विक्रमादित्य ख. मगध ग. अशोक घ. मुगल
4. तुला संक्रान्ति का वारेश निम्न में होता है-
   क. सस्येश ख. रसेश ग. वर्षेश घ. मेघेश
5. चन्द्र के वर्ष मास दिन में वर्षफल क्या होगा।
   क. सर्वमंगलकारी ख. दु:खकारी ग. अशुभकारी घ. कोई नहीं

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वर्षफल संहिता ज्योतिष का महत्वपूर्ण अध्याय माना गया है। इसमें प्रत्येक वर्ष के अधीश्वर तथा उसके शुभाशुभ फल का निर्णय किया जाता है। चैत्रादि मासों में क्रमश: सूर्य का संक्रमण प्रमिमास होते रहता है, क्योंकि सूर्य ३० दिन में ३० अंश अर्थात् १ राशि का परिक्रमण करता है। सूर्य से वर्ष, मास या दिन में पृथ्वी पर सब जगह अल्प धान्य, दैववश भक्षण की इच्छा करने वाले दंष्ट्रीगण (सर्प, सूअर आदि जन्तुओं) से संयुत वन, नदियों में अल्प जल, रोगनाश के लिये वीर्ययुत ओषधि का अभाव, शिशिर काल (माघ-फाल्गुन) में भी सूर्य का भयंकर ताप, पर्वत के समान मेघ से भी अधिक वृष्टि का अभाव, आकाशस्थित नक्षत्र और चन्द्र में दीप्ति का अभाव, तपस्वीगण शोकयुत और गौओं के समुदाय दुःखी होते हैं। संग्राम में हाथी, घोड़ा, पदातियों से युत असह्य सैन्य, धनु, खड्ग और मुशलों से युत मन्त्री आदि के साथ होकर राजा लोग देशों का नाश करते हुये विचरण करते हैं। चन्द्र के वर्ष, मास या दिन में चलित पर्वत, सर्प, कज्जल, भ्रमर और गवल (मषिश्रृंग) के सामन निर्मल जल से पृथ्वी को पूर्ण करते हुये तथा विरही जनों के औत्सुक्यजनक गौरतयुत ध्वनियों से दिशाओं को पूर्ण करते हुये मेघों से आच्छादित आकाश, कमल और कुमुद से युत जल, प्रफुल्लित वृक्ष और शब्दायमान भ्रमरों से युत उपवन, अधिक दूध देने वाली गौ, नेत्रों से सुन्दरी स्त्री (निरन्तर अपने पति को आनन्द देने वाली),

गेहूँ, शाठी, यव, श्रेष्ठ धान्य और इक्षुवाटों से युत, नागरिक आकरों (अर्थोत्पत्ति स्थानों) से युत, अग्नि स्थानों से व्याप्त तथा श्रेष्ठ यज्ञ और इष्टि (पुत्रकाम्यादि यज्ञ) से समन्वित पृथ्वी राजा से परिपालित होती हैं। इसी प्रकार भौमादि ग्रहों का वर्षफल भी होता है।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

रसेश – तुला संक्रान्ति का वारेश

सस्येश - कर्क संक्रान्ति का वारेश

संवत् – श्री विक्रम के काल से आरम्भ हुआ

वर्षेश – वर्ष का स्वामी

वर्षफल – वर्ष का शुभाशुभ फल

वृष्टि – वर्षा

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

४.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ग
3. क
4. ख
5. क

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – भास्कराचार्यः, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा

2. नारदसंहिता – आर्ष ग्रन्थ, टिका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. वशिष्ठ संहिता
3. नारद संहिता
4. भृगु संहिता

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्षफल का परिचय दीजिये।
2. शक्-संवतादि का वर्णन कीजिये।
3. वर्षेश, सस्येश, रसेशादि का उल्लेख कीजिये।
4. वृहत्संहिता के अनुसार सूर्य, चन्द्र एवं भौम का वर्ष फल लिखिये।
5. गुरु, शुक्र एवं शनि ग्रह का वर्षफल लिखिये।
6. वर्षफल में विशेष का उल्लेख कीजिये।

इकाई - 5 नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण

इकाई की संरचना

५.१. प्रस्तावना
५.२. उद्देश्य
५.३. नक्षत्र गत - सामान्य परिचय
५.४. कृत्तिकादि नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण
५.५. सारांश
५.६. पारिभाषिक शब्दावली
५.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
५.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
५.९. सहायक पाठ्य सामग्री
५.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

५.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के प्रथम खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के प्रमुख गणित एवं होरा या फलित स्कन्ध का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

संहिता ज्योतिष किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

५.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वास्तु किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का इतिहास क्या है ।
- वास्तुशास्त्र के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों का नाम जान लेंगे ।
- वास्तुशास्त्र की उपयोगिता को समझा सकेंगे ।

५.३. नक्षत्र गत पदार्थ

संहिता ज्योतिष में नक्षत्रों के अन्तर्गत पदार्थों का विश्लेषण आचार्य के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। वस्तुत: नक्षत्रों में कृत्तिका से आरम्भ कर अन्य शेष २८ नक्षत्र गत में उसके क्या- क्या पदार्थ हैं। इसका उल्लेख क्रमश: यहाँ किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वराहमिहिर द्वारा प्रतिपादित वृहत्संहिता नामक ग्रन्थ में जातिगत पदार्थ विश्लेषण एवं अन्य सम्बन्धित विशेष विचारों का भी उल्लेख यहाँ आप सभी के ज्ञानार्थ वर्णित है।

५.४ कृत्तिकादि नक्षत्र गत पदार्थ विश्लेषण

सर्वप्रथम **कृत्तिका नक्षत्र** का उल्लेख करते हुए आचार्य कहते है -

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञा:।

आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः।।

श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण, खान, आकरिक, हजाम, ब्राहमण, कुम्भार, पुरोहित, ज्योतिष- ये सब कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

रोहिणी नक्षत्र के पदार्थ -

रोहिण्यां सुव्रतपण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः।
गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः।।

सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत-ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्रगत हैं।

मृगशिरा नक्षत्र गत पदार्थ -

मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचनविहङाःग।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च।।

सुगन्तिधयुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रस, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस का पान करने वाले, विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक-ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं।

आर्द्रा नक्षत्र के पदार्थ -

रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठयभेदरताः।
तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः।।

वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, पर-स्त्रीगामी, चोर, शठ (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले-ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।।4।।

पुनर्वसु नक्षत्र गत पदार्थ -

आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः।
उत्तमधान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः।।

सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौचयुत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी-ये सब पुनर्वसु नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पुष्य नक्षत्र के पदार्थ -

पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुरवनानि मन्त्रिणो भूपाः।

सलिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च।।

यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले (धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले)-ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्रगत हैं।

आश्लेषा -

अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि।
परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च।।

कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन का हरण करने वाले, भूसी वाले धान्य, सभी प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने वाले-ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

मघा-

पित्र्ये धनधान्याढयाः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः।
पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः।।

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता-माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी स्त्रीद्वेषी-ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पूर्वाफाल्गुनी-

प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि।
कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि।।

नाचने वाले, स्त्रियाँ, सबों के प्रिय, गानविद्या को जानने वाले, शिल्पी, विक्रय या क्रय-द्रव्य, कार्पास (रुई), नमक, शहद, तेल, बालक-ये सभी पदार्थ पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रगत हैं।

उत्तराफाल्गुनी-

आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाखण्डिदानशास्त्ररताः।
शोभनधान्यमहाधनकर्मानुरताः समनुजेन्द्राः।।

कोमल हृदय वाले, शुद्ध (दूसरे के धनादि को नहीं चाहने वाले), नीतिज्ञ, पाखण्डी (वेदनिन्दक), दानी, शास्त्रों में निरत, सुन्दर धान्य, अतिशय धनी, कर्म में निरत राजा-ये सब उत्तरफल्गुनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

हस्त-

हस्ते तस्करकुंजररथिकमहामात्रशिल्पिपण्यानि।
तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र।।

चोर, हाथी, रथ पर चलने वाले, हस्तिसाधनपति, शिल्पी, क्रय-विक्रय द्रव्य, भूसी वाले धान्य, सुनने वाले, वणिक्, तेजस्वी-ये सब हस्त नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

चित्रायामाह-

त्वाष्टे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः।
गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि।।

अलंकार को जानने वाले, मणि के लक्षण को जानने वाले, रागज्ञ (रंगरेज), लेखक, गान विद्या को जानने वाले, सुगन्धियुत द्रव्य बनाने वाले, गणितज्ञ, जुलाहा, नेत्ररोग चिकित्सक, राजा के उपयोग धान्य-ये सब चित्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

स्वाती-

स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि।
अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च।।

पक्षी, मृग, अश्व, खरीदने-बेचने वाले, धान्य, छोटे जन्तु, तपस्वी, क्रय-विक्रय में कुशल-ये सब स्वाती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

विशाखायामाह-

इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुदाः।
कर्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च।।

रक्त पुष्प, रक्त फल, वृक्ष, तिल, मूंग, कपास (रुई), चना, इन्द्र के भक्त, अग्निभक्त-ये सब विशाखा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

अनुराधा-

मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः।
ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नम्।।

बली, समूहों में प्रधान, साधुओं के भक्त, संघ में बैठने वाले, वाहन से चलने वाले, जनपदों के साधु, शारदीय धान्य आदि-ये सब अनुराधा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

ज्येष्ठा-

पौरेन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः।
विजिगीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः।।

अति शूर, कुलीन, धनी, यशस्वी, दूसरे के धन का अपहरण करने वाले, दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाले राजा, सेनापति-ये सब ज्येष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

मूल -

मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्ताः।
बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमूलैर्ये च वर्तन्ते।।

औषध, वैद्य, समूह में प्रधान, पुष्प, मूल और फल से आजीविका चलाने वाले, नव प्रकार के बीज, अतिधनी, फलाहारी, कन्दाहारी-ये सब मूल नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पूर्वाषाढा-

आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः।
सेतुकरवारिजीवकफलकुसुमान्यम्बुजातानि।।

कोमल हृदय वाले, जल-मार्ग से चलने वाले (धीवर, जल में रहने वाले प्राणी आदि), सत्य भाषण करने वाले, दूसरे के धन आदि को नहीं चाहने वाले, धनी, पुल बनाने वाले, जल से आजीविका चलाने वाले, जल से उत्पन्न फल और पुष्प-ये सब पूर्वाषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

उत्तराषाढा-

विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवतासक्ताः।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्च ये तेजसा युक्ताः।

महामात्र (मुख्य मन्त्री = 'महामात्राः प्रधानानि' इत्यमरः), मल्ल, बाहुयुद्ध में कुशल, हाथी, घोड़ा, देवताओं के भक्त, स्थावर (वृक्ष आदि), युद्ध में कुशल, भोगी, तेजस्वी-ये सब उत्तराषाढा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

श्रवण-

श्रवणे मायापटवो नित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः।
उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च।।

मायापटु (मायावी, प्रपंची), सदा सब कामों को करने में उद्यत, उत्साही, धर्मी, भगवान् के भक्त, सत्य भाषण करने वाले-ये सब श्रवणनक्षत्रगत पदार्थ हैं।

धनिष्ठा-

वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाचलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्याः।
दानाभिरता बहुवित्तसंयुताः शमपराश्च नराः।।

अहंकाररहित, नपुंसक, अस्थिर मित्रता करने वाले, स्त्रीद्वेषी, दानी, बहुत धनी, जितेन्द्रिय-ये सब धनिष्ठा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

शतभिष-

वरुणेशे पाशिंकमत्स्यबन्धजलजानि जलचराजीवाः

सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन्।।

पाशिक (जाल से प्राणियों को मारने वाले), मछली मारने वाले, जल में उत्पन्न होने वालेन सभी द्रव्य, जलचर जन्तुओं से आजीविका चलाने वाले, सूअर को रखने वाले (डोम आदि), धोबी, मद्य बेचने वाले (कलवार आदि), पक्षियों को मारने वाले-ये सब शतभिषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

पूर्वभाद्रपदा-

आजे तस्करपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः।

धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च ये मनुजाः।।

चोर, पशुपालक, क्रूर, कीनाश (क्षुद्र = 'कृतान्ते पंसि कीनाशः क्षुद्रकर्पकयोरि... इत्यमरः), नीच जन, शठ (परोपकार से विमुख), विधर्मी, व्रतों से रहित, बाहु-.... को जानने वाले-ये सब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

उत्तराभाद्रपदा-

आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः।

आश्रमिणः पाखण्ड नरेश्वराः सारधान्यं च।।

ब्राहमण, यज्ञ करने वाले, दानी, तपस्वी, अति धनी, आश्रमी (चतुर्थाश्रम में र... वाले), पाखण्डी (वेदनिन्दक), राजा, उत्तम धान्य-ये सब उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र... पदार्थ हैं।

रेवती नक्षत्र गत पदार्थ -

पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशंखमौक्तिकाब्जानि।

सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च।।

जल से उत्पन्न होने वाले द्रव्य, फल और फूल, नमक, रत्न, शंख, मोती, कमर आदि सुगन्धयुक्त फूल, सुगन्धियुत द्रव्य, खरीदने-बेचने वाले, नावक-ये सभी रेवती नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

अश्विनी-

अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः।

तुरगारोहा वणिजा रूपोपेतास्तुरगरक्षाः।

घोड़े को चुराने वाले, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोड़ा, घोड़े पर चढ़ने वाले, खरीदने-बेचने वाले, सुन्दर, अश्वरक्षक-ये सब अश्विनी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

भरणी नक्षत्र गत पदार्थ -

याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः।

तुषधान्यं नीचकुलोöवा विहीनाश्च सत्त्वेन।।

रक्तमिश्रित मांस खाने वाले, क्रूर, वध, बन्धन और ताडन करने वाले, भूसी वाले धान्य, नीच कुल में उत्पन्न, उदारता आदि गुणों से रहित-ये सब भरणी नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

अधुना जातिनक्षत्राण्याह-

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम्।।
आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति तानि।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः।।
सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि।
सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति।।

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिका ब्राहमणों के; उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्य क्षत्रियों के; रेवती, अनुराधा, मघा और रोहिणी वैश्योंर के; पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् और अश्विनी क्रय-विक्रय करने वालों के; मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा क्रूर मनुष्यों के; मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा सेवकों के तथा आश्लेषा, विशाखा, श्रवणा और भरणी नक्षत्र चाण्डालों के स्वामी होते हैं।

अथ क्रूरग्रहप्रयोजनमाह-

रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम्।
ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुषाकरपीडितं च यत्।।
तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्यययातमेव वा।
निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविपर्ययगं समृद्धये।।

रवि और शनि से मुक्त, मंगल के भेदन या वक्र गमन से दूषित, ग्रहणकालिक, उल्का से हत, चन्द्रकिरण से पीड़ित (चन्द्रमा जिस नक्षत्र की योगतारा को आच्छादित या उसके दक्षिण भाग में होकर गमरा करे) या स्वाभाविक उत्तम गुण से रहित नक्षत्र को मुनि लोग पीड़ित कहते हैं। इस तरह पीड़ित नक्षत्र पूर्वोक्त अपने वर्ग का नाश और उक्त से भिन्न लक्षणयुत हो तो उनकी वृद्धि करता है।

इस प्रकार कृत्तिकादि २८ नक्षत्रों तथा जाति गत पदार्थ विश्लेषण आचार्य वराहमिहिर के द्वारा किया गया है।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में कृत्तिका नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. ज्योतिष ख. राजा ग. योगी घ. गौ
2. मघा नक्षत्र के अन्तर्गत पदार्थ है।
   क. कन्द-मूल ख. धनी ग. कीट घ. सर्प
3. स्वाती नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. नेत्ररोगी चिकित्सक ख. मृग ग. संगीत घ. कन्दमूल
4. आर्द्रा नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. वध करने वाले ख. वनवासी ग. संगीत घ. कन्दमूल
5. उ0षा0 नक्षत्र के पदार्थ है।
   क. हाथी ख. घोड़ा ग. मोती घ. सोना

५.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र जानने वाले, यज्ञशास्त्र को जानने वाले, वैयाकरण, खान, आकरिक, हजाम, ब्राहमण, कुम्भार, पुरोहित, ज्योतिष-ये सब कृत्तिका नक्षत्रगत पदार्थ हैं। सुव्रत, पण्यवृत्ती, राजा, योगी, गाड़ी से आजीविका चलाने वाले, गौ, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत, ऐश्वर्ययुत-ये सब पदार्थ रोहिणी नक्षत्रगत हैं।सुगन्तिधयुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न द्रव्य, पुष्प, फल, रस, वनवासी, पक्षी, मृग, सोमरस का पान करने वाले, विद्या जानने वाले, कामी, पत्रवाहक-ये सब पदार्थ मृगशिर नक्षत्रगत हैं। वध करने वाले, प्राणियों को बाँधने वाले, असत्य भाषण करने वाले, पर-स्त्रीगामी, चोर, शठ (धूर्त), भेद कराने वाले, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्र को जानने वाले अभिचारज्ञ (वशीकरण आदि कर्मों को जानने वाले), वेताल के उत्थापन का कर्म जानने वाले-ये सब आर्द्रा नक्षत्रगत पदार्थ हैं। सत्य भाषण करने वाले, दानी, शौचयुत (शुद्ध), दूसरे के धनादि का लोभ नहीं करने वाले, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम धान्य, वणिक्, सेवक, शिल्पी-ये सब पुनर्वसु नक्षत्रगत पदार्थ हैं। यव, गेहूँ, धान्य, ईख (गन्ना), वन, मन्त्री, राजा, जल से आजीविका चलाने वाले (धीवर आदि), सज्जन, याज्ञिक (पुत्रकाम्य आदि यज्ञ कराने वाले)-ये सब पदार्थ पुष्य नक्षत्रगत हैं। कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीट, सर्प, विष, दूसरे के धन का हरण करने वाले, भूसी वाले धान्य, सभी प्रकार की औषधियों का

प्रयोग करने वाले-ये सब आश्लेषा नक्षत्रगत पदार्थ हैं।

धनी, धान्यागार, पर्वत पर रहने वाले, पिता-माता के सेवक, व्यापारी, शूर, मांसाहारी स्त्रीद्वेषी-ये सब मघा नक्षत्रगत पदार्थ हैं। इसी प्रकार अन्य सभी नक्षत्रों के पदार्थ कहे गये हैं।

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

दिक् – दिशा

सिद्धान्त - सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:।

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्।

शंकु – १२ अंगुलात्मक यन्त्र

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

५.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ख
3. ख
4. क
5. क

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर

2. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. वशिष्ठ संहिता
3. नारद संहिता

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्षफल से क्या तात्पर्य है।
2. वृहत्संहिता के अनुसार अश्विनी से लेकर आर्द्रा पर्यन्त नक्षत्र गत पदार्थों का विश्लेषण कीजिये।
3. कृत्तिकादि २८ नक्षत्रों के पदार्थों का सम्यक् उल्लेख कीजिये।
4. जातिगत पदार्थ क्या है। पदार्थो में विशेष का वर्णन कीजिये।
5. नक्षत्र गत पदार्थो का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

खण्ड - 2

वृष्टि एवं आपदा

इकाई - १ वृष्टि के कारक

इकाई की संरचना

१.१. प्रस्तावना
१.२. उद्देश्य
१.३. वृष्टि कारक - परिचय
१.३.१. कुत्ता, गाय, मधुमक्खी, चींटी के शकुनों पर से सद्यः वृष्टि- विचार
१.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थानुसार शकु से वृष्टि ज्ञान –
१.३.३ पंचताराग्रह योगों से वृष्टि विचार
१.३.४ वर्षा विज्ञान
१.४. वृष्टि के आधार
१.४.१. वृष्टि ज्ञान के शास्त्रीय आधार
१.४.२ प्राचीन भारतीय वृष्टिविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त
१.५. सारांश
१.६. पारिभाषिक शब्दावली
१.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
१.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
१.९. सहायक पाठ्य सामग्री
१.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

१.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – वृष्टि के कारक। इससे पूर्व आप सभी ने ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध से जुड़े अनेक विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी क्रम में वृष्टि के कारक से सम्बन्धित इकाई का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

वृष्टि किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसके कारक कौन-कौन से है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे। आइए वृष्टि विज्ञान से जुड़े विभिन्न विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

१.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वृष्टि किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि वृष्टि का उद्भव कैसे होता है।
- वृष्टि के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- वृष्टि के अनेक भेदों से परिचित हो जायेंगे।
- वृष्टि के विभिन्न पहलुओं से अवगत हो जायेंगे।

१.३. वृष्टि कारक : परिचय

'अन्नं ये प्राणाः' कलियुग में मानव का प्राण अन्न में ही है और अन्न की उत्पत्ति या नाश वृष्टि या वर्षा के अधीन है। वृष्टि सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के लिए उनके जीवन का मूलाधार है। वृष्टि से ही जल की आपूर्ति होती है। और जल का सम्पूर्ण सृष्टि के लिए क्या महत्व है? इससे आप सभी परिचित ही होंगे। अत: वृष्टि-सम्बन्धी योगों एवं कारकों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है। इसके अध्ययन से आपके द्वारा वृष्टि-अनावृष्टि का ज्ञान सरलता एवं सफलतापूर्वक किया जा सकेगा।
वृष्टि विज्ञान से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को क्रमश: आपके ज्ञानार्थ यहाँ लिखा जा रहा है-

1. ग्रहों के उदय, अस्त, राश्यन्तर और क्रान्ति-परिवर्तन, युति तथा अमावस्या, पूर्णिमा को प्रायः वर्षा होती है। ''**ग्रहाणामुदये वाऽस्ते राश्यन्तर मतेऽयने। संयोगे वाऽपि पक्षान्ते प्रायो वृष्टिः प्रजायते।**''

2. मंगल के राशि-चार के समय चन्द्रमा जलचर राशि (कर्क, मकर, मीन) में हो तो वर्षा ऋतु में मेघ पृथ्वी पर बहुत शीघ्र जल देता है।

3. गुरु के राशि-संचार से, बुध के संचार में, शनि के त्रिधा संचार यानी वक्री, मार्गी, राश्यन्तर अथवा उदय, अस्त, राश्यन्तर होने पर; शुक्र के उदय, अस्त होने पर मेघ शीघ्र ही चारों तरफ जल बरसाता है।

मतान्तर- उदयास्तगतः शुक्री बुधश्च वृष्टिकारकः चलत्यंगर के वृष्टिस्त्रिधा वृष्टिः शनेश्चरे।। बुध शुक्र उदित अस्त होते हुए, मंगल राशि-संक्रमण करता हुआ और और शनिश्चर उक्त तीनों से प्रकार से वृष्टिकारक होता है। 'चलत्य..रके वृष्टिरुदये च बृहस्पतौ। शुक्रास्तसमये वृष्टिस्त्रिघावृष्टिः शनेश्चरे।।' मंगल राशि-संक्रमण करने पर, गुरु उदय होने पर, शुक्र अस्त होकर, शनिश्चर उक्त तीनों प्रकार से वर्षा करते हैं।

4. वारिपूर्णा महीं कुत्वा पश्चात्संचरते गुरुः। शुक्ते वाऽस्तमिते मन्दे त्रिविघोऽपि प्रजायते।। गुरु राशि-संचार के बदा तथा शुक्र, शनि अस्त से पूर्व, इस प्रकार तीनों पृथ्वी पर वर्षा करते हैं।

5. शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चोदयमागते। संच-रत्यवनीसूनो वृष्टिमन्दे त्रिधामता।। शुक्र के अस्त में सामान्य वर्षा, गुरु के उदय में मध्यम, मंगल शनि के संचार में उत्तम, ऐसे तीन भांति से वर्षा होवे।

6. प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागम मण्डलसंक्रमे च। पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽके नियमेन चाद्र्राम्।

किसी ग्रह के उदय या अस्त होने, एक मण्डल से दूसरे मण्डल में जाने, दो ग्रहों का समागम (अशात्मक युति) होने, पूर्णिमा एवं अमावस्या को, सूर्य की अयन-संक्रान्ति या विशेष कर आद्र्रा पर जाने के समय प्रायः वर्षा हुआ करती है।

7. कर ग्रह अतिचारी हो तो थोड़ी और शुभग्रह वकी हो तो बहुत वर्षा होवे।

पाठभेदः- उदये च गुरौ वृष्टिरस्ते वृष्टिभूगोः सुत्ते।

8. यदि बुध वक्री होकर शुक्र को छोड़ पीछे (उल्टा) चला जाय तो पांच-सात दिन तक वर्षा हो।

9. अस्त या उदय होते हुए किसी भी ग्रह को बृहस्पति पूर्ण या त्रिपाद (पौन) दृष्टि से देखें तो अवश्य वर्षा हो।

नोट- उदयास्तोन्मुख ग्रह से बृहस्पति 5-7-9वें होने पर पूर्ण दृष्टि तथा 10, 6ठें होने पर त्रिपाद (पौन) दृष्टि से देखेगा।

10. सूर्याग्रे च यदा शुकस्तदा वृष्टिः सुशोभना। अर्थात् सूर्य से आगे शुक्र और पीछे गुरु हो तो पृथ्वी जलमयी हो।

11. बुध शुक्र के उदय और अस्त होने पर, चंद्रमा के जल-राशि में स्थित होने पर एवं पक्षान्त (अमावस्या, पूर्णिमा) और सक्रान्ति-समय में प्रायः वृष्टि हुआ करती है।

12. 'उदयास्तमये मार्गे वक्रयुक्ते च संक्रमे। जलराशि-गताः खेटा महावृष्टिप्रदाः सदा।' ग्रहों के उदय, अस्त मार्गी, वक्री और राशि-संक्रमण, विशेषतः जलराशि में संक्रमण होने पर प्रायः विशेष वर्षा होती है।

नोट-कर्क, मकर और मीन राशियाँ पूर्ण जलप्रद हैं। वृष, धनु और कुम्भ अर्ध जलप्रद हैं। तुला और वृश्चिक सामान्य जलद हैं, शेष राशियाँ जलरहित हैं।

13. शुक्र के नक्षत्र-प्रवेश के समय चंद्रमा उससे 4, 7, 8वीं राशि पर हो अथवा जलराशि का होकर शुक्र से त्रिकोण या सप्तम (5, 7 या 9वें) होन तो अच्छी वर्षा होती है।

14. यदि शनि या मंगल से 5, 7 या 9वें स्थान में चंद्रमा जल-राशि अथवा शुक्रदृष्ट-राशि (यानी शुक्र से 4, 7, 8वीं राशि) पर आये तो अच्छी वर्षा करता है।

15. शनि से त्रिकोण या केन्द्रानुवर्ती (1-4-5-7-9 या 10वें स्थान में) सौम्य ग्रह जल-राशि का अथवा शुक्र दृष्ट हो तो अच्छी वर्षा करता है।

16. सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में आने पर चन्द्रमा, मंगल और गुरु यदि सप्त-नाड़ी-चक्र की एक नाड़ी में पड़ जायें तो पृथ्वी जलप्लावित हो। वर्षा-काल में चंद्र, मंगल और गुरु के एक राशि में होने पर भी मेघ अच्छी वर्षा करते हैं। गुरु मंगल का राशि-नक्षत्र-योग (मतान्तर से प्रतियोग भी) चातुर्मास में वृष्टि को रोकता है; किन्तु वसन्तादि अन्य ऋतुओं में यही योग (प्रति योग) वृष्टि करता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु में बुध, बृहस्हति और शुक्र इन तीनों में-से किन्हीं दो की परस्पर युति हो और तीसरे की उन पर दृष्टि हो तो उत्तम वर्षा; दृष्टि के अभाव में केवल युति से सामान्य वृष्टि हो सकती है। उक्त योग करने वाले ग्रहों की राशि में सूर्य न होना चाहिए। जिस समय सूर्य ग्रहों को लांघकर आगे हो जाय और उसके आगे तीन राशि तक काठ ग्रह नहीं हो अथवा सूर्य को ही ग्रह लाँघकर आगे हो जाय तथा सूर्य से पीछे की तीन राशियों में कोई ग्रह न हो तो इन दोनों स्थितिया में वृष्टि होती है।

वर्षा-काल में आर्द्रा से स्वाती तक सूर्य के रहते, यदि चंद्रमा शुक्र से सप्तम स्थान में, अथवा शनि से 5-7-9वें गृह में हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उस समय अवश्य वर्षा होती है। वर्षा-काल में भी बुध और शुक्र के मध्य में सूर्य का होना, मंगल का सूर्य से आगे होना और चंद्र शुक्र का पापाकान्त होना वृष्टि-अवरोध योग हैं।

१.३.१ कुत्ता, गाय, मधुमक्खी, चींटी के शकुनों पर से सद्यः वृष्टि- विचार -

1 वर्षा-काल में अर्थात् मृगशिरा नक्षत्र से स्वाती नक्षत्र तक के 11 नक्षत्रों में सूर्य रहे, तब यदि कुत्ता घास या भूसा के ढेर पर चढ़कर वहाँ से अथवा देवालय के ऊपर चढ़कर वहाँ से, अथवा मकाल के मुख्य स्थना पर चढ़कर वहाँ से ऊपर मुँह करके रोवे तो जितने जोर से रोवे उतने जोर से वृष्टि होगी। अन्य नक्षत्र स्थित सूर्य में अन्यान्य अशुभ फल, जैसे मृत्यु अधिक होना, आग लगना, रोगों का आक्रमण आदि होता है; किन्तु वर्षा-काल में अशुभ फल न होकर वृष्टि होती है।

2. उपरोक्त वर्षा-काल में ही वर्षा एक बार होकर यदि बन्द हो गयी हो, तब यदि कुत्ते पानी में गोल चक्कर लगावें, पानी को जोर से हिलावें या घूम-घूमकर पानी पीवें तो भी 12 दिन के भीतर वर्षा होती है।

3. चलती हुई गाय को निष्कारण कुत्ता रोक दे, किसी तरह आगे जाने ही न दे तो उसी दिन एक प्रहर के अन्दर भारी वृष्टि हो; इसी प्रकार मधुमक्खियाँ भी झुण्ड मेंर चलती हुई यदि गाय को निष्कारण ही रोकने में सफल हुई तो भी उस दिन तक प्रहर के भीतर, जैसा छोटा बड़ा उनका झुण्ड होगा, वैसी न्यूनाधिक वर्षा होगी।

4. वर्षा-काल में चीटियाँ यदि अण्डा लेकर ऊपर की तरफ जाती हों तो वर्षा होगी; परन्तु नीचे की तरफ या पानी में अण्डा ले जाती हों तो बरसता हुआ पानी रुक जायेगा।

१.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थानुसार शक् से वृष्टि ज्ञान –

त्रिघ्नेशके दन्तयुते विभक्ते वदैश्च शेषे विषमेऽतिवृष्टिः।
स्वल्पा समे संविहिता मुनीन्द्रैर्गर्ग्यादिभिः स्वीयतपोभिरुग्रैः।।

त्रिगुणित शकाब्द में ३२ जोड़कर उसमें ४ का भाग देने पर यदि विषम शेष बचे तो अतिवृष्टि और सम शेष में स्वल्पवृष्टि होती है, ऐसा समझना चाहिए। गर्ग आदि मुनियों ने अपनी तपोबल के आधार पर वृष्टि विचार का प्रतिपादन किया है।

१.३.३ पंचताराग्रह-योगों से वृष्टि-विचार

1. वर्षा-काल में बुध तथा शुक्र 30 अश से कम अन्तर में आयेंगे तो वृष्टि का आरम्भ होगा; लेकिन उन दोनों के बीच में सूर्य आयेगा तो वर्षा बन्द हो जायेगी।

2. शनि से 5-7 या 9वें चन्द्रमा हो, उसको गुरु या शुक्र या दोनों देखें तो जब तक यह योग रहेगा, तब तक बराबर वृष्टि होती रहेगी। भौम, रवि यदि देखोगे तो वर्षा रोक देंगे। एक शुभ और एक पाप मिश्रित दृष्टि का फल बलाबल देखकर जानना चाहिये। शुभग्रह के दृप्टयंश में रहेगा तब तक वर्षा होगी, पापग्रह के दृष्टयंश में रहेगा तब तक खुला रहेगा। भौम-दृष्टि में कड़ी धूप हो जायेगी। बुध

की दृष्टि चन्द्रमा पर होगी तब बादल, धूप, वृष्टि का निणय उसके साथ रहने वाले ग्रहों के आधार पर होगा।

१.३.४ वर्षा-विज्ञान

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की ऋतु-विज्ञान शाखा में भावी वृष्टि, अल्पवृष्टि, अतिवृष्टि, आँधी, तूफान, दुर्दिन आदि के परिज्ञान के लिए अनेकानेक विधियाँ वर्णित हैं। उनमें से कुछ को हमारे पंचाकृकार तथा ज्योतिषीगण बढ़े भरोसे के साथ उपयोग करते आ रहे हैं। उनकी संक्षिप्त प्रारम्भिक जानकारी हम पाठकों को यहाँ कराते हैं

सप्तनाड़ी चक्र - आकाशीय नक्षत्र-मण्डल के 28 नक्षत्र (अभिजित सहित) को प्राचीन आचार्यों ने 7 नाड़ियों में विभाजित किया है उन नाड़ियों के नाम, उनके स्वामी, ग्रह, दिशा, हर नाड़ी के अन्तर्गत नक्षत्रों के नाम आदि का विवरण बगल के चक्र से ज्ञात कीजिए।

दो या अधिक ग्रह जब किसी नाड़ी में एकत्र होते हैं तो उनसे उक्त नाड़ी का वेध होता है। एक नाड़ी के नक्षत्रों में से चाहें जिन पर ग्रह आवें, उनका योग माना जाता है, अस्तु। यदि दो या अधिक पापग्रह अथवा दो या अधिक शुभग्रह चण्डा नाड़ी में आवें तो बहुत वायु (आँधी), वायु-नाड़ी में विशेष वायु-वेग और अग्नि-नाड़ी में महादाह पृथ्वी पर चारों ओर करते हैं। इसके अतिरिक्त नाम के अनुरूप यानी सौम्या में शुभ, नीरा में जल, जला में जल इत्यादि फल ग्रह-योग प्रदान करते हैं। सौम्या नाड़ी में यदि दो आदि ग्रह हों तो मध्यम फल देते हैं। नीरा नाड़ी में हों तो मेघवाहक (मेधाडम्बर करने वाले होते हैं। चन्द्रमा यदि जला नाड़ी में हो तो वृष्टिकारक होता है। चन्द्रमा की नाड़ी (अमृता) में एक भी कोई ग्रह हो तो वर्षा-काल में वृष्टिकारक ही होता है। ग्रह अपनी-अपनी नाड़ी में ओने से अपना-अपना फल देता है, अन्य नाड़ियों में नाड़ी के समान फल देता है, किन्तु मंगल प्रत्येक नाड़ी में उस नाड़ी के समान ही फल देता है।

विशेष यह जानना चाहिए कि कोई भी एक ग्रह सिर्फ अपनी नाड़ी में फलकारक होता है। जब दो से अधिक ग्रह किसी नाड़ी में हों तभी उसका फल देते है; परन्तु मंगल अकेला भी हर-एक नाड़ी में उस नाड़ी के अनुरूप फल देता है।

चन्द्रमा जिस नाड़ी में हो, उसी में यदि और ग्रह मिश्र ग्रहों (शुभ और पापों) से भिन्न (वेधित) हों तो उस दिन उत्तम वृष्टि कहनी चाहिए। एक-एक नाड़ी में चार-चार नक्षत्र होते हैं, इसलिए नाड़ी के किसी एक या अलग-अलग नक्षत्रों में भी ग्रहों के रहने से 'वेध' माना गया है।

किसी नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र पर चन्द्रमा उपस्थित हो तथा उसी नक्षत्र पर क्रूर और सौम्य ग्रह हों तो उसी दिन वर्षा होती है। एक नक्षत्र पर क्रूर और सौम्य ग्रह स्थित हों तो

जितने समय तक उन ग्रहों के साथ चन्द्रमा का अशात्मक योग रहेगा यानी चन्द्रमा तथा ग्रहों के अंश तुल्य रहेंगे, तब तक महावृष्टि होगी। जिस नाड़ी में केवल सौम्य या केवल पाप ग्रह हों, उस नाड़ी में चन्द्रमा के संचार से अत्यल्प वर्षा होती हैं या दुर्दिन होता एवं आकाश बादलों से आच्छादित रहता है। जिस नाड़ी में उसका स्वामी ग्रह स्थित हो, वह नाड़ी अक्षीण चंद्र से युक्त या दृष्ट होने पर वर्षा होती है। यदि अमता नाड़ी में सौम्य और क्रूर ग्रहों के साथ चन्द्रमा का योग हो तो एक, तीन या सात दिन में, दो, चार या पाँच बार जल गिरता है। इसी प्रकार जलानाड़ी में सौम्य और क्रूर ग्रहों के साथ चन्द्रमा हो तो दो प्रहर या एक दिन या पाँच दिन तक वर्षा होती है। नीरा नाड़ी में क्रूर और सौम्य ग्रहों के साथ चन्द्रयोग हो तब एक प्रहर या डेढ़ दिन अथवा तीन दिन तक वर्षा होती है। एक नक्षत्र में चन्द्रमा और ग्रहों का योग होने पर जिस दिन ग्रहों के अंश-तुल्य चन्द्रमा जब तक रहता है, उस दिन तब तक बहुत वर्षा होती है। विशेष--चंद्रमा तथा ग्रहों की अशात्मक युति किसी एक काल में होगी। अतः 'वनमाला' के श्लोक में आये 'तद्भागगः' पद से उस नक्षत्र के चरण (नवांश) में ग्रहों के साथ जब तक चंद्रमा का योग रहे, ऐसा अर्थ ग्रहण करना उपयुक्त है। दो पुरुष-ग्रहों के परस्पर वेध होने से चारों ओर केवल हवा चलती है। स्त्री-ग्रह और पुरुष ग्रह के परस्पर वेध होने से वर्षा होती है। दो नपुसक ग्रहों के वेध में दुर्दिन (आकाश धूलधूसरित अथवा धूम्र सदृश बादलों से आच्छादित) रहता है। नक्षत्रों का स्त्री पुरुष नपुसकत्य आदि विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। स्थानाभाव से सप्तनाड़ी चक्र का विस्तृत फल यहाँ नहीं दे सकते हैं; उसके लिए वनमाला मामक तथा 'वर्षा-विज्ञान' नामक पुस्तकें पाठकों को पढ़नी चाहिए। स्थानीय रूप से निश्चित वर्षा ज्ञान के लिए पण्डितों को कठोर प्रयास करना पड़ता है; क्योंकि वर्षा एक ही समय किसी स्थान में कम, कहीं पर अधिक, कहीं बिल्कुल नहीं होती है। इसलिए ग्रथोक्त व्यापक वर्षा-योगों के स्थान-विशेष में वर्षा का समय बताने में ज्योतिषियों को अपनी बुद्धि और अनुभव से काम लेना होता है। जैसे - शतपद चक्र से इष्ट ग्राम का नक्षत्र जानकर सप्तनाड़ी चक्र में देखें कि वह ग्राह किसी नाड़ी का है; फिर उपर्युक्त प्रकारेण शुभाशुभ ग्रहों से उस नाड़ी-वेध का विचार करें तो अभीष्ट ग्राम के लिए वर्षा का भविष्य अधिक यथार्थ रूप में जान सकते हैं।

१.४ वृष्टि के आधार

वृष्टि का पूर्वानुमान करने की अनेक विधियाँ हैं जिनकों हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं शास्त्रीय एवं आधुनिक। शास्त्रीय अर्थात् हमारे देश में प्राचीन ग्रन्थों, लोकोक्तियों आदि द्वारा वर्षाज्ञान की परम्परागत विधि जिसमें बिना किसी महंगे साजो समान की सहायता के ही पंचांगादिकों के द्वारा वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। यह भारतीय मनीषियों की स्वयं अन्वेषण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की

हुई विद्या है। आधुनिक अर्थात् सम्प्रति वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम उपग्रहादि महंगे उपकरणों की सहायता से वर्षा का पूर्वानुमान करने की विधि का नाम है। जो अत्यन्त व्ययसाध्य होने के कारण बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा ही सम्भव है। यहाँ दोनों विधियों के द्वारा वृष्टिविज्ञान का एक प्रायोगिक परिशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१.४.१ वृष्टिज्ञान के शास्त्रीय आधार

परामपरागत वृष्टिविज्ञान के अनुसार वर्षासम्भव ज्ञान के दो आधार हैं -

1. निमित्त परीक्षण विधि।
2. गणितीय सैद्धान्तिक विधि।

1. निमित्त परीक्षण विधि -

इस विधि से वर्षा ज्ञान के लिए निम्न तथ्यों का समय-समय पर निरीक्षण करते रहने से वृष्टिज्ञान की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है।

वातावरणीय परिवर्तन - तापमान, वायुदाब एवं वायु दिशा, आर्द्रता आदि वातावरणीय परिवर्तन के सामान्य निरीक्षण द्वारा वर्षा का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

जैविक हलचल - वातावरण में कोई भी परिवर्तन होने पर जीवजन्तुओं के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है। पशु पक्षी अपने व्यवहार से मौसम परिवर्तन एवं वर्षा आदि का पूर्वानुमान हमें प्रदान करते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, पेड़ पौधे, मछलियाँ आदि जैविक प्राणियों के व्यवहार से परिवर्तन का निरीक्षण करने पर हमें वर्षा का ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ गर्मियों के मौसम में अधिक आर्द्रता (उमस) होने पर चिड़ियां मिट्टी को खोद कर उसमें लोटने लगती है जो घटना शीघ्र ही वर्षा होने सूचना प्रदान करती हैं।

रासायनिक परिवर्तन- वातावरण में अनुभव होने वाले रासायनिक परिवर्तन भी वर्षा होने की सूचना हमें देते हैं। कुछ जैविक और अकार्बनिक रासायन यौगिक मिलकर वातावरण में फैल जाते हैं जिनसे हमें वर्षा का ज्ञान हो सकता है। उदाहरणर्थ जब चारों दिशाओं में धुन्ध से भरा हुआ वातावरण हो तो शीघ्र ही वर्षा होने की सम्भावना बनती है।

भौतिक परिवर्तन- सूर्य, चन्द्र आदि के चारों ओर दिखाई देने वाला भौतिक परिवर्तन वस्तुतः वातावरण के कारण होता है। उदाहरणार्थ- जब हमें चन्द्रमा के चारों ओर मुर्गे की आंख के रंग की भाँति हल्का पीला प्रभामण्डल (परिवेश) दिखाई देता है, तो यह शीघ्र वर्षा होने का सूचक है।

आकाशीय परिवर्तन- मेघों की आकृति, बिजली चमकना, आंधी-तूफान, कुहरा-धुन्ध, बादलों की गड़गड़ाहट, इन्द्रधनुष आदि भी शीघ्र वर्षा होने की सूचना देते हैं।

2. गणितीय सैद्धान्तिक विधि

भारतीय परम्परा में वर्षा ज्ञान की कई सैन्द्धान्तिक पद्धतियां हैं जो सामान्य गणितीय प्रक्रिया या पंचांग के द्वारा आसानी से वर्षा सम्भव ज्ञान करा देती हैं।

ग्रह नक्षत्र से वृष्टि ज्ञान- ग्रहों की आकाशीय स्थिति एवं ग्रह-नक्षत्रों के परस्पर संयुति से भी वर्षा के योग एवं आधार बनते हैं। जैसे- बुध या शुक्र वक्रगामी होते हैं तो वर्षा की कम सम्भावना बनती है और जब शनि एवं मंगल, धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो कोई सम्भावना नहीं बनती है।

सूर्य संक्रमण से वृष्टिज्ञान- सौर संक्रान्ति एवं सौरमास के कुछ विशिष्ट दिवसों के अध्ययन से दीर्घकालिन या तात्कालिन वर्षा की भविष्यवाणी की जा सकती है।

चन्द्र नक्षत्र से वृष्टिज्ञान- रोहिणी निवास सिद्धान्त के अनुसार जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है उस समय चन्द्र अधिष्ठित नक्षत्र से, नक्षत्रों की गणना रोहिणी तक करनी चाहिए। यदि संख्या 1, 2, 8, 9, 15, 16, 22 या 23 हो तो रोहिणी का वास समुद्र में माना जाता है जो वर्षा की अधिकता की संसूचक है।

नाड़ीचक्रों से वृष्टिज्ञान- कुछ सिद्धान्तों के अनुसार 28 नक्षत्रों को 2 नाड़ी चक्रों में विभक्त किया जा सकता है इसे 'द्वानाड़ी चक्र' कहते हैं। तीन नाड़ी चक्र में विभक्त होने पर 'त्रिनाड़ी चक्र' , सात भागों में विभक्त होने पर सप्तनाड़ी चक्र कहा जाता है। तब नक्षत्रों के सापेक्ष सूर्य व चन्द्र की स्थितियों का निराक्षण करके वर्षा का पूर्वानूमान किया जाता है।

दशतपा से वृष्टिज्ञान- दशातपा सिद्धान्त के अनुसार ज्येष्ठ अमावस्या से आषाढ शुक्ल दशमी तक के 10 चान्द्रदिवसों के आधार पर ही आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद एवं आश्विन इन चार वर्षाकाल के मासों में वर्षायोग का ज्ञान होता है।

निमित्त परीक्षण द्वारा वृष्ट्यावधि-

निमित्त परीक्षण सिद्धान्त के अनुसार दीर्घावधि, मध्यमावधि एवं अल्पावधि वृष्टिज्ञान के निम्न आधार है-

1. वार्षिक वृष्टि के हेतु

- आषाढ़ी योग
- फाल्गुनी योग
- स्वाती योग

2. मासिक एवं पाक्षिक वृष्टि के हेतु

- मेद्य गर्भधारण सिद्धान्त
- वायुगर्भधारण सिद्धान्त
- प्रवर्षण सिद्धान्त
- रोहिणी योग
- स्वातीयोग
- आषाढ़ी योग
- दशातपा सिद्धान्त
- मासिक ऋतु परीक्षण सिद्धान्त

3. **दैनिकवृष्टि के हेतु**

- मेद्य गर्भधारण सिद्धान्त
- वायुगर्भधारण सिद्धान्त
- प्रवर्षण सिद्धान्त
- रोहिणी योग
- स्वातीयोग
- आषाढ़ी योग
- दशातपा सिद्धान्त
- सद्योवृष्टि सिद्धान्त
- आनावृष्टिलक्षण सिद्धान्त

गणितीय सिद्धान्त द्वारा वृष्ट्यावधि-

इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण वर्ष की गणना के पश्चात् वृष्टिज्ञान में निम्नलिखित तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस आधार पर किसी भी वर्ष की सम्पूर्ण गणितीय प्रक्रिया पूर्ण कर वृष्टि का पूर्वानुमान कभी किया जा सकता है। दीर्घावधि पूर्वानुमान के लिए यह विधि सर्वाधिक सहायक है।

1. वार्षिक वृष्टि के हेतु

- संवत्सर
- संवत्सर अधिकारी
- गुरूवर्ष
- विंशोपक
- शकाब्दसंख्या
- आर्द्राप्रवेश
- मेघनाम
- नागनाम
- रोहिणीवास
- जलाढ़क

2. मासिक वृष्टि के हेतु

- द्विनाडी
- त्रिनाडी
- सप्तनाडी
- वृष्टि सम्बन्धि विविध योग

3. दैनिक वृष्टि के हेतु

- द्विनाडी
- त्रिनाडी
- सप्तनाडी

१.४.२ प्राचीन भारतीय वृष्टिविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त -

1. मेद्यों के वायु के आश्रित होने के कारण वायुगति के आधार पर भावी वृष्टि का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

2. पृथ्वी के वायुमण्डल में वायुगति का क्रम सुनिश्चित पूर्वापरक्रम के आधार पर होता है। अतः काल विशेष में देखी गई वायुगति का भावी गतिक्रम के सूचित करती है। यह वायुचक्र पौष से आरम्भ कर वर्ष में पूरा होता है।

3. खमण्डल में विद्यमान ग्रह एक दूसरे को अपनी गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण प्रभावित करते हैं। इन सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव न केवल भूमण्डलीय तत्वों पर पड़ता है अपितु वायुमण्डल की गति एवं मेद्य व वायु में गतिक्रम पर भर पड़ता है। अतः एवं सौरमण्डलीय ग्रहों की स्थिति विशेष अर्थात् ग्रहों के उदयास्त गति-संक्रमण-योगादि के आधार पर भी पृथ्वी के वायुमण्डल में मेद्य व वायु की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर वर्षा का ज्ञान किया जा सकता हैं।

4. पृथ्वी के वायुमण्डल में मेद्य व वायु के संचारणादि के कारण सूर्य-चन्द्र के प्रकाशकिरणों का मार्ग भी प्रभावित होता हैं। अतः सूर्य-चन्द्र मण्डलों के चारों ओर दिखाई देने वाली प्रकृति - विकृति से मेद्य - वायु की स्थिति जानकर वर्षाज्ञान सम्भव हैं।

5. मेद्य व वायु के विकृत्ययदि कारणों से भूमण्डलगत रायासनिक पदार्थ प्राणी व वनस्पतियाँ भी प्रभावित होती हैं। अतः रासायनिक पदार्थों, प्राणियों व वनस्पतियों के परिवर्तनादि चेष्टाएँ देखकर वायुमण्डलगत पूर्वानुमान सम्भव हैं।

6. पृथ्वी के वायुमण्डल में तापक्रम, वायु की आर्द्रता एवं मात्रा से वृष्टि सम्भव ज्ञान होता हैं। यही सिद्धान्त पाश्चात्य मौसमविज्ञान का भी आधार हैं।

7. मेद्यों का गर्भकाल से लेकर वर्षाकान तक एक सुनिश्चित विकासक्रम है। यह चक्र या क्रम सामान्यतया 6 मास का होता हैं। इस क्रम में थोड़ा सा भी व्यतिवम हो जाने पर वृष्टि अवरूद्ध हो जाती हैं। तब विकृत मेद्यगर्भ पुनः अपने आधानकाल के मास को प्राप्त कर करकरूप (ओले) में बदल जाता हैं।

8. प्रतिसूर्य, परिवेष, इन्द्रधनुष, बिजली, उल्का, बज्र, निर्घात तारादि मेद्य व वायु की मूल विकृतियों का प्रभावक्षेत्र एवं प्रभाव अवधि सुनिश्चित होती हैं।

9. जिस प्रकार भारतीय पद्धति में संवत्सर 'मास' पक्ष एवं तिथियों का ग्रहगतिमूलक क्रम प्रत्येक कल्प एवं युग में पुनरावर्तित होता हैं उसी प्रकार मेद्य व वायु आदि का भी गतिचक्र व क्रम प्रत्येक कल्प एवं युग में पुनरावर्तित होता हैं। अतः भारतीय के आधार पर मेद्य व वायु का गतिक्रत उनकी विकृति आदि को जानकर वर्षा सम्भव ज्ञान का पूर्वानुमान होता हैं।

10. प्राचीन भारतीय पद्धति में वर्णित विभिन्न योगादिकों के द्वारा सम्पूर्ण वर्ष में वृष्टिगर्भ स्थिति सूचक आकाशादि के लक्षणों के पर्यवेक्षण से भावी वृष्टि का प्रमाणिक ज्ञान कर सकते हैं।

बोध प्रश्न -

1. वृष्टि का शाब्दिक अर्थ होता है।

   क. वर्षा   ख. बादल   ग. आकाश   घ. वायु

2. निम्न में अन्न किसका पोषक है।

   क. प्राण   ख. पैर   ग. हाथ   घ. कोई नहीं

3. वृष्टिज्ञान के शास्त्रीय आधार कितने है।

   क. २   ख. ३   ग. ४   घ. ५

4. निम्न में प्राय: बारिश कब होती है।

   क. पूर्णिमा   ख. ग्रहोदयास्त में   ग. युति तथा अमावस्या में   घ. सभी

5. निम्न में वर्षा का नक्षत्र है।

   क. आर्द्रा   ख. भरणी   ग. रेवती   घ. अश्विनी

6. निम्न में जलचर राशियाँ कौन है।

   क. १,४,८   ख.४,१०,१२   ग. ३,६,९   घ.५,७,१२

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वृष्टि का पूर्वानुमान करने की अनेक विधियाँ हैं जिनकों हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं शास्त्रीय एवं आधुनिक। शास्त्रीय अर्थात् हमारे देश में प्राचीन ग्रन्थों, लोकोक्तियों आदि द्वारा वर्षाज्ञान की परम्परागत विधि जिसमें बिना किसी महंगे साजो समान की सहायता के ही पंचांगादिकों के द्वारा वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। यह भारतीय मनीषियों की स्वयं अन्वेषण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की हुई विद्या है। आधुनिक अर्थात् सम्प्रति वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम उपग्रहादि महंगे उपकरणों की सहायता से वर्षा का पूर्वानुमान करने की विधि का नाम है। जो अत्यन्त व्ययसाध्य होने के कारण बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा ही सम्भव है।

'अन्नं ये प्राणाः' कलियुग में मानव का प्राण अन्न में ही है और अन्न की उत्पत्ति या नाश वृष्टि या वर्षा के अधीन है। वृष्टि सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के लिए उनके जीवन का मूलाधार है। वृष्टि से ही जल की आपूर्ति होती है। ग्रहों के उदय, अस्त, राश्यन्तर और क्रान्ति-परिवर्तन, युति तथा अमावस्या, पूर्णिमा को प्रायः वर्षा होती है। ''**ग्रहाणामुदये वाऽस्ते राश्यन्तर मतेऽयने। संयोगे वाऽपि पक्षान्ते प्रायो वृष्टिः प्रजायते।**'' मंगल के राशि-चार के समय चन्द्रमा जलचर राशि (कर्क,

मकर, मीन) में हो तो वर्षा ऋतु में मेघ पृथ्वी पर बहुत शीघ्र जल देता है। गुरु के राशि-संचार से, बुध के संचार में, शनि के त्रिधा संचार यानी वक्री, मार्गी, राश्यन्तर अथवा उदय, अस्त, राश्यन्तर होने पर; शुक्र के उदय, अस्त होने पर मेघ शीघ्र ही चारों तरफ जल बरसाता है। वृष्टिविज्ञान के शास्त्रीय आधार दो है और वृष्टिज्ञान के लिए विविध पक्ष हैं।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

वृष्टि – वर्षा या बारिश

शास्त्रीय - शास्त्र में लिखित

उदयास्त – उदय और अस्त

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि

दर्श – अमावस्या

अमान्त – अमावस्या के अन्त काल

शुक्रोदय – शुक्र का उदय

१.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. क
3. क
4. घ
5. क
6. ख

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष रहस्य – जगजीवन दास गुप्ता

2. वृष्टिविज्ञान परिशीलन – प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी

3. वृहत्संहिता – वराहमिहिर

4. मकरन्दप्रकाश – आचार्य नारायण दैवज्ञ

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. नारद संहिता
3. वृहत्संहिता
4. वृष्टि विज्ञान

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृष्टि से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. वृष्टि के कारक का प्रतिपादन कीजिये।
3. वृष्टि ज्ञान के शास्त्रीय आधार का उल्लेख कीजिये।
4. पशुओं के शकुन आधार पर वृष्टि ज्ञान का वर्णन कीजिये।

इकाई – २ मेघ गर्भ लक्षण

इकाई की संरचना

२.१. प्रस्तावना
२.२. उद्देश्य
२.३. प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार मेघ का आधार
    २.३.१. मेघ के भेद, लक्षण एवं गुण
    २.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के अनुसार मेघ का गणितीय पक्ष
२.४. मेघ गर्भ लक्षण
    २.४.१. मेघ गर्भ काल
    २.४.२ वृहत्संहिता के अनुसार मेघ गर्भ के अन्य लक्षण
    २.४.३ मेघ गर्भ सम्भव लक्षण
    २.४.४ मेघ गर्भ नाश लक्षण
२.५. सारांश
२.६. पारिभाषिक शब्दावली
२.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
२.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
२.९. सहायक पाठ्य सामग्री
२.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

२.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – मेघ गर्भ लक्षण। इससे पूर्व आप सभी ने वृष्टि का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में मेघ गर्भ लक्षण का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

मेघ को सामान्य भाषा में हमलोग बादल के नाम से भी जानते है। शास्त्रीय रीति के अनुसार धूम्र, ज्योति, सलिल और मरूत से मिलकर मेघ का निर्माण होता है। शास्त्रों में ४ प्रकार के प्रमुख मेघ का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। मेघ गर्भ लक्षणों से जुड़े विषयों का हम इस इकाई में अध्ययन करने जा रहे हैं।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से ही जुड़े एक महत्वपूर्ण विषय मेघ गर्भ लक्षण की चर्चा हम इस इकाई में करते है।

२.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि मेघ किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि मेघ का स्वरूप क्या है।
- मेघ के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- मेघ गर्भ लक्षण को जान लेंगे।
- मेघ की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

२.३. मेघ परिचय

संस्कृत वाङ्मय के सुप्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने स्वरचित 'मेघदूतम्' नामक काव्य में मेघ का वर्णन करते हुए कहा है कि –

'धूम्र: ज्योति: सलिल मरूतां सन्निपात: क्वमेघ:।' अर्थात् मेघों की उत्पत्ति धूम, ज्योति, सलिल एवं मरूत के संयोग से होती है। सूर्य की किरणों से तप्त समूद्र, नदी आदि का जल धूम वाष्प रूप में परिणत होकर मेघों की उत्पत्ति करता हैं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसा भी कहा गया है।

मेघ सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं- अभ्र, और मेघ। जिन बादलों से तुरन्त जल नहीं बरसता है अपितु कुछ काल तक उनमें ही स्थित रहता हैं वे अभ्र कहे जाते हैं। यथा- **अग्ने वै धूमो**

जायते धूमादभ्रमभाट् वृष्टिः। यह धूम से बने बादल हितकारी, दावाग्नि धूम से निष्पन्न बादल वनों के लिए लाभदायी है, मृतकधूम से बने बादल अशुभ और अभिचारान्ति के धूम से बने बादल प्राणियों के नाशक कहे गये हैं। मेघ शब्द मेहन करने के कारण कहे जाते हैं जो सद्य वर्षा करते हैं। इस प्रकार वृष्टि कारक मेघों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता हैं।

वस्तुतः सूर्य की किरणों से तप्तजल जलवाष्प वायु के द्वारा आकाश में पहुँचाता हैं। जहाँ वह शीतल होकर पुनः जलकणों में बदल जाता हैं। जब शीतलता के कारण वायु संकुचित होती हैं तब जलकण परस्पर निकट आकर एकत्रित होकर भारी हो जाता हैं। जिन्हें वायु ढोने में सक्षम नहीं रह पाती अतः वे ही जलकण वर्षारूप में भूमि पर गिरते हैं। जल के वाष्प रूप में परिणत होने के काल से वर्षण तक के समय को ही वृष्टिगर्भकाल कहते हैं। यह वृष्टि चक्र ईश्वर की प्रेरणा से चलता हैं, ऐसा प्राच्यों का मत हैं। ब्रहावैवर्त्त पुराण में वृष्टि पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा गया हैं कि - सूर्य द्वारा ग्रहण किया हुआ जल ही समयानुसार बरसात है। सूर्य, मेघ आदि सबको विधाता ने ही निर्मित किया हैं। सूर्य इच्छानुसार समुद्र से जल लेकर बादलों के लिए देते हैं और वे बादल वायु द्वारा संप्रेरित होकर ही पृथ्वी के पृथक्-पृथक् स्थान में समय-समय यथोचित जल देते हैं। यह सब ईश्वर की इच्छा से ही आविभूर्त होता हैं। यहाँ सूर्यकिरणों से जल लेने की पद्धति को ही सूर्य के जल लेने के रूपक में वर्णित किया गया हैं। यहाँ भौतिक एवं पौराणिक पक्षों के समन्वय का अच्छा प्रयास दिखाई देता हैं।

१.३.१ मेघ के भेद, लक्षण एवं गुण-

1. मेघ के स्थिति-

मेघ की चार प्रकार की स्थितियाँ होती हैं- अभ्र, बादल, धन और घटा। इनमें आकाश के अन्दर फैलने वाला अभ्र कहलाता हैं। मेघ के टुकड़ों को बादल कहते हैं, फैल हुए खण्ड धन होतें हैं, और खण्ड-खण्ड न होकर एक ही रूप में फैले हुए हो तो उसे घटा कहते हैं।

2. मेघ के प्रकार-

मेघ चार तरह के होते हैं - नाग, पर्वत, वृषभ एवं अर्बुद। इन चार का कारण जल ही हैं अर्थात् ये वर्षाकारक होते हैं। मेघों की योनि अर्थात् उत्पत्ति के कारण तीन हैं अग्नि, ब्रहा और पक्ष। इनकी वृद्धि का साधारण हेतु धूम हैं।

अग्निज मेघ-

स्विन्न (गीले पदार्थ) और गर्भ से उत्पन्न मेघों का धुम से प्रवर्तित होना अग्निज का सामान्य लक्षण हैं। इन मेघों में श्रेष्ठ मेघ दुर्दिन (बादलयुक्त दिवस) की हवा से उत्पन्न हुए होते हैं। हाथी, भैंस और सूअर के आकार एवं रंग की तरह दिखाई देने वाले ये मेघ, वन, पर्वत एवं शिखरों पर वर्षा करते

हैं। थोड़ी वर्षा करने वाले बड़े शरीर वाले, पृथ्वी के समीप आये हुए मेघ एक या आधे कोस में ही बरसते हैं।

ब्रहाज मेघ-

आकाश में नक्षत्र और ग्रहों के योग से जिनकी उत्पत्ति होती है वे मेघ ब्रहाज कहलाते हैं, अग्नि से पैदा होने के कारण ये मेघ आकाश में गए हुए होते हैं। ब्रहाज मेघों के प्रसंग से अग्नि से उत्पन्न हुए मेघ भी बरस जाया करते हैं।

पक्षज मेघ-

पर्वतों के पक्ष कटने से जो मेघ बनते हैं, वे पक्षज कहलाते हैं। वे मेघ अनेक प्रकार के आकृतिवाले और घोर आवाज करने वाले होते हैं। युगान्त में पृथ्वी को जल से पूरित करने वाले और कल्पना वृष्टि पैदा करने वाले ये मेघ संवर्ताग्नि से बने होते हैं।

3. मेघों की जातियाँ-

कादम्बिनि में वर्णित है की शीतकाल में दिग्गज जाति के मेघों से हिम की वर्षा होती हैं। परन्तु सामान्यतया मेघों की निम्न चार जातियाँ मानी जाती हैं- आवर्त, संवर्त, पुष्कर और द्रोण। इनमें पुष्कर जाति का मेघ दुःख से जल देने वाला , आवर्त्त जाति का मेघ निर्जल, संवर्त जाति का मेघ अधिक जल वाला और द्रोण जाती का मेघ घान्य के योग्य बरसने वाला होता हैं। कृषि पाराशर के अनुसार इनके नामानुसार वर्ष में वृष्टिफल विचारना चाहिए। एतदर्थ शकाब्द में 3 जोड़कर 4 का भाग देने पर शेष को मेघ नाम से जानना चाहिए। यथा शकाब्द्- शेष अर्थात् आवर्त मेघ इन मेघों का फल कृषि पाराशर में निम्न प्रकार से कहा गया हैं-

मेघनाम फल

1. आवर्त
2. संवर्त
3. पुष्कर
4. द्रोण

एकादेश में वर्षा

सर्वदेशीय वर्षा

दुष्कर वर्षा

अधिक वर्षा

अन्य कुछ विद्वानों के अनुसार वृष्टिसूचक 9 मेघ होते हैं। इनका फल निम्नवत् हैं-

मेघ नाम	फल
1. आवर्त	अल्पवर्षा
2 . संवर्त	वायुपीड़ा
3. पुष्कर	मन्दवर्षा
4. द्रोण	अच्छी वर्षा
5. कालक	अल्पवर्षा
6 . नील	शीघ्रवर्षा
7 . वरुण	अर्णवाकारवर्षा (अधिक वर्षा
8. वायु	वर्षा का आभाव
9. तम	वर्षा का आभाव

4 . मेघों के लक्षण-

अधिक पवन चलना या सर्वथा पवन का बन्द होना अधिक गरमी पड़ना या अधिक ठण्ड का ही होना, अधिक बादलों का होना अथवा सर्वथा ही बादलों का न होना ये 6 चिन्ह मेघ के होते हैं। अर्थात् अच्छे मेघ के आने के ये लक्षण हुआ करते हैं।

5. मेघों के विशिष्ट गुण-

आठ दिशाओं में से सूर्य द्वारा त्यक्त, सूर्यद्वारा आक्रमित एवं आक्रमणीय दिशा, ये तीन दिशायें सूर्य से प्रकाशित या दीप्तदिक् कहलाती हैं। अन्य पाँच दिशाएं शान्त कहलाती हैं। शान्त दिशा में श्याम, रक्त अथवा पीले रंग का स्निग्ध और मन्दगतिक मेघ का दर्शन हो तो जलागमन जानना चाहिए। इसके विपरीत शान्त दिशा में जो मेघ शुक्लवर्ण का दिखाई दे तो स्निग्ध एवं मन्दगति होने पर भी मेघ को रिक्त ही समझना चाहिए।

सुन्दर रंग एवं आवाज वाले मन्दगति और शुभ मुहूर्त्त में उठे हुए मेघ सदा सर्वत्र जल बरसाने वाले होते हैं। अच्छी बिजली, गन्ध, स्वर, वर्षा, वायु एवं बूंदों वाले मेघ सुभिक्षकारक होते हैं। इसके विपरीत रूखे मेघ वायु पैदा करते हैं, खराब गन्ध वाले व्याधि एवं खराब रंग व आवाज वाले मेघ नहीं बरसते हैं। केसर के जल सदृष तथा नीले व काले रंग के मेघ दक्षिण से अग्निकोण को जाते हुए वहीं बरस जाते हैं। लाल, पीले अथवा नीले रंग के मेघ उत्पत्ति को जाते हुए शीघ्र ही चतुर्दिक हवा करते हुए बरस जाते हैं। दक्षिण से उत्पत्ति को जाये और उत्पत्ति से दक्षिण को आये तो वह मेघ बरसता नहीं अगर बरसे तो कई दिन तक बरसते हैं। पश्चिम से जब मेघ वायव्य, नैर्ऋत्य आदि कोणों की तरफ जाते हैं तब वे अल्पजल वाले हो जाते हैं, उनमें वृष्टि नहीं होती हैं। पश्चिम से जब मेघ

आकुल होते हुए आते हैं तब वे वायु पैदा करते हैं और फिर वृष्टि करते हैं। पश्चिम से पूर्व और से पश्चिम को जब मेघ जाते हैं तब वे आपस भिड़ते हुए दस दिन तक वर्षा करते हैं। प्रशान्त मौसमी वायु की दिशा से सफेद बादलों के पर्वत सदृश प्रखण्य मौसमी वायु वाली दिशा में धीरे से चले जाते हैं। इसी प्रकार प्रचण्ड मौसमी वायु वाली दिशा में रूई के ढेर के सदृश जो श्वेत बादल होते हैं वे चले जाते हैं। रूई के ढेर के समान सफेद बादल वायव्य या उत्तर से वेग से आते हो तो वे आठों प्रहर अवश्य वर्षा करेगें। यदि रूई के ढेर के समान श्वेत बादल नैर्ऋत्य या दक्षिण से आते हो तो वे शीतकाल में वर्षा के अन्दर ओले गिरते हैं। तमाम, और नीलकमल की सी प्रभा वाले, मोती और चाँदी की सी आभा वाले और गर्भ में जलचरों की आकृति वाले मेघ अधिक जल बरसाने वाले होते हैं।

२.३.२ मकरन्दप्रकाश ग्रन्थ के अनुसार मेघ का गणितीय पक्ष –

शकाब्दो रामसंयुक्तस्तथा वेदैर्विभाजित:।
शेषं मेघं विजानीयात् आवर्तादि क्रमेण च।।
आद्य आवर्तक: प्रोक्तो मेघ: संवर्त्तको पर:।
तृतीय: पुष्करो ज्ञेयश्चतुर्थो द्रोणसंज्ञक:।।

इष्टशकाब्द में ३ जोडकर ४ से भाग देरने पर शेष के अनुसार आवर्त्तक आदि मेघ होते है। १ शेष में आवर्त्तक, २ शेष में संवर्त्तक, ३ में पुष्कर और ४ शेष में द्रोण नाम का मेघ जानना चाहिए।

उदाहरणम् –

$$\frac{१९४२ + ३}{४} = \frac{१९४५}{४} = ४८६ \text{ भागफल, शेष -१}$$

यहाँ शेष १ होने के कारण आवर्त्तक नामक मेघ हुआ। इसी प्रकार मेघ का आनयन करना चाहिए।

२.४ मेघ गर्भ लक्षण

भद्रबाहुसंहिता में मेघों के लक्षण एवं फलों का प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार का अभिमत है कि यदि अंजन के समान गहरे काले मेघ पश्चिम दिशा में दिखाई पडे और ये चिकने तथा मन्दगति वाले हो तो भारी जल वृष्टि होती हैं। पीले पुष्प के समान स्निग्ध मेघ पश्चिम दिशा में स्थित हो तो जल की वृष्टि तत्काल करते हैं। लाल वर्ण के तथा की स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में

दिखलाई दे तो अच्छी जल वृष्टि होती हैं। श्वेतवर्ण के स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में दिखलाई दें तो जितना जल उनमें रहता हैं। उतनी वर्षा करके वे निवृत्त हो जाते हैं। यदि स्निग्ध, सौम्य, मृदुल, आवाज वाले, मन्दगतिक मेघ उत्तम मुहूर्त में दिखलाई पड़े तो सर्वत्र वर्षा होती हैं। सुगन्ध (केशर और कस्तुरी के समान गन्ध वाले) मनोहर गर्जन करने वाले, स्वाटु रस वाले, मीठे जल वाले मेघ समुचित जल की वर्षा करते हैं।

चिकने बादल अवश्य बरसते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उत्तर दिशा के आश्रित बादल प्रायः काल के अनुसार नियमतः वर्षा करते हैं। उत्तर और पूर्व के बादल सदा उत्तम वर्षा करते हैं और दक्षिण व पश्चिम के बादल थोडी़ थोड़ी वर्षा करते हैं। यदि बादल काले, पीछे, ताँबे और सफेद वर्ण के हों तो वे उत्तम वर्षा की सूचना देते हैं। यदि बादल देवागनाओं और प्राणियों के सदृश विचरण करें और स्निग्ध हों तो वे शुभ होते हैं। और उनसे उत्तम वर्षा होती हैं। बादल शुक्ल वर्ण के हों, स्निग्ध हों विद्युत युक्त एवं विचित्र रंग के बादल हो तो तत्काल वर्षा होती हैं। शुभ शकुन और शुभ चिन्हों सहित बादल हो तो वृष्टि होती हैं।

मेघ गर्भप्रसवसंज्ञक नक्षत्र -

गर्भप्रसव सहिस दिग्मितचन्द्रभेषु
दृश्यो यदा जलधरः खलु यत्र तत्र।
आर्द्रादितो रवियुता दशतारकाः स्यु
गर्भान्विता जलकरा नहि गर्भहीना।।

श्लोक का अर्थ है कि पौष मास में मूल से दस नक्षत्रों में यदि बादल हों, तो मेघ गर्भधारण होता है। यदि वृष्टि हो तो गर्भपात समझना चाहिए। इनके प्रसवकाल आर्द्रा से १० नक्षत्र पर्यन्त सूर्य नक्षत्र में होते हैं। अर्थात् मूल में गर्भधारण हो, तब आर्द्रा में वृष्टि होती है। इसी तरह प्रत्येक नक्षत्र का विचार होता है।

२.४.१ मेघ गर्भकाल-

शीतकाल को मेघ गर्भ धारण का, उष्णकाल को दोहद (गर्भपोषण) एवं वर्षाकाल को प्रसव (वृष्टि) का समय माना जाता हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मार्गशीष से फाल्गुन तक शीतकाल, चैत्र से आषाढ़ तक उष्णकाल एवं श्रावण से कार्तिक तक वर्षाकाल और आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता हैं। शीतकाल में गर्भधारण होता हैं, इसके पश्चात् उष्णकाल में उसका परिपाक एवं वर्षाकाल में वह प्रसूत हो जाता है अर्थात् बरसात हैं। किसी का अभिमत है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के आस

पास जब अमावस्या होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठा नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा होवे तब प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए। प्रायः मार्गशीर्ष की अमावस्या को एवं ज्येष्ठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठा नक्षत्र आया करता हैं। कई विद्वान मानते हैं कि मूल नक्षत्र के उत्तरार्द्ध में सूर्य के आने से गर्भकाल और आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से प्रसवकाल होता हैं। अर्थात् मूल नक्षत्र पर जब सूर्य आये तब से 6 दिन बाद से 4 मास तक गर्भकाल और आद्र्रा पर तब सूर्य आये तब से 4 मास तक प्रसवकाल माना जाता हैं। मूल पर सूर्य पौष के महीने में और आद्र्रा पर आषाढ़ में प्रायः आया करता है और 13 दिन तक रहता हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि जिस पात से सूर्य दक्षिणायन हो वह गर्भकाल का प्रारम्भ और जिस पात से सूर्य उत्तरायण हो वह प्रसवकाल माना जाता हैं। गर्भकाल के प्रारम्भ का दिन मानने के विषय में किसी का अभिमत हैं कि स्वाति पर सूर्य के आने से, या स्वाति के सूर्य में स्चाति नक्षत्र पर चन्द्रमा के होने से अथवा स्वाति के सूर्य पर अश्विनी के चन्द्रमा होने से अथवा अनुराधा के सूर्य में अनुराधा नक्षत्रगत चन्द्रमा के आने से या मूल पर सूर्य के आने से गर्भकाल का प्रारम्भ होता हैं। इन पाँचों में मूलार्क से उत्तर के दृढ़फल वाले एवं पहिले के मन्द फलवाले हैं। आचार्य सिद्धसेन का अभिमत हैं कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते हैं। जबकि गर्गादि महर्षियों के मतानुसार वराहमिहिर का अभिभत हैं कि मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती हैं, उससे 195 वें दिन में प्रसव होता हैं। अर्थात् चान्द्रमान से 195 वें दिन में वर्षा होती हैं। समाससंहिता में भी इसी प्रकार गर्भविपाकावधि कही गयी हैं।

२.४.२ मेघ गर्भ के अन्य लक्षण-

वराहमिहिर का कथन है कि गर्भ स्थिति काल में सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध और श्वेत परिवेश से व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृव और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुर्याकार लाहित वर्ण, काक के अण्डे के समान, मयूरकण्ठ के समान हो, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनुष, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रतिसूर्य से युक्त पूर्वापरा संध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्वदिशा में स्थिम पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग से होकर निर्मल उत्पात् रहित ग्रहों का गमन, बाधा रहित वृक्षों का अंकुरण, मनुष्य और पशु हर्षित, इन सब गुणों से युक्त गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट करनी चाहिए।

मोती या चाँदी के समान श्वेत् अथवा तमाल वृक्ष, नीलकमल या के समान अतिकृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले मेघ हों तो बहुत वृष्टि करने वाले होते हैं। अति भयंकर सूर्य किरण से तापित, अल्पवायु से युक्त गर्भकालिन मेघ 195 वें दिन (प्रसवकाल) में धाराप्रवाह

अतिवृष्टि करते हैं। गर्भपुष्टि लक्षण के विषय में आचार्य वराहमिहिर का मत है कि वायु, जल, विद्युत, मेघ का शब्द और मेघों से युक्त गर्भ हो तो प्रसवकाल बहुत वृष्टिप्रद होता हैं। इस तरह के गर्भ काल में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती हैं।

ग्रामीण लोकोक्तियों में मेघ गर्भाधान के दश लक्षण कहे जाते हैं। जैसे- बादल का होना, हवा का बहना, बिजली चमकना, पानी का बरसना, आकाश का कड़कना, बादलगर्जन, ओले का पड़ना, इन्द्रधनुष, सूर्य पर मण्डल (परिवेश) होना और सर्दी पड़ना।

मेघ गर्भों के विशेष लक्षण की विवेचना करते हुए आचार्य वराहमिहिर प्रसव काल का निर्देश देते हुए कहते है कि अमान्त मान से मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द अथवा अल्प वृष्टि प्रदायक होता हैं। पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्रपद शुक्ल में फाल्गुन शुक्लपक्ष में गर्भ हो तो भाद्रपद कृष्ण में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्ल में प्रसव (वृष्टि) होता हैं।

गर्भ की वृद्धि के लिए ऋतु के स्वभाव से उत्पन्न अवशिष्ट लक्षणों के अनुसार पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्याओं के रक्तवर्ण और परिवेश युत मेघ शुभ होते हैं तथा मार्गशीर्ष में अल्पशीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता हैं। माघ मास में प्रबल भयंकर वायु, अतिशीत और मेघ रहित सूर्य का उदयास्त शुभ होता हैं। फाल्गुन मास में रूक्ष और भयंकर वायु, मेघों का उदय, सूर्य व चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेश, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ हैं। चैत्र मास में वायु, मेघ, वृष्टि और परिवेश युत गर्भ होता हैं। वैशाख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत और मेघ के गर्जन युत गर्भ शुभ होता हैं।

ऋतुओं के स्वभाव जनित एवं सामान्य लक्षणों से युत होने पर गर्भ की वृद्धि होती है। सब ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तर भाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा एवं रोहिनी इन पाँच नक्षत्रों में बढ़ा हुआ गर्भ प्रसव काल में अधिक वृष्टि करता हैं। इसी प्रकार शतभिषा, आश्लेषा, आद्र्रा, स्वाती एवं मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता हैं। चन्द्रमा और सूर्य के सौम्य ग्रहों (चन्द्र, शुक्र, बुध, गुरू) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वर्षा अच्छी होती हैं। यदि क्रूरग्रहों (शनि, मंगल, राहु, केतु, वक्री बुध) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वज्रपात, ओले, मत्स्य आदि के सहित वृष्टि होती हैं। रवि, भौम, बुध आदि ग्रह गण स्निग्ध गति के हो, पुष्ट हों तथा तारों का प्रकाश खूब चमकीला व स्निग्ध हो और ग्रहण से युक्त न हो, ग्रहों की गति सूर्य के दक्षिण तरफ से हो तो ये भी गर्भ के पुष्ट करने वाले लक्षण होते हैं। इसी तरह यदि पशु-पक्षी भी स्वभाव से ही बिना घवराये हुए की तरह सुन्दर आवाज़ करते हों और

प्रसन्न दिखाई दे, तो गर्भ पुष्ट हुआ समझाना चाहिए।

२.४.३ मेघ गर्भ सम्भव लक्षण-

मेघ गर्भधारण के समय मध्यम व कोमल गति की हवा, शरीर को प्रसन्नता देने वाली हवा उत्तरी ईशान या पूर्वी हवा चलती हैं। मेघ गर्भ धारण के समय सूर्य व चन्द्र में चमक अधिक होती हैं। और चन्द्रमाँ या सूर्य के चारों और गोलाकार बादलों का वलय (परिवेश) बनता हैं। जब आकाश में स्थूल व स्निग्ध मेघ छाये हुए हों और आकाश का रंग काक के अण्डे व मोर के दिन चन्द्र ज्येष्ठ ये मूल नक्षत्र में होता है उस दिन मेघ धारण करते हैं। गर्भ धारण के समय बादल विशाल व घने होते हैं, एवं बादलों का आकार गर्भधारण के समय सूई के समान नुकीले या खुरपे, उस्तरे या फावड़े के समान होते हैं।

गर्भधारण के समय बादलों का रंग कौवों के अण्डो़ के समान अत्याधिक काला होता है आकाश में चन्द्रमा व तारे भी खुब चमकते हैं। सन्ध्या समय में इन्द्रधनुष दिखाई देता हैं तथा बादल मधुर गर्जना करते हैं। बिजली कड़कती हैं पर सूर्य अवश्य दिखाई पड़ता हैं ऐसा समय मेघ का गर्भधारण वाला होता हैं। गर्भधारण समय मे पक्षी व जंगली पशु प्रायः उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा की और मुँह करके खड़े होते हैं या भागते दिखाई पड़ते हैं लेकिन सूर्य मण्डल की ओर नहीं देखते हैं। उस समय पशु पक्षियों की आवाज मधुर होती हैं।

मेघ गर्भधारण के समय ग्रहों के बिम्ब बड़े आकार वाले, नक्षत्रों के उत्तरर मार्ग से गमन करने वाले होते हैं। ग्रहों की किरणें कोमल, उत्पातरहित होती हैं। पेड़ पौधों में अंकुरण होता हैं। मनुष्य व पशु प्रसन्नता अनुभव करते हैं। इस प्रकार के लक्षणों को मार्गशीर्ष शक्ल से वैशाख के अन्त तक देखना चाहिये। उपरोक्त सभी लक्षण मेधगर्भ की पुष्टि का संकेत करते हैं। गर्भकाल में बादल तो दिखे, सुर्य की चमकीली धुप हो, मानसुनी हवा चले तो प्रसव काल में अर्थात् वर्षाकाल में बहुत तीव्र वर्षा होती हैं। मार्गशीर्ष मास में गर्भ लक्षण हो तो 195 दिन व्यतीत होने के बाद छः दिनों तक वर्षा होती हैं तथा माघ में गर्भधारण हो तो प्रसव काल मे 13 दिनों तक लगातार वर्षा होती हैं।

गर्भधारण के समय हवा चलना, मामूली पानी गिरना बिजली कड़कना, बादलों की गड़गड़ाहट व बादलों का खूब छा जाना ये पाँच लक्षण गर्भ पुष्टि की पहचान हैं यदि इन पाँच लक्षणों से युक्त मेघ गर्भधारण करे तो आगामी वर्षा काल मे सौ योजन तक चारों ओर वर्षा होती हैं। यदि उपरोक्त पाँच लक्षणों मे से एक-एक लक्षण कम होते हुए गर्भधारण हो तो आगामी वर्षा काल में उतनी-उतनी वर्षा कम होती जायेगी। उक्त चारों निमितों में 50 योजना तक चारों ओर वर्षा होती हैं एवं तीन निमितों में 15 योजन तक चारों ओर वर्षा तथा दो निमितों में योजन तक और 1 निमित में 5

योजन तक वर्षा होती हैं।

यदि उस गर्भ नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा स्थित हो तथा उन्हें बुध गुरू शुक्र में से कोई एक देखता हो या योग करे तो ऐसा गर्भधारक मेघ प्रसव के समय खुब वर्षा करता हैं। यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युत वृष्टि होती हैं। ग्रहों के उदयास्त के समय, विशेषतया बुध के उदयास्त के समय, ग्रहयुद्ध समागम, अयन परिवर्तन के समय, सूर्य वर्षा नक्षत्र में प्रवेश करें तो वर्षा होने की सम्भावना होती है।

२.४.४ मेघ गर्भनाश लक्षण-

यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन (दिग्दाह), भूकम्प, तामस कीलकादि केतुओं का दर्शन, ग्रहयुद्ध, निर्घाटत (शब्द), रूधिरादि विकारयुत वृष्टि, परिध, इन्द्रधनुष, राहु, चन्द्र्रग्रहण या सूर्यगहण का दर्शन हो तो ये लक्षण गर्भ के नाशक होते हैं। ऋतुओं के स्वभाव के विपरित असामान्य लक्षण दिखाई दे तो गर्भ की हानि होती हैं। शतभिषा, आश्लेषा, आद्र्रा, स्वाति एवं मघा इन नक्षत्रों में बढ़े हुए मेघगर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम) से हत हो उतने दिन तक वर्षा नहीं होती हैं।

यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युक्त वृष्टि होती हैं, यदि गर्भकालिक नक्षत्र में चन्द्र यर रवि स्थित होकर शूभग्रह से युक्त हों या दृष्ट हों तो गर्भ अत्यधिक वर्षाप्रदायक होता है।

बोध प्रश्न -

1. लाल वर्ण के तथा की स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में दिखलाई दे तो क्या फल होता है?

   क. उत्तम वृष्टि ख. अनावृष्टि ग. मध्यम वृष्टि घ. अतिवृष्टि
2. निम्न में मेघदूतम् किसकी रचना है?

   क. वराहमिहिर ख. कालिदास ग. नारायण घ. कोई नहीं
3. सामान्यतया मेघ के कितने प्रकार है?

   क. २ ख. ३ ग. ४ घ. ५
4. मेघ की जातियाँ कितने प्रकार की कही गयी है?

   क. ६ ख. ५ ग. ४ घ. ८
5. मेघ ज्ञान का गणितीय सूत्र क्या है?

क. इष्टशकाब्द ÷ ३ ख. (इष्टशकाब्द +३) / ४ ग. इष्टशकाब्द × ३ घ. कोई नहीं

6. माघ में गर्भधारण हो तो प्रसव काल मे कितने दिनों तक लगातार वर्षा होती हैं।

क. १२ ख.१३ ग.१४ घ.१५

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि मेघों की निष्पत्ति धूम, ज्योति, सलिल एवं मरूत के संयोग से होती हैं, ऐसा प्राचीनाचार्यो का मत हैं। इसलिए मेघदूत में कालिदास कहते हैं- ''धूमज्योतिः सलिल मरूतां सन्निपातः क्व मेघः।''सूर्य की किरणों से तप्त समूद्र, नदी आदि का जल धूम वाष्प रूप में परिणत होकर मेघों की उत्पत्ति करता हैं। मेघ सामान्यतया दो प्रकार के होते हैं- अभ्र, और मेघ। जिन बादलों से तुरन्त जल नहीं बरसता है अपितु कुछ काल तक उनमें ही स्थित रहता हैं वे अभ्र कहे जाते हैं। यथा- अग्ने वै धूमो जायते धूमादभ्रमभाट् वृष्टिः। यह धूम से बने बादल हितकारी, दावाग्नि धूम से निष्पन्न बादल वनों के लिए लाभदायी है, मृतकधूम से बने बादल अशुभ और अभिचारान्ति के धूम से बने बादल प्राणियों के नाशक कहे गये हैं। मेघ शब्द मेहन करने के कारण कहे जाते हैं जो सद्य वर्षा करते हैं। इस प्रकार वृष्टि कारक मेघों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता हैं। वस्तुतः सूर्य की किरणों से तप्तजल जलवाष्प वायु के द्वारा आकाश में पहुँचाता हैं। जहाँ वह शीतल होकर पुनः जलकणों में बदल जाता हैं। जब शीतलता के कारण वायु संकुचित होती हैं तब जलकण परस्पर निकट आकर एकत्रित होकर भारी हो जाता हैं। जिन्हें वायु ढोने में सक्षम नहीं रह पाती अतः वे ही जलकण वर्षारूप में भूमि पर गिरते हैं। जल के वाष्प रूप में परिणत होने के काल से वर्षण तक के समय को ही वृष्टिगर्भकाल कहते हैं। यह वृष्टि चक्र ईश्वर की प्रेरणा से चलता हैं, ऐसा प्राच्यों का मत हैं। ब्रहावैवर्त्त पुराण में वृष्टि पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा गया हैं कि - सूर्य द्वारा ग्रहण किया हुआ जल ही समयानुसार बरसात है। सूर्य, मेघ आदि सबको विधाता ने ही निर्मित किया हैं। सूर्य इच्छानुसार समुद्र से जल लेकर बादलों के लिए देते हैं और वे बादल वायु द्वारा संप्रेरित होकर ही पृथ्वी के पृथक्-पृथक् स्थान में समय-समय यथोचित जल देते हैं। यह सब ईश्वर की इच्छा से ही आविभूर्त होता हैं। यहाँ सूर्यकिरणों से जल लेने की पद्धति को ही सूर्य के जल लेने के रूपक में वर्णित किया गया हैं। यहाँ भौतिक एवं पौराणिक पक्षों के समन्वय का अच्छा प्रयास दिखाई देता हैं।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

मेघ – बादल

धूम्र - धुआँ

ज्योति – प्रकाश

सलिल – वायु

मेघ गर्भ – वृष्टि होने के पूर्व मेघ स्थिति

भौतिक – शारीरिक

पौराणिक – पुराणों में कथित या लिखित

२.७ बोध प्रश्न के उत्तर

1. क
2. ख
3. क
4. ग
5. ख
6. ख

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मकरन्दप्रकाश – मूल लेखक – आचार्य नारायण, टीका – पं. लषण लाल झा
2. वृष्टिविज्ञान परिशीलन – आचार्य देवीप्रसाद त्रिपाठी
3. ज्योतिष रहस्य – जगजीवन दास गुप्ता
4. वृहत्संहिता – मूल लेखक – आचार्य वराहमिहिर, टीका – पं. अच्युतानन्द झा
5. मेघदूतम् – मूल लेखक – कालिदास

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. नारद संहिता
3. वशिष्ठ संहिता

4. वृष्टिविज्ञान परिशीलन

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. मेघ का परिचय दीजिये।
2. मेघ गर्भ लक्षण का प्रतिपादन कीजिये।
3. शास्त्रीय आधारों पर मेघ का वर्णन कीजिये।
4. मेघ गर्भ लक्षण एवं गर्भ विनाश का उल्लेख कीजिये।

इकाई - ३ वृष्टि विचार एवं वृष्टि भंग योग

इकाई की संरचना

३.१. प्रस्तावना
३.२. उद्देश्य
३.३. वृष्टि विचार
 ३.३.१. वृष्टि के प्रकार
३.४. वृष्टि भंग योग विचार
३.५. सारांश
३.६. पारिभाषिक शब्दावली
३.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
३.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
३.९. सहायक पाठ्य सामग्री
३.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

३.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – वृष्टि विचार एवं वृष्टि भंग योग। इससे पूर्व आप सभी ने मेघ गर्भ लक्षण का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संहिता ज्योतिष से जुड़े महत्वपूर्ण विषय - वृष्टि एवं वृष्टि भंग विचार का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

वृष्टि किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? वृष्टि भंग योग क्या है? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए वृष्टि एवं वृष्टि भंग योग से जुड़े विभिन्न प्रकार के विषयों की चर्चा क्रमशः हम इस इकाई में करते है।

३.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वृष्टि किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि वृष्टि के प्रकार कितने है।
- वृष्टि भंग योग को समझ सकेंगे।
- वृष्टि के कारकों को जान लेंगे।
- वृष्टि की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

३.३. वृष्टि विचार

''वृषु सेचने' इस धातु से ''स्त्रिया क्तिन्'' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में **वृष्टि** शब्द निष्पादित होता हैं। कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता हैं फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता हैं। इसी प्रकार ब्रहमाण्ड पुराण में उल्लिखित हैं कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता हैं। समुद्र (पारमेष्ठय समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती हैं। अपनी गति के कारण हटा हुआ सुर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता हैं। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता हैं। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दनवल वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती हैं तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर जाकर उसमें संघनन की प्रकिया सम्पन्न होने लगती हैं। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रकिया से मेघों की उत्पत्ति होती हैं। मेघ जल की महीन-महीन बूँदों अथवा छोटे-छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती हैं। जलबूदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता हैं कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।

वृष्टि के कई प्रकार हैं। जिनमें वर्षा, करका एवं हिम का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता हैं। प्राचीन काल में वृष्टि का अभिप्राय जल वृष्टि अथवा वर्षा से लिया जाता था। ओले, जो सामान्यतया वर्फ के शुष्क बड़े गोले के समान होते हैं, के 12 प्रभेद निम्न हैं- धाराङ्कुर, राधारङ्कुर, वर्षेपल, घनोपल, मेघोपल, मेघास्थि, मटची, पुंजिका, बीजोदक, घनकफ, वार्चर एवं करका। सम्भवतः उपर्युक्त भेद ओलों की आकृति के आधार पर कहे गये हैं। ओले को ‘करका’ भी कहा जाता हैं। अधिक ओलों के गिरने से दुर्भिक्षभय रहता हैं। करकोत्पत्तिका के विषय में बृहत्संहिता में वर्णित हैं कि यदि धारण हुआ समय में आकार करका वृष्टि अथवा करकर मिश्रित जलवृष्टि करता हैं। हिम के चार प्रभेद होते हैं- प्रालेय, तुषार, धूमिका एवं अवश्याय।

1. प्रालेय - जल वर्फ के समान कठिन हो जाने पर प्रालेय कहलाता हैं। मेरूप्रान्त में हिमालय में और ओले आदि में इस प्रालेय का रूप दिखाई देता हैं।

2. तुषार - जो अपने बरस जाने के बाद और ओलों के बरसने के बाद दो तीन दिन तक अत्यन्त कंपाने तथा वृक्षों का नाश करने वाला होता हैं, उसको तुषार कहते हैं।

3. धूमिका - जो प्रायः प्रातः काल में पौष, माघ के महीनों में सूर्य की किरणों को क्षीण बनाकर धुएं की तरह सबको ढक लेती हैं, उसको धूमिका कहते हैं। कुहिढ़, कुहेड़ि, कुहेलिका, नभोरेणु, कुज्झरिका, कुज्झटि, धूममहिषी और रतान्द्री ये धूमिका के नाम हैं, यह धूमिका अत्यन्त घनीभूत बनकर अवश्याय (ओस) के पतन का कारण होती हैं।

4. अवश्याय (ओस)

हर रोज जल के जो छोटे-छोटे कण प्रतिरात्रि में बरसते हैं इसीलिए उन्हें अवश्याय कहते हैं। कादम्बिनी में उल्लिखित है कि जिस देश में खारी कड़वी, दुर्गन्धयुक्त और धान्यनाशक वर्षा होती हैं, वह देश खेती के नाश से नष्ट हो जाता हैं। वर्षा के अन्दर मत्स्य और मेढ़कों के गिरने से सुभिक्ष होता

हैं तथा शंख, शंबूक (जल में पैदा होने वाली सीयें) और कछुवी या छोटा कछुवा इनके गिरने से दुर्भिक्ष होता हैं।

वृष्टि या वर्षण की निम्न अवस्थाएं होती हैं- धारासम्पात, आसार, सीकर, अम्बुकण द्रप्स, स्तोक, पृषदबिन्दु, पृषत्, विपुट्, वृष्टि और वर्षा वृष्टि के नाम हैं। करका और हिमपात भी वृष्टि के ही नाम हैं। आधुनिक विचारधारा के अनुसार अवक्षेपण या वृष्टि के निम्न प्रकार हैं-

३.३.१ वृष्टि के प्रकार-

1. फुहार-

यह सूक्ष्म जलकणों (व्यास 0.5 मि मी से कम) का सम अवक्षेपण हैं। फुहार साधारणतः शान्त या धीमी वायुधारा में ही गिरती हैं। आरोही वायुधारा तेज होने से, फुहार कण छोटे होने के कारण नीचे गिर सकेंगे। फुहार साधारणतः स्तरी मेघ द्वारा उत्पन्न होते हैं।

2. वर्षा-

0.5 मि.मी. व्याय से बड़ी बूँदें साधारणतः वर्षा कहलाता हैं। इन बूँदों की दीर्घतम सीमा 5.5 मि.मी हैं। इससे बड़ी बूँदें साधारणतः टूट जाया करती हैं। वर्षा मध्य स्तरी, स्तरी कपासी, स्तरी, कपासी वर्षी एवं कपासी बादलों से हो सकती हैं।

3. बौछार-

थोडे समय की तेज और बड़ी बूँदों वाली वर्षा बौछार कहलाती हैं। यह साधारणतः कपासी वर्षी एवं कपासी मेघों से सम्बन्धित घटना हैं। अन्य मेघ स्टेशन से गुजरते समय बौछार दे सकते हैं।

4. हिमकारी वर्षा-

वह वर्षा, जो भूमि पर जल के रूप में पहुँचती हैं, पर भूमि पर पहुँचने के बाद जम जाती हैं, यह हिमकारी वर्षा कहलाती हैं।

5. तुषारपात-

सफेद बर्फ के रवेदार टुकडों की वर्षा तुषार या हिम कहलाती हैं, ये रवे अपारदर्शी तथा सितारों जैसी आकृति के 4 ये 5 मि.मी. व्यास के सुन्दर टुकड़े होते हैं। बड़े रवे भूमि पर तभी गिरते हैं, जब भूमि का तापमान कम से कम 00 से हो। भुमि का तापमान थोड़ा अधिक (10 से 50) होने से तुषारपात के रूप में होता हैं। तुषारपात साधारणतः मध्यस्तरी, स्तरी कपासी, स्तरी, कपासी तथा कपासी वर्षी मेघों से सम्बन्धित होता हैं।

6. तुषार गोली-

यह सफेद अपारदर्शी गोलाकार या शंखाकार बर्फ से दानों का अवक्षेपण है जिसका व्यास

2 से 5 मि.मी. तक हो सकता हैं, साधारणतः भूमि से टकराने पर ये दाने टूट जाते हैं। ये स्तरी कपासी या कपासी वर्षी मेघों से सम्बधित हो सकते हैं।

7. हिमगोली ये हिम सूचिका-

परदर्शी, गोलाकार या अनियमित आकार (व्यास 5 मि.मी से कम) की गोलियाँ मध्यस्तरी या कपासी वर्षी बादलों से प्राप्त होती हैं। बर्फ से कुछ रवे सूइयों के आकार (2 मि.मी. लम्बे) के भी अवक्षेपित होते हैं। सूइयां बहुत हल्की होती हैं और कभी कभी वायुमण्डल में निलम्बित होकर प्रकाशीय घटनाएं उत्पन्न करती हैं।

8. सहिम वृष्टि-

जब भूमि तल का तापमान कुछ अधिक होता है, तुषारपात भुमि तक आते आते जल में पिघल जाता हैं। अतः जल और तुषार दोनों का अवक्षेपण साथ-साथ प्रतीत होता हैं, यह सहिम वृष्टि कहलाती हैं।

9. ओला-

बर्फ के अपेक्षाकृत बड़े टुकडो़ (व्यास 5 से 5 मि.मी. या इससे अधिक) का गिरना ओला कहलाता हैं। कुछ टुकड़े साधारणतः अल्प पारदर्शी तथा कई तहों में बने होते हैं तथा कुछ टुकडो़ बहुत छोटे मुलायम सफेद बर्फ के गोले होते हैं।

ओले साधारणतः कपासी वर्षी मेघ से गिरते हैं। इस मेघ में ऊष्व प्रवाह द्वारा जलकण, जब हिमांक स्तर से ऊपर पहुँचते हैं, तो कुछ छोटे हिमकण के रूप में जम जाते हैं, ये कण अतिशीतल जल के सह अस्तित्व में बर्जटान प्रक्रम के अनुसार आकार में वृद्धि प्राप्त करते हैं तथा भार के कारण नीचे गिरते समय संघटन द्वारा और बढते जाते हैं। अत्यधिक तीव्र ऊध्र्व प्रवाह के कण पुनः उठते हैं और उसी प्रकार से उन्हें और वृद्धि करने का पर्याप्त समय मिल जाता हैं। अतः ओलों के विकास के लिए आवश्यक है ऊर्ध्वाधर विकास के मेघ बहुत तीव्र वायुधाराओं से युक्त हों। हर बार उठने और गिरने से इन टुकड़ों पर तुषार की नई परतें चढती जाती हैं। यह दो... क्रिया तब तक चलती रहती हैं, जब तक कि बर्फ के टुकड़ों का आकार ऊध्र्व धाराओं को सन्तुलित करने में सक्षम नहीं हो जाता। यही कारण है कि साधारणतः ओले में विभिन्न घनत्वों के बर्फ और तुषार की कई तहें पायी जाती हैं। छोटे ओले प्रायः भुमि तक आते-आते पिघलकर कर या तो समाप्त हो जाते हैं या बहुत छोटे हो जाते हैं।

वृष्टि का काल

प्राचीन भारतीय मतानुसार शीतकाल में वृष्टि के बादलों वाष्पीकरण की प्रक्रिया द्वारा

निर्माण होना प्रारम्भ होता है अतः इसे धारणकाल कहा जाता हैं। उष्णकाल हो उस मेघगर्भ का पोषण होता हैं वर्षाकाल में प्रसव अर्थात् प्रवर्षण होता हैं। यह जलचव पूरे 1 वर्ष का हैं। मेघ के गर्भकाल, दोहद (पुष्टिकाल) एवं प्रसवकान के विषय में अनेक मतान्तर हैं। किसी का मत है कि - मार्गशीर्ष से चार महीने फाल्गुन शीतकाल, चैत्र से चार महीने आषाढ़ तक उष्णकाल तथा श्रावण से चार महीने तक वर्षाकाल होता हैं। सम्प्रति- कार्तिक से माघ तक शीतकाल, फालगुन से ज्येष्ठ तक उष्णकाल तथा आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता हैं। किसी का अभिमत ज्येष्ठ नक्षत्र के आस पास जब अमावस्या (मार्गशीर्ष अमावस्या) होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठ नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा (ज्येष्ठ पूर्णिमा) हो तो प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए। कुछ विद्वान मानते हैं कि मूलनक्षत्र के उतरार्ध में सूर्य के आने से (पौषमाह) गर्भकाल तथा आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से 4 मास तक प्रसवकाल समझना चाहिए। वराहमिहिरादि आचार्यों का मत है कि जिस नक्षत्र पर चन्द्रमा के रहते हुए गर्भस्थिति हुई हो, उसी नक्षत्र पर आठवीं बार चन्द्रमा के आने से अर्थात् 195 दिन में, उस दिन की गर्भस्थिति का जल बरस जाता हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीनाचार्यों के मतानुसार प्रायः आषाढ़मास से आश्विन मास तक वर्षाकाल होना चाहिए। वस्तुतः वृष्टिकाल का ज्ञान करना अत्यन्त जटिल प्रक्रिया हैं। क्योंकि वृष्टि का तात्पर्य मात्र वर्षा से न होकर हिमपात, ओलावृष्टि इत्यादि से भी होता हैं। साथ ही वृष्टि शीतकाल एवं उष्णकाल में होती रहती हैं। यहाँ प्राचीनचार्यों का वृष्टिकाल से तात्पर्य मानसूनी पवनों द्वारा होने वाली वर्षा से हैं जो प्रायः उपर्युक्त मासों में अर्थात् वर्षाकाल में ही होती हैं। साथ ही जिस पर भारत की कृषि अवलम्बित हैं।

आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों के मातनुसार भी भारत मानसून प्रधान देश हैं। जम्मु और कश्मीर चरम दक्षिणी तट तथा पूर्वी घाट के क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में कुल वर्षा का 80 से 90 प्रतिशत भाग केवल दक्षिणी पश्चिमी मानसून के चार महीने में प्राप्त होता हैं। अतः प्राचीनचार्यों ने इसी दक्षिणी पश्चिमी मानसून से प्राप्त होने वाली वर्षा के काल को, जिस भारत की कृषि अवलम्बित हैं, को जानने का प्रयत्न किया। **भारत जलवायु को निम्नांकित चार ऋतुओं में बाँटा जा सकता हैं-**

(1) शीतकाल या उत्तरी पूर्वी मानसून - दिसम्बर से फरवरी
(2) ग्रीष्मऋतु या पूर्व मानसून काल - मार्च से मई
(3) वर्षा¬ऋतु या दक्षिणी पश्चिमी मानसून काल - जून से सितम्बर
(4) संक्रमण मानसून या उत्तरी पूर्वी मानसून - सितम्बर से नवम्बर।

1. शीतकालीन वर्षा

शीतकाल में वर्षा किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं। इस काल में आर्द्र और अस्थिर पवनों से वर्षा हुआ करती हैं। उत्तरी पूर्वी मानसून पवन ठंडे और शुष्क होते हैं। यदि ये पवन बंगाल की खाड़ी से गुजरते हैं। तो समुद्री भाग से जलवाष्प ग्रहण करते हैं इनसे अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह में खुब वर्षा होती है। साथ ही तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों में भी इन पवनों द्वारा अच्छी वर्षा होती हैं। उत्तरी भारत प्रायः शुष्क; धुपदार एवं मेघरहित रहता हैं। परन्तु शीतोष्ण चक्रवात, जो पश्चिम की ओर से आते हैं, से मौसम परिवर्तित हो जाता हैं। इन चक्रवातों से भारत के उत्तरी मैदान में वर्षा होती हैं जबकी हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों मे हिमपात होता हैं। वैसे तो नवम्बर के अन्त में ही चक्रवातों का भारत में आगमन शुरू हो जाता है, परन्तु जनवरी-फरवरी में इनकी संख्या सबसे अधिक रहती हैं। कैन्ड्रयू के अनूसार सामान्यतया नवम्बर में दो दिसम्बर में चार तथा जनवरी से अप्रैल तक प्रत्येक माह पाँच-पाँच चक्रवात भारत में प्रवेश करते हैं।

2. ग्रीष्मऋतु कालीन वर्षा

ग्रीष्मकाल वास्तव में वर्षा का समय नहीं हैं, अपितु वर्षा की तैयारी का मौसम हैं। फिर भी इस काल में भी समय समय पर कहीं संवहनी वर्षा होती हैं और कहीं चक्रवाती वर्षा। वर्षा सामान्यतया बहुत कम होती है परन्तु ग्रीष्मऋत में बिहार से असम तक तडित झंझा द्वारा, जिसे 'काल वैशाखी' का नाम दिया गया है, काफी वर्षा हो जाती है। इस वर्षा को बसंत ऋतु की तूफानी वर्षा भी कहते हैं। असम में इसे चायवर्षा भी कहते हैं। संवहनी धाराओं से दक्षिणी भारत के आंतरिक क्षेत्रों में 10 से.मी . तक वर्षा हो जाती हैं। जिसे 'आम वर्षा' कहते हैं। कर्नाटक के तटीय क्षेत्र तथा केरल में अप्रैल मई में 24 से.मी. के लगभग वर्षा हो जाती हैं। मई के अंत में यहाँ मानसून का आगमन हो जाता हैं।

3. वर्षाऋतु कालीन वर्षा-

भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान, म्यानमार आदि देशों की 90 मि0मी0 के लगभग वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून द्वारा होती है जो लगभग 25 मई से 15 दिसम्बर तक प्रभावी रहता हैं। दक्षिणी पश्चिमी मानसून भारतीय प्रायद्वीप की स्थिति और आकृति विशेष के कारण भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् दो ओर से भारत में प्रवेश करती हैं। जबकी दूसरी शाखा बंगाल की खडी़ की तरफ से प्रवेश करती हैं। इन दोनों शाखाओं द्वारा ही समूचे भारत को कुल वार्षिक वर्षा का
भाग प्राप्त होता हैं।

दक्षिणी पश्चिमी मानसून की अविश्वसनीयता उसके अभ्युदय, अवधि, मात्रा एवं प्रत्यावर्तन

के समय के अनिश्चित होने के कारण बनी रहती हैं। मौसम वैज्ञानिकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मानसून आगमन की तिथियां निर्धारित की हुई है। यथा-

प्रदेश	**मानसून अभ्युदय तिथि**
केरल	1 जुन
मुम्बई(महीराष्ट्र)	14 जुन
बिहार	10 जुन
उत्तरप्रदेश	14 जुन
पंजाब	1 जुलाई

परन्तु शायद ही किसी वर्ष मानसून का भारत के किसी राज्य में आगमन निर्धारित तिथि के अनुसार होता हो, सामान्यतया यह देखा गया है कि मानसून का किसी क्षेत्र में आगमन निर्धारित तिथि के 2-4 दिन पहले या बाद होता हैं। कभी कभी तो मानसून 13-14 दिन के बिलम्ब से पहुँचता हैं। इसी प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दक्षिणी पश्चिमी मानसून की अवधि 2 से 5 महीने तक रहती है, परन्तु सभी दिन वर्षा नहीं होती हैं।

4. शरद् ऋतु कालीन वर्षा-

यह लगभग 16 सितम्बर से 15 दिसम्बर तक रहती हैं। वास्तव में यह काल मानसून की वापसी का होता हैं। 15 दिसम्बर तक संपुर्ण भारत से दक्षिण-पश्चिमी मानसून समाप्त हो जाता है। इसका स्थान सर्दियों के मानसून पवन ले जाते हैं। अक्टुबर से भारत के आधे पूर्वी भाग में लौटते मानसून में वर्षा होती रहती है। 15 अक्टुबर तक दक्षिणी भारत के कर्नाटक आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु तथा केरल में भी हटते मानसून पवनों से वर्षा होती हैं। 15 दिसम्बर तक तमिलनाडु के केवल पूर्वी भाग में लौटते मानसून से वर्षा होती है। यह क्षेत्र गर्मियों के बजाय सर्दियों में वर्षा प्राप्त करता है। इस काल में प्रायः वर्षा नहीं होती हैं परन्तु वर्षा के सम्बन्ध में दो बातें महत्वपूर्ण हैं। प्रथम सम्पूर्ण भारत में अक्टूबर में तापमान में वृद्धि के साथ संवहनी धाराएं उत्पन्न हो जाती हैं जिनके ऊपरी सिरे पर कपासी मेघों की उत्पत्ति हो जाती हैं। ये कपासी मेघ बाद मे कपासी वर्षी मेघों का रूप धारण कर तडित झंझा की घटनाओं के साथ घनघोर वर्षा करते हैं। अक्टुबर में तडित झंझा की सबसे अधिक (औसतन 92) धटनाएं केरल राज्य की धटती हैं। यहाँ वर्षा सामान्यतया दोपहर बाद एवं रात्रि से पहले होती हैं परन्तु उत्तर की ओर बढ़ने पर ये घटनाएं कम होती जाती है। उत्तरी भारत में सामान्यतया अक्टुबर में तडित झंझा की घटनाएं नहीं घटती परन्तु कभी-कभी किसी क्षेत्र में स्थानीय रूप से संवहनी धाराओं द्वारा उत्पन्न कपासी मेधों के कपासी वर्षी मेघों में बादल जाने पर तडित

झंझा युक्त वर्षा की सम्भावना अक्टुबर में सायंकाल और रात्री के प्रथम प्रहर में घटती हैं। द्वितीय महत्वपूर्ण बात यह हैं कि अक्टुबर नवम्बर में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में उष्ण-कटिबंधी प्रभार के चक्रवातों की उत्पत्ति होती हैं, जिनसे भारत के तटीय क्षेत्रों में वर्षा होती हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के किसी न किसी क्षेत्र में प्रत्येक मौसम में वर्षा होती हैं परन्तु वर्षा का 85-90 प्रतिशत भाग दक्षिणी -पश्चिमी मानसून पवनों द्वारा जून से सितम्बर में ही प्राप्त होता हैं। अतः इसे वर्षा ऋतु या वर्षाकाल भी कहा जाता हैं।

३.४ वृष्टि भंग योग विचार

वृष्टि भंग से तात्पर्य यहाँ वर्षा का अभाव से है। शास्त्रीय रीति में यह कब-कब होत है। इसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

वृहत्संहिता के अनुसार -

यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि सभी नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है। अर्थात् वृष्टि नहीं होती। यहाँ वृष्टि भंग होता है।

यदा वह्नौ वायुर्वहति गगने खण्डिततनुः।
प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतंगे प्रवसति।।
तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिंगिततला
स्वगात्रोष्मोच्द्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम्।।

अर्थात् यदि आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन अस्त समय में अप्रतिहत गति वाली अग्नि कोण की वायु चले तो उस वर्ष में सर्वत्र अग्नि की ज्वाला से व्याप्त पृष्ठ वाली प्रज्जवलित पृथ्वी अपने शारीरिक उष्ण उच्छवास के द्वारा भस्मों को वमन करती है। अर्थात् पृथ्वी पर वृष्टि का अभाव, अग्नि का भय, प्रजाओं का नाश आदि उपद्रव होता है।

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में तालपत्र, लताओं की विस्तार औरवृक्षों से वाहनों को नचाते हुए, कठोर शब्द वाले दक्षिण की तरफ हवा चले तो तालरूप अंकुश से ताड़ित हस्ती की तरह मेघ कृपण मनुष्य की अत्यल्प वृष्टि छोड़ता है। अर्थात् वृष्टि भंग होता है।

रोहिणी पतन फल –

यदि समुद्रगता शशिवल्लभा बहुजलैर्धरणीपरिपूजिता।
तटगता यदि सा शुभवृष्टिदा भवति सन्धिगतादलवृष्टिदा।।

जिस वर्ष समुद्र में रोहिणी का पतन हो, उस वर्ष अतिवृष्टि, तट में पतन होन से सुवृष्टि और सन्धि में खण्ड वृष्टि होती है।

नारद संहिता के अनुसार वृष्टिभंग योग -

अल्पवृष्टिः पापदृष्टे प्रावृट्काले चिराद्भवेत्।
चन्द्रवद्भार्गवे सर्वमेवंविधगुणान्विते।।

अर्थात् जिस दिन चन्द्रमा केवल शुभ या पापग्रह से विद्ध हो उस दिन अल्पवृष्टि होता है।

सद्योवृष्टिकरः शुक्रो यदा बुधसमीपगाः।
तयोर्मध्यगते भानौ तदा वृष्टिनाशनम्।।

प्रश्नकाल में यदि शुक्र-बुध के समीप हो या योग करता हो तो सद्यः वृष्टि होती है। और यदि शुक्र बुध के मध्य सूर्य हो तो वृष्टि का नाश होता है।

मघा, पू0फा0, उ0फा0, अस्त, चित्रा,पू0षा0, पू0भा0 स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों से अलग नक्षत्रों में शुक्र रहे तो वर्षा नहीं होती है।

सूर्यस्थ राशि से पूर्वापर राशियों पर समीप में यदि चन्द्रमा आदि ग्रह रहे तो वर्षा होती है और वक्री होकर दूरस्थ राशि का होने पर वर्षा नहीं होती है।

आर्द्रा से मूल नक्षत्र तक समय-समय पर कृषि के अनुकूल वर्षा होती है और रेवती आदि १० नक्षत्रों में वर्षा नहीं होती है।

सूर्य और चन्द्रमा के आसन्न उत्तर दिशा में परिवेष मण्डल हो अथवा विजली चमके और मेढक बोले तो वर्षा की हानि होती है।

बोध प्रश्न -

1. वृष्टि शब्द की निष्पत्ति किस धातु से हुई है।
   क. वृष ख. वृष सेचने ग. दा घ. क्त
2. निम्न में आर्द्र शब्द का क्या अर्थ है।
   क. भीगा ख. वर्षा ग. वृष्टि घ. कोई नहीं
3. ओले के कितने प्रभेद कहे गये हैं।
   क. १० ख. ११ ग. १२ घ. १३
4. हिम के कितने प्रकार है।
   क. ३ ख. ४ ग. ५ घ. ६
5. इकाई के अनुसार वृष्टि के कितने प्रकार कहे गये हैं।

क. ८ ख. ९ ग. १० घ. ११

6. भारत के जलवायु को कितने ऋतुओं में बाँटा गया है।

क. २ ख.३ ग.४ घ.५

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ''वृषु सेचने' इस धातु से ''स्त्रिया क्तिन्'' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में **वृष्टि** शब्द निष्पादित होता हैं। कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता हैं फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता हैं। इसी प्रकार ब्रहमाण्ड पुराण में उल्लिखित हैं कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता हैं। समुद्र (पारमेष्ठय समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती हैं। अपनी गति के कारण हटा हुआ सुर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता हैं। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता हैं। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दनवल वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती हैं तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर जाकर उसमें संघनन की प्रकिया सम्पन्न होने लगती हैं। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रकिया से मेघों की उत्पत्ति होती हैं। मेघ जल की महीन-महीन बूँदों अथवा छोटे-छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती हैं। जलबूदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता हैं कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

वृष्टि – बारिश या वर्षा

मेघ - बादल

वृष्टिभंग योग – वृष्टि न होने का योग

आर्द्र – भीगा हुआ

वर्षा – हिन्दी शब्द है।

हिमकण – बादलों का कण

पवन - हवा

भूमि- पृथ्वी

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ग
4. ख
5. ख
6. ग

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष रहस्य – जगजीवन दास गुप्ता
2. वृष्टिविज्ञान परिशीलन –प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
3. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर
4. नारद संहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता
2. मकरन्दप्रकाश
3. वशिष्ठ संहिता
4. लोमश संहिता

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. वृष्टि योग का उल्लेख कीजिये।
2. वृष्टि से क्या तात्पर्य है। वर्णन कीजिये।
3. वृष्टि प्रकार का प्रतिपादन कीजिये।
4. वृष्टि भंग योग का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. वृष्टि पर टिप्पणी लिखिये।

इकाई - ४ प्राकृतिक आपदा का विवेचन

इकाई की संरचना

४.१. प्रस्तावना
४.२. उद्देश्य
४.३. प्राकृतिक आपदा परिचय
४.४. दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पात विवेचन
४.५. सारांश
४.६. पारिभाषिक शब्दावली
४.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
४.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
४.९. सहायक पाठ्य सामग्री
४.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

४.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – प्राकृतिक आपदा का विवेचन। इससे पूर्व आप सभी ने मेघ और वृष्टि से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत ही प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा जैसे – भूकम्प, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, दिव्यभौमअन्तरिक्ष उत्पात, उल्कापातादि। प्रकृति से सम्बन्धित उत्पात को प्राकृतिक आपदा की संज्ञा दी गयी है।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े प्राकृतिक आपदाओं के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

४.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि प्राकृतिक आपदा किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि प्राकृतिक आपदा के अन्तर्गत क्या-क्या होता है।
- प्राकृतिक आपदा के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- प्राकृतिक आपदाओं का नाम जान लेंगे ।

४.३. प्राकृतिक आपदा परिचय

प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जिन आपदाओं का सम्बन्ध सीधे-सीधे प्रकृति से जुड़ा हो, उसे प्राकृतिक आपदा कहेंगे। इसका क्षेत्र भी प्रकृति के तरह ही अतिवृहत् है। सम्प्रति इसे 'डिजास्टर' के नाम से जाना जाता है। आपदा-प्रबन्धन के नाम से इसका अध्ययन-अध्यापन भी कराया जाता है। इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, समर्घ-महर्घ, पर्यावरण सम्बन्धित समस्यायें, उल्कापातादि, धूमकेतु, वृक्षों से सम्बन्धित, राष्ट्र एवं विश्व से सम्बन्धित नाना प्रकार की आपदायें आदि इत्यादि विषय आते हैं।

संहिता ज्योतिष में उक्त सभी विषयों को भूमिजन्य, आकाशजन्य और दिव्य से सम्बन्धित मुख्यत: तीन उत्पात - दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पातों में विभक्त किया है। आइए हम सब उसका विस्तृत अध्ययन करते हैं यहाँ इस इकाई में।

४.४ दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पात विवेचन

आपदाओं के बारे में आचार्य वशिष्ठ स्वग्रन्थ 'वशिष्ठ संहिता' में बताते हुए कहते हैं कि -

अन्यत्वं प्रकृतेः यत्तदसावुत्पातसंज्ञकम्।।

अर्थात् प्रकृति का अन्यत्व अर्थात् विपरीत होने की उत्पात संज्ञा कही गयी है। प्रकृति के बदलने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य, ये तीन प्रकार के उत्पात होते हैं। मनुष्यों में जब विनम्रता नहीं रहती, पाप करने लगते हैं। और जब पाप बहुत बढ़ जाता है तो इससे प्रकृति में उपद्रव होने लगता है, इसी उपद्रव को आचार्यों ने उत्पात संज्ञा दी है।

अधर्मत्वादसत्याच्च नास्तिक्यादतिलोभतः।
अनाचारन्नृणां नित्यमुपसर्गः प्रजायतेः।।

अधर्म से, असत्य से, नास्तिकता से, अति लोभ से, मनुष्यों के अनाचार से, नित्य ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

तद्वशास्त्रिविधोत्पाता जायन्ते शोकदुखदाः।
दिव्यान्तरिक्षाक्षितिजविकारा घोररूपिणः।।

उस उपद्रव वश तीन प्रकार के शोक और दुःख देने वाले उत्पात उत्पन्न होते हैं। दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भूमिजन्य भयंकर रूप वाले विकार कहे गये हैं।

ग्रहर्क्षजा केतवश्च उत्पाता दिव्यसंज्ञकाः।
निर्घातपरिवेषोल्कापुरन्दरधनुध्र्वजाः।।

ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न और केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक कहे गये हैं। अर्थात् सूर्य आदि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के विकारयुक्त होने से जो उत्पात होता है, उसे दिव्य संज्ञा दी गयी है। निर्घात, परिवेश, उल्का, इन्द्रधनुष और ध्वज।

लोहितैरावतोष्टाश्वकबन्धपरिघादयः।
एवमाद्या महोत्पातास्त्वन्तरिक्षाहयास्त्वमी।।

लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व, कबन्ध तथा परिघ आदि से उत्पन्न हुए बड़े उत्पातों को अन्तरिक्ष उत्पात कहा जाता है।

उत्पद्यते क्षितौ यच्च स्थावरं वाथ जंगमम्।

तदेकदेशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम्।।

पृथ्वी के चलायमान होने से अथवा चर वस्तु के स्थिर एवं स्थिर वस्तु के चलायमान होने पर उसके एक भाग को भूमि सम्बन्धी उत्पात की संज्ञा दी गयी है।

भौमास्तु तुच्छफलदास्त्वन्तरिक्षास्तु मध्यमाः।

सम्पूर्णफलदा दिव्या वर्षादद्र्धात्तदर्द्धतः।।

भौम उत्पात तुच्छ अर्थात् स्वल्प फल देने वाले होते हैं। जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात सम्पूर्ण फल देते हैं। वह तीन महीने, छः महीने अथवा एक वर्ष में अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।

भौमं शान्त्या शमं याति मार्दवं त्वन्तरिक्षजम्।

दिव्यं होमान्नगोभूमिदानैस्तत्कोटिहोमतः।।

भूमि सम्बन्धी उत्पात तो शान्ति से शमित अर्थात् नष्ट हो जाते हैं जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मन्द पड़ जाते हैं अर्थात् कम हो जाते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात हवन, अन्न, गाय, भूमि के दान से तथा करोड़ों हवन से।

महोपहाराद् रुद्रस्य गोदोहात्तत्पुरःसरम्।

अलंकृते क्षितितले यावत्क्षीरप्लवं भवेत्।।

भगवान रुद्र के अनेक प्रकार के पूजन से तथा उनके समक्ष गोदोहन से पृथ्वी का अलंकार तब तक करें जब तक दूध स्वतः बहने न लगे।

अपि दिव्यं शमं यान्ति किं पुनस्त्वितरद्वयम्।

अकृत्वा शान्तिकं राजा दुखाम्भोधौ निमज्जति।।

दिव्य उत्पात भी शमन हो जाते हैं। तो फिर इससे अतिरिक्त जो दो अर्थात् भूमि एवं अन्तरिक्ष उत्पात हैं। वे तो निश्चित ही शमित हो जायेंगे बिना शान्ति कर्म किए राजा इन उत्पातों के होने पर दुःख रूपीर समुद्र में डूब जाता है।

पुरे जनपदे कोशे वाहनेषु पुरोहिते।

स्त्रीपुत्रात्मनि भूपस्य पच्यते दैवमष्टभिः।।

पुर (नगर) में, जनपद (ग्राम), कोष (खजाना), वाहन, पुरोहित, स्त्री, पुत्र तथा स्वयं (राजा) में, इन आठ प्रार के दैव उत्पात के द्वारा राजा पीड़ित होता है।

हस्तैः षोडशभिः काय्र्यं चतुरस्त्रं समन्ततः।

मण्डपं याज्ञिकैर्वृक्षैरथवा वनदारुभिः।।

सोलह हाथ का चारों ओर से चैकोर मण्डप बनाना चाहिए। वह मण्डल याज्ञिक वृक्षों अथवा वन के वृक्षों द्वारा बनवाना चाहिए।

चतुद्र्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलंकृतम्।

हस्तैश्चतुर्भिस्तन्मध्ये कुण्डं कार्यं समन्ततः।।

चार दरवाजों से युक्त तोरण आदि के द्वारा सुशोभित चारों ओर से चार हाथों के मध्य में कुण्ड बनाना चाहिए।

खातं हस्तचतुर्भिश्च वप्रत्रयसमन्वितम्।

षडंगुलोन्नतस्त्वाद्यो द्वादशाङ्लविस्तृतः।।

चार हाथ प्रमाण से खात करे। जिसमें तीन ओर से मिट्टी की दीवार से युक्त करें। छः अंगुल ऊँचा तथा बारह अंगुल विस्तार बनावें।

दशाङ्लोन्नतो मध्यो ह्यष्टाङ्लसुविस्तृतः।

चतुर्दशाङ्लोत्सेधश्चतुरंगुलविस्तृतः।।

मध्य में दस अंगुल ऊँचा और आठ अंगुल विस्तृत करे और चैहद अंगुल चैकोर तथा चार अंगुल विस्तृत करें।

तृतीयवप्रः कत्र्तव्यो योनिश्चैका तु पश्चिमे।

चतुर्दशाङ्लैर्दीर्घा चोन्नता षोडशाङ्लैः।।

तीसरी दीवार बनावें। और पश्चिम दिशा में एक योनि का निर्माण करें। चैदह अंगुल दीर्घ तथा सोलह अंगुल उन्नति करें।

हीनाधिका न कर्तव्या विस्तारः षड्भिरंगुलैः।

कुण्डस्य लक्षणं त्वेकं कोटिहोमे तु सर्वदा।।

कम या अधिक की वेदी नहीं बनानी चाहिए। इसका विस्तार छः अंगुल का होना चाहिए। यही एक कुण्ड का लक्षण कहा गया है। इसमें सदैव कोटि हवन किया जा सकता है।

ईशान्यां वेदिका कार्या सार्द्धहस्तप्रमाणतः।

उन्नता विस्तृता कार्या प्रागुदक्प्रवणा शुभा।।

डेढ़ हाथ के प्रमाण से ईशान कोण में वेदी का निर्माण करना चाहिए। यह वेदी ऊँची और विस्तृत करना चाहिए तथा पूरब और उत्तर दिशा में ढाल शुभ कहा गया है।

सर्वदेवमयी त्वाद्या शिवपूजापुरःसरम्।
ग्रहांस्तानर्चयेत्तत्र पूर्वोक्तविधिना ततः।।

सर्वप्रथम सर्वदेवमयी इस वेदिका में भगवान शंकर की पूजा के सहित पूर्वोक्त विधि के द्वारा ग्रहों का वहां पूजन करना चाहिए।

पलाशसमिदाज्यान्नैर्मुखान्तेऽष्टशतं पृथक्।
अघोरमन्त्रेण ततो ग्रहहोमं च कारयेत्।।

पलाश की लकड़ी, घी, अन्न के द्वारा अन्त में आठ सौ अलग-अलग अघोर मन्त्र के द्वारा पुनः ग्रह हवन को करना चाहिए।

तिलहोमं व्याहृतिभिर्घृतोक्तं जुहुयात्ततः।
द्वारे हि जापकैः स्वस्ववेदपारायणं क्रमात्।।

पुनः व्याहृतियों के द्वारा तिल का हवन तथा पुनः घी से हवन करना चाहिए। क्रमशः प्रत्येक द्वार पर जप करने वालों के द्वारा जो अपने-अपने वेद में पारंगत हो उनके द्वारा।

चमकं नमकं सूक्तपुरुषोक्तांगजापकैः।
होमं नवभिराचार्यैः कार्यं तद्ब्रह्मणा सह।।

चमक, नमक द्वारा तथा पुरुष सूक्त द्वारा कहे गये अंग जापकों के साथ नौ आचार्यों द्वारा तथा ब्रह्म के सहित हवन करना चाहिए।

शिवविष्णोः कथालापैर्दिनशेषं नयेत्ततः।
एवं यावत्कोटिहोमस्तावत्कार्यमतन्द्रिभिः।।

भगवान शंकर एवं विष्णु के कथा के कहने-सुनने में शेष दिन को बिता देना चाहिए। इस प्रकार आलस्यरहित होकर कोटि हवन को पूर्ण करना चाहिए।

नैवेद्यान्ते ततः पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बन्धुभिः।।

नैवेद्य के अन्त में पुनः शान्ति वाचनपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करायें उसके पश्चात भाइयों के साथ स्वयं भी भोजन करें।

तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा लक्षहोममथापि वा।
काय्र्यं दोषानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः।।

उसका आधा अथवा उसका आधा अथवा लक्षहोम अर्थात् पचास लाख या पचीस लाख अथवा एक लाख दोष के अनुसार धन की कंजूसी न करता हुआ हवन कराना चाहिए।

होमान्ते दक्षिणां दद्याच्चतुर्विंशतिऋत्विजान्।
प्रतिद्विजमलंकारं सार्द्धनिष्कशतद्वयम्।।

हवन के अन्त में दक्षिणा देनी चाहिए। चैबीस ऋत्विजों को दक्षिणा देनी चाहिए। प्रत्येक ब्राह्मण को ढाई सौ निष्क तथा अलंकार से सम्मानित करें।

तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा दोषवित्तानुसारतः।
एवमेव यशःकामैर्नृपैः कुर्याच्च भक्तितः।।

उसका आधा अथवा उसका आधा अथवा दोष अथवा धन के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार यश की कामना करने वाले राजा के द्वारा भक्तिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।

ब्रीहिभिश्चायुरर्थी चेत्सर्वकामी तिलैश्च सः।
उक्ता साधारणा शान्तिरुत्पातानामतः परम्।।

आयु की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति को धान (चावल) से तथा सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति के

लिए तिल से हवन करना चाहिए। यहां तक साधारण शान्ति को कहकर इसके आगे उत्पात नाम से शान्ति को कह रहे हैं।

उत्पातश्चैव शान्तिश्च वक्ष्यतेऽत्र पृथक् पृथक्।
मन्त्रद्रव्यमनुष्ठानं भक्त्या कार्यमतन्द्रितैः।।

उत्पात और शान्ति कर्मों को अब यहां अलग-अलग कहेंगे। मन्त्र, द्रव्य तथा अनुष्ठान को आलस्यरहित होता हुआ भक्तिपूर्वक करना चाहिए।

अर्चाः प्रनृत्यन्ति पतन्ति यद्वा चलन्ति रोदन्ति हसन्ति यत्र।
पचन्ति जल्पन्ति च चेष्टयन्ति स्थानान्तरं वाप्यथवा व्रजन्ति।।

जहाँ मूर्तियां नाचने लगें, गिरने लगें, चलने लगें, रोने लगें, हंसने लगें, पचाने लगें, बकबक करने लगें, चेष्टा करने लगें, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगें।

वमन्ति धूमानलरक्ततोयं स्नेहं दधिक्षीरसुराक्षतादि।
अंगारकार्पासतुषास्थिरोमकबन्धपाषाणकरोदनादि।।

वमन करने लगें, धुँआ, आग, रक्त, जल, तेल, दही, दूध, सुरा का अक्षत आदि अंगार, कपास, भूसी, हड्डी, रोआ, धड़ तथा पत्थर आदि का तथा रोना आदि।

एवमाद्या विकारास्ते दृश्यन्ते प्रतिमासु च।
राज्ञां जनपदानां च नाशाय द्राग्भवन्ति हि।।

इस प्रकार से और भी जो विकार प्रतिमा आदि में दिखाई पड़ें वह सब राजा और जनपद के विनाश के लिए होते हैं।

ऋषिब्रह्मजं पितृजं द्विजानामेव वै कृतम्।
शिवोत्थं लोकपालोत्थं शिशूनां नृपतेश्च तत्।।

ऋषि ब्रह्म से उत्पन्न, पितरों से उत्पन्न अथवा ब्राह्मणों के द्वारा किए गए शंकरजी से उत्पन्न, लोकपालों से उत्पन्न, बच्चों अथवा राजा के लिए वह।

लोकानां विष्णुसम्भूतं ग्रहोत्थं तत्पुरोधसाम्।
स्कन्दोत्थं मण्डलीकानां विशाखोक्तं क्षमाभुजाम्।।

संसार के लिए विष्णु से उत्पन्न, ग्रह से उत्पन्न अथवा पुरोहित के लिए स्कन्द से उत्पन्न, मण्डली के लिए उत्पात विशाखा में कहे गये राजाओं को।

गणेशोत्थं च भूपस्य व्यासोक्तं तच्च भूपतेः।
अन्योत्थं यद्विकारं तल्लोकाभावाय सर्वदा।।

और गणेश से उत्पन्न राजा के लिए तथा व्यास के द्वारा कहा गया राजा का अन्य से उत्पन्न जो विकार है। वह हमेशा लोक भय के लिए होता है।

फलपाको भवेदष्टमासैस्तद्वत्सरेण वा।
उत्पातानामथैतेषां शान्तिं वक्ष्ये प्रयत्नतः।।

उत्पातों के फल का परिणाम आठ महीने में अथवा एक वर्ष में होता है। अतएव उन उत्पातों के शान्ति को प्रयत्नपूर्वक मैं कहूँगा।

दृष्ट्वा दैवविकारं तद्दिनत्रयमुपोषितः।
पुरोहितः शुद्धमनाः शुद्धभावो जितेन्द्रियः।।

दैव विकार को देखकर तीन दिन प्रयत्न उपवास करके शुद्ध मन, शुद्ध भाव से जितेन्द्रिय, पुरोहित के सहित।

चतुर्थदिवसे गत्वा दीपैः सार्द्धं शिवालयम्।
सहस्त्रकलशस्नानं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्।।

चैथे दिन जाकर शिवालय में दीपक के सहित सहस्त्र कलशों से संकल्पपूर्वक स्नान कराना चाहिए।

तल्लगमन्त्रैर्गन्धाद्यैर्वस्त्रैर्देवं समर्चयेत्।
घृतोपहारवित्तन्नैर्भक्त्या चैव समर्चयेत्।।

उस लिंग मन्त्र के द्वारा गन्ध, वस्त्र आदि से महादेव का पूजन करना चाहिए। घी के उपहार, धन, अन्न आदि के द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

ग्रहशान्त्यामुक्तकुण्डे स्थापयेश्च हुताशनम्।
पालाशसमिद्याज्यान्नैस्तल्लगैर्वेदमन्त्रकैः।।

ग्रह शान्ति, ऊपर कहे गये कुण्ड में अग्नि स्थापित करके पलाश, समिधा, घी, अन्न तथा लिंग वेद मन्त्रों के द्वारा।

अष्टोत्तरसहस्त्रं वा पृथगष्टोतरं शतम्।
तिलहोमादिकं सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत्।।

एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ तिल से हवन करे और शेष कर्म पूर्ववत करना चाहिए।

रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादिभिः सह।

आसप्तरात्रात्कृत्वैवमथवा पंचरात्रकम्।।

नाच-गाने आदि के साथ रात्रि में जागरण करे। यह सात रात्रि पर्यन्त अथवा पांच रात्रि पर्यन्त करके।

एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।
अनग्नौ दृश्यते ज्वाला काष्ठयुक्तो न दीप्यते।।

जो इस प्रकार से ठीक ढंग से अनुष्ठान करता है वह सभी दोषों से मुक्त हो जाता है। बिना अग्नि के ज्वाला तो दिखाई दे और काष्ठयुक्त अग्नि प्रज्वलित न हो।

सन्धुक्षतोपि नृपतेः पीडाजनपदस्य च।
यस्मिन्पुरे जनपदे धूमोऽनग्नौ महद्रजः।।

राजा को पीड़ा होती है और उस जनपद के निवासियों को कष्ट होता है। जिसके पुर (नगर) या जनपद में अग्नि के बिना धूम अथवा दिन में बहुत बड़ी धूल दिखाई दे।

दिवान्धकारो वृक्षाणां राजनाशो भवेत्तदा।
रात्रावदर्शन व्यभ्रे तेषामग्निश्च निष्प्रभः।।

दिन में वृक्षों का अन्धकारयुक्त हो जाना तथा रात्रि के समय में बादल के बिना नक्षत्रों का अदर्शन और अग्नि का कान्तिरहित होना राजा का नाश करता है।

तदधीशस्य राष्टस्य दुःखशोकभयप्रदः।

शयनासनवस्त्राणां पादुकेभ्यो नृगात्रतः।।

उस स्थान का अधिपति अर्थात् राजा (राष्ट्राध्यक्ष) को दुःख, शोक एवं भय देता है। शयनाशन (चारपाई), वस्त्र तथा जूते आदि में मनुष्यों के शरीर से जलन उत्पन्न हो।

महिषोष्टाश्वगोहस्तिपशुकेशेषु गात्रतः।

धूमाग्निविस्फुलिंगा वा दृश्यन्ते च जलादिषु।।

भैसा, ऊँट, घोड़ा, गाय, हाथी, अन्य पशु के बालों में तथा शरीर में धुँआ अग्नि आदि के चिंगारी दिखाई पड़ें अथवा जल आदि में।

राजराष्ट्रविनाशः स्याच्छत्रुतोऽग्नेर्भयं भवेत्।

आयुधानि प्रज्वलन्ति कोशेभ्यो निर्गतानि च।।

राजा और राष्ट्र का विनाश होता है अथवा शत्रु से अग्नि का भय होता है। जब अस्त्र-शस्त्र चलते हुए दिखाई पड़ें अथवा अपने म्यान से स्वयं निकल जायें।

वेपमानानि यदि वा जल्पन्त्यथ रुदन्ति वा।

हसन्ति तुमुलं युद्धमत्यन्तनिकटं वदेत्।।

यदि अस्त्र-शस्त्र में कम्पन हो अथवा बकबक करे, रोने लगे, हंसने लगे, तो बहुत जल्दी घनघोर युद्ध होने वाला है। ऐसा कहना चाहिए।

उत्पातानामथोक्तानां शान्तिं वक्ष्ये विधानतः।

रुद्राभिषेकं रुद्रेण नैवेद्यान्तं प्रपूजयेत्।।

ऊपर कहे गये उत्पातों का विधानपूर्वक शान्ति कह रहा हूँ। शंकरजी का रुद्राभिषेक करके नैवेद्य अर्पित करके अन्त में विशेष रूप से पूजन करना चाहिए।

पूर्वोक्तलक्षणे कुण्डे स्थापयेच्च हुताशनम्।

मुखान्ते जुहुयादग्निं मन्त्रैरष्टसहस्त्रकम्।।

पहले कहे गये लक्षण वाले कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके मुखान्त में अग्नि में आठ हजार मन्त्रों के द्वारा आहुति देनी चाहिए।

क्षीरवृक्षसमिश्च सर्षपैश्च पृथक् पृथक्।

तिलहोमं व्याहृतिभिर्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।।

दूध वालें वृक्षों की समिधा से, तथा अलग-अलग सरसों से या तिल से व्याहृतियों के द्वारा होम करके पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

एवं यः कुरुते भक्त्या तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः।।

जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करता है वह इस दोष से मुक्त हो जाता है। ऋत्विजों को धन की कंजूसी छोड़कर दक्षिणा देनी चाहिए।

एकरात्रं त्रिरात्रं वा शेषं पूर्ववदाचरेत्।
अकस्मादेव वृक्षाणां शाखाभंगो भवेद्यदि।।

एक रात्रि या तीन रात्रि पर्यन्त शेष कर्मों को पूर्ववत करना चाहिए। अकस्मात् यदि वृक्षों की शाखा टूट जाये।

राष्ट्रभंग वदेच्छीघ्रं हसन्ते देशनाशनम्।
रुदितो व्याधितो भीतिः कम्पने ग्रामकम्पनम्।।

तो शीघ्र ही राष्ट्र का भंग कहना चाहिए। हंसने पर देश का नाश, रोने पर व्याधि का भय, तथा काँपने पर ग्राम का काँपना जानना चाहिए।

विस्फुलिंगेऽथवा धूमे ज्वलिते वह्नितो भयम्।

फलपुष्पोमे काले वृक्षाणं यदि शीघ्रतः।।

अग्नि के जलने पर चिंगारी अथवा धुँआ दिखाई दें तो अग्नि से भय होता है। यदि वृक्षों में फल या पुष्प निकलने के समय यह स्थिति दिखाई दें तो शीघ्र ही।

राष्ट्रविद्रावणं बालवृक्षेषु कुसुमेऽथवा।
शिशुहानिर्भवेत्क्षीरस्त्रवणे द्रव्यनाशनम्।।

राष्ट्र का विनाश होता है। बालवृक्ष अर्थात् पौधों में फूल निकला दिखाई दे तो बच्चों की हानि होती है। यदि दूध स्रवित हो रहा हो तो द्रव्य अर्थात् धन का विनाश होता है।

मद्ये वाहननाशः स्याच्छोणिते युद्धमादिशेत्।
स्नेहस्त्रावेऽनर्घभयं जलस्त्रावे महöयम्।।

मदिरा बह रही हो तो वाहन का नाश, यदि रक्त निकल रहा हो तो युद्ध होगा ऐसा कहना चाहिए। तेल के स्रवित होने पर महंगाई का भय जबकि जल के स्रवित होने पर बहुत बड़ा भय होता है।

क्षौद्रद्रावो भवेद्यत्र रोगशोकभयं भवेत्।
शुष्कवृक्षे चांकुरिते वृक्षहानिस्त्वनर्घता।।

छोटा घाव यदि दिखाई पड़ें तो रोग, शोक एवं भय जानना चाहिए। यदि सूखा वृक्ष अंकुरित हो गया हो तो वृक्ष की हानि अथवा महंगाई जाननी चाहिए।

अकस्माच्छोषिते वृक्षे तदेव फलमिष्यते।
पतिते स्वयमस्थाने भयं देवकृतं भवेत्।।

अकस्मात् वृक्ष के सूख जाने पर भी उसमें फल दिखाई पड़े अथवा बिना स्थान के स्वयं गिर पड़े तो देवकृत भय होता है।

जल्पने चलने वृक्षे राजराष्ट्रविनाशनम्।
कृत्वाभिषेकं वृक्षस्य यावच्छक्यं प्रयत्नतः।।

वृक्षों के जल्प (गप्प) करने पर या चलने पर राजा या राष्ट्र का विनाश हो जाता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक यथासम्भव वृक्षों का अभिषेक करना चाहिए।

अर्चयेद्गन्धपुष्पस्त्रग्वस्त्रच्छत्रोपहारकैः।
तत्पश्चादष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मण्डपम्।।

गन्ध, फूल, माला, वस्त्र, छाता तथा उपहार के द्वारा पूजन करना चाहिए। उसके बाद आठ हाथों से अथवा चार हाथों के प्रमाण से मण्डल का निर्माण करना चाहिए।

कृत्वाथ कुण्डं तन्मध्ये सम्यक्तत्पूर्ववत्ततः।
द्वादशकृत्वो नमकं चमकं च भवेदितः।।

उसके मध्य में कुण्ड बनाकर पूर्व की भाँति ठीक ढंग से बारह बार नमक और चमक से रूद्राभिषेक करना चाहिए।

पेटिकायां वस्त्रहानिस्तरुपीठे रिपोर्भयम्।
गृहोपकरणे स्थाने क्षिप्रं तस्करतो भयम्।।

पेटिका (बक्शे) में होने से वस्त्र की हानि, तरूपीठ में होने पर शत्रु का भय, घर के सामग्री में या स्थान में होने पर शीघ्र ही चोर का भय होता है।

शाकिन्यारामखलपूसस्यक्षेत्रे फलक्षयः।
पुरीषमन्दिरे गोष्ठे वृषचिकित्सारुजां भवेत्।।

शाकनी अर्थात् शाक वाले खेत में, बगीचे में, खलिहान में तथा फसल या धान वाले खेत में होने पर फल का नाश हो जाता है। शौचालय में या गाय के स्थान में अथवा बैल के स्थान में होने से

रोग उत्पन्न होता है।

तुल्यस्थानानि सर्वेषामुक्तराज्ञां च कथ्यते।
शिथिलीजायते यत्र ग्रामे जनपदे पुरे।।

सभी समान स्थानों में राजाओं के लिए कहा गया है। शिथिली जिस गाँव जनपद या नगर में उत्पन्न होती हैं।

चैत्ये देवालये सेतौ विपिने पर्वतेषु च।
नदीतीरे जले चाथ क्षुद्रदेवगृहेषु च।।

चैत्य (धर्मशाला), देवालय (मन्दिर), पुल, जंगल, पर्वत, नदी के किनारे अथवा जल अथवा छोटे देवताओं के घर में शिथिली होने पर।

अश्वालये गजर्गहे खरोष्टमृगपक्षिणाम्।
विद्यालये शस्त्रगृहे राज्योपकरणालये।।

घुड़साल में, हाथी के स्थान में, गदहा, ऊँट, मृग तथा पक्षियों के स्थान में, विद्यालय, शस्त्रागार में तथा राजा के राज्य की सामग्रियों के स्थान में।

दासीदासगृहाद्येषु तत्त्द्वर्गविनाशनम्।
साधारणेन शान्त्यैव एते दोषा लयं ययुः।
तस्माच्छान्तिश्च कर्तव्या द्विजभोजनपूर्वकम्।।

नौकर चाकरों के घरों में होने पर उन-उन वर्गों का विनाश करता है। इस स्थानों में होने पर साधारण शान्ति के द्वारा ये सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। इसलिए शान्ति ब्राह्मण भोजनपूर्वक करनी चाहिए।

कुड्यांगे मस्तकांद्यंगे पतिते फलमुच्यते।
मस्तके राज्यनाशः स्याले कर्णे च भूषणम्।।

कुड्य अंग में, मस्तकादि के अंग पर गिरने से फल कहा जा रहा है। मस्तक पर गिरने से राज्य का नाश, ललाट तथा कान पर गिरने से आभूषण की प्राप्ति होती है।

वक्षःस्थले तु सौभाग्यं हृदि प्रीतिविवर्द्धनम्।
पुत्रलाभस्तु कुक्षौ स्यान्नाभौ कीर्तिविवर्द्धनम्।।

वक्षस्थल (छाती) पर गिरने से सौभाग्य की प्राप्ति, हृदय में गिरने पर आपस (पति-पत्नी) में प्रेम की वृद्धि, कोख पर गिरने से पुत्र का लाभ तथा नाभि पर गिरने से यश की वृद्धि होती है।

नेत्रयोर्मित्रलाभः स्यात्सुगन्धं नासिकोपरि।।

वक्त्रे तु भोजनं कण्ठे स्त्रीलाभः स्कन्धयोर्जयः।।

दोनों नेत्रों पर गिरने से मित्र का लाभ, नासिका पर गिरने से सुगन्ध की प्राप्ति, मुख पर गिरने से भोजन की प्राप्ति, कण्ठ में स्त्री का लाभ तथा दोनों कन्धों पर गिरने से जय की प्राप्ति होती है।

हस्ते तेजोविवृद्धिः स्यादर्थवृद्धिः करद्वयोः।
अर्थलाभस्तु पृष्ठे स्यात्पाश्र्वयोः सुहृदागमः।।

हाथ में गिरने पर तेज की वृद्धि, दोनों हाथों में होने से धन की वृद्धि, पीठ पर गिरने से अर्थ का लाभ तथा पाश्र्व (बगल) भाग में गिरने से मित्र का आगमन होता है।

देवता यत्र नृत्यंति पतंति प्रज्वलन्ति च।
मुहू रुदन्ति गायन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च।।
वमन्त्यग्नि तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयोजलम्।
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति च।।
एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमासु च।

अब यहाँ कुछ आश्चर्य पूर्ण उत्पातों का वर्णन करते हुए आपके ज्ञान के लिए उनका फल कहते हैं।

जहाँ पर देवता (मूर्तियाँ) नाचते हैं। गिरते हैं और जलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वार-वार रोते हैं। गाते हैं तथा उनसे स्वेदबिन्दु (पसीना) निकलता है और हंसते हैं। तथा उनके मुख से अग्नि, धुआँ, तेल, रुधिर, दूध या जल गिरता है। वे अधोमुख दृष्टिगोचर होते हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। इत्यादिक विकार जब स्थापित मूर्तियों में दृष्टिगोचर हो तो यह आपत्ति सूचक होता है अतः इसकी शान्ति करें।

गन्धर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम्।।
महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम्।
गन्धर्वगेहे दिग्धूमं भूमिकम्पं दिवानिशि।।

आकाश में (गन्धर्व नगर) सुन्दर सुन्दर नगरों का दिखलाई पड़ना, दिन में तारों का दिखाई देना, उल्कापात (तारे टूटना) लकड़ी, तृण तथा खून की वृष्टि होना। आकाश में तथा दिशाओं में अकारण धूम दिखाई पड़ना। भूकम्प होना ये अशुभ सूचक हैं।

अनग्नौ च स्फुलिंगाश्च ज्वलनं च विनेन्धनम्।
निशीन्द्रचापमण्डूकशिखरं श्वेतवायसः।।

विना अग्नि के स्फुलिंग (चिनगारी), बिना ईन्धन की ज्वाला, रात्रि में इन्द्रधनुष

मेढक की चोटी, और सफेद काग का दिखाई पड़ना अमंगल सूचक होता है।

दृश्यन्ते विस्फुलिंगाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः।
जंतवो द्वित्रिशिरसो जायन्ते वा वियोनिषु।।

अन्वयः- गो, गज, अश्व, उष्ट्र, गात्रतः विस्फुलिंगाश्च दृश्यन्ते। द्वित्रि शिरसः जंतवः दृश्यन्ते वा वियोनिषु जायन्ते।

गाय, हाथी, घोड़े और ऊँट आदि जानवरों केर शरीर से चिनगारी निकलते देखा जायेगा दो तीन शिर वाले पशु दिखाई दे अथवा दूसरी योनि से दूसरा जीव (गाय से घोड़े आदि) उत्पन्न हों तो यह अमंगल सूचक होता है।

प्रतिसूर्याश्फचसृषुस्युर्दिक्षु युगपद्रवेः।
जम्बूकग्रामसंवासः केतूनां च प्रदर्शन्।।

अन्वयः-प्रतिसूर्याः, चतसृषु दिक्षु युगपदेव रवेः दर्शनम्। जंवूक ग्रामसंवासः, केतूनां प्रदर्शनम् च (अमंगलम्)।

दो सूर्य का दिखाई देना या एक साथ चारों दिशाओं में सूर्य का दर्शन होना। गाँव के अन्दर श्रृगाल का छिपना तथा पुच्छल तारों का दिखाई देना अमंगल सूचक है।

काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि।
अकाले पुष्पिता, वृक्षा दृश्यन्ते फलिता यदि।।
कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शान्तिर्मनीषिभिः।
एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः।।

अन्वयः-यदि रात्रौ काकानां, दिवा कपोतानां च आकुलं। वृक्षा अकाले पुष्पिता वा यदि फलिता दृश्यन्ते। तदा तत्र तच्छेदनं कार्यम् ततः मनीषिभिः शान्तिः कत्तव्याः। एवम् आद्या वहवः महोत्पाता स्थान नाशदाः दृश्यन्ते।

दिन में कबूतरों का और रात्रि में कौओं का व्याकुल होना भी अशुभ सूचक होता है। यदि असमय में बिना ऋतु के वृक्ष फूले या फले तो बुद्धिमान को चाहिए कि तुरन्त उसे काट कर उपद्रव................

नारद संहिता में कथित -

गन्धर्व नगर का लक्षण -

गन्धर्वनगरं दिक्षु दृश्यतेऽनिष्टदं क्रमात्।

भूभुजां वा चमूनाथसेनापतिपुरोधसाम्।।

अन्वयः- दिक्षु गन्धर्व नगरं यदा दृश्यते तदा भूभुजां, चमूनाथ, सेनापति वा पुरोधसां कमात् अनिष्टदं भवति।

पूर्वादि दिशाओं में यदि गन्धर्वनगर दृष्टिगोचर हो तो राजा, सेनापति, मन्त्री और राज पुरोहित का क्रमशः अनष्टि होता है।।1।।

सित, रक्त, पीत कृष्णं विश्रादीनामनिष्टदम्।
रात्रौ गन्धर्वनगरं धराधीशविनाशनम्।।

अन्वयः-सित, रक्त, पीत, कृष्ण (कमात्) विप्रादीनां (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्राणां) अनिष्टदम् रात्रौ (यदा) गन्धर्वनगरं (दृश्यते) तदा धराधीश विनाशनं भवति।

सफेद, लाल, पीला और काले वर्णवाला गन्धर्वनगर क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रवर्ण के लिए अनिष्ट सूचक होता है। यदि गन्धर्वनगर रात्रि में देखा जाय तब राजा का विनाश होता है।

इन्द्रचापाग्निधूमाभं सर्वेषामशुभप्रदम्।
चित्रवर्णं चित्ररूपं प्राकारध्वजतोरणम्।।
दृश्यते चेन्महायुद्धमन्योन्यं धरणीभुजाम्।।

अन्वयः- इन्द्रचाप, अग्नि, धूमाभं सर्वेषां अशुभप्रदम् भवति। चित्रवर्ण चित्ररूपं प्राकारध्वजतोरणम्। चेत् दृश्यते तदा धरणीभुजाम् अन्योन्यं युद्धं भवेत्।

इन्द्रचाप, अग्नि अथवा धूम की तरह यदि गन्धर्वनगर दिखाई दे तो सभी के लिए अनिष्ट सूचक होता है। चित्रवर्ण, चित्ररूप, किला, ध्वज या तोरण के आकार में दिखाई देने पर राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।

प्रतिसूर्यलक्षण -

प्रतिसूर्यनिभः स्निग्धः सूर्यः पाश्वे शुभप्रदः।
वैडूर्यसदृशस्वच्छः शुक्रोलवाऽपि सुभिक्षकृत्।।

अन्वयः-प्रतिसूर्यनिभः स्निग्धः सूर्यः पाश्वे शुभप्रदः भवति। वैडूर्य-सदृशः स्वच्छः अपि च, शुक्लो वा तदा सुभिक्षकृत् भवति।

कभी-कभी बादलों और सूर्यकिरणों के सांघातिक योग से सूर्य का दूसरा बिम्ब भी दृष्टिगोचर हो जाता है उसका दर्शन अनिष्ट सूचक होता है। उसका फल बतलाते हुए भगवान नारद जी

कहते हैं कि यदि स्निग्ध वर्ण का विकार रहित प्रतिसूर्य आगे-पीछे (पाश्र्व में) दिखलाई पड़े तो शुभ होता है।

पीताभो व्याधिदः कृष्णो मृत्युदो युद्धदारुणः।
माला चेत्प्रतिसूर्याणां शश्वत् चैर भयप्रदा।।

अन्वयः- पीताभः व्याधिदः, कृष्णः मृत्युदः युद्धदारुणः, प्रति-सूर्याणां माला (दृश्यते) चेत् तर्हि शश्वत् चैर भयप्रदा भवति।

पीला प्रतिसूर्य रोग देने वाला तथा काले वर्ण का प्रति सूर्य मृत्युकारक एवं दारुण युद्धकारक होता है। यदि प्रतिसूर्यो की माला दृष्टिगोचर हो तो निरन्तर चोरों का भय होता है।

1. प्रति सूर्यः द्वितीय सूर्यः (कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है कि दो सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इसे भ्रम कहा जाय या अन्य जो भी नामकरण किया जाय पर ऐसी स्थिति आती अवश्य है। इसे समझने के लिए अपनी एक आँख बन्द करके दूसरी आँख के ऊपर या नीचे के पलकों को थोड़ा हल्का दबाने से स्पष्ट ही ग्रह दो दिखाई पड़ने लगता है। इस तरह बादलों और सूर्य रश्मियों के पारस्परिक संघात से भी स्थिति पैदा होती है और सूर्य का दो बिम्ब परस्पर दृष्टिगोचर होने लगता है।

2. **वराहमिहिर भी कहते है -**

पीतो व्याधिं जनयत्य शोकरूपश्च शस्त्रकोपाय।
प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातंकनृपहन्त्रो।।

नारदसंहिता के अनुसार भूकम्प लक्षण -

भूभारखिन्ननागेन्द्रदीर्घनिःश्वाससम्भवः।
भूकम्पः सोऽपि जगतामशुभाय भवेत्तदा।।

अन्वयः- भूभारखिन्ननागेन्द्र दीर्घनिःश्वाससम्भवः भूकम्पः सोऽपि तदा जगताम् अशुभाय भवेत्। (जगताम् भूकम्पः अशुभं भवति) इति।

भूमि के भार से थक कर जब भगवान शेषनाग निःश्वास करते हैं तो भूकम्प होता है।

उक्त धारणा पुराणों के कथानकों से बनती है। किन्तु यह सर्वविदित है कि रासायनिक विविध प्रतिक्रियायें भूमिगर्भ में होती रहती है जिनके परिणामस्वरूप विविध खनिज पदार्थ हमें

उपलब्ध होते हैं। और जब कभी रासायनिक प्रतिक्रियाओं में विकृति आती है तो भूमि की उष्मा भूमि के परतों को तोड़ कर बाहर निकलती है और उसे हम ज्वालामुखी के नाम से पुकारते हैं जिसके कारण भूकम्प होता है।

यामक्रमेण भूकम्पो द्विजातीनामनिष्टदः।
अनिष्टदो क्षितीशानां सन्ध्ययोरुभयोरपि।।

अन्वयः-द्विजातीनां यामकमेण भूकम्पः इष्टदो भवति, उभयोऽपि संध्ययोः क्षितीशानाम् अनिष्टदो भवति।

याम कम से ब्राह्मणादि वर्णो के लिए भूकम्प अशुभ फलदायक होता है। जैसे-प्रथम पहर में ब्राह्मणों को, द्वितीय में क्षत्रियों को, तृतीय में वैश्यों को और चैथे पहर में शूद्रों को अशुभ फलदायक भूकम्प होता है। यदि दोनों सन्धियों में भूकम्प हो तो राजाओं को कष्ट होता है।

अर्यमाद्यानिचत्वारि दस्त्रेन्द्वदिति भानि च।
वायव्यमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पो भवेद्यदि।।
नृपसस्य-वणिग्वेश्याशिल्पवृष्टिविनाशदः।

अन्वयः-अर्यमा आद्यानि चत्वारि दस्त्र, इन्दु, अदिति भानि च वायव्यमण्डलं भवति एतस्मिन्भूकम्पौ यदिभवेत् तदा नृप-सस्य-वणिक्-वेश्या, शिल्प, वृष्टि विनाशदो भवति।

उत्तराफाल्गुनी से चार नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती) अश्विनी, मृगशिर्ष और पुनर्वसु इन नक्षत्रों को 'वायव्यमण्डल' कहते हैं। वायव्यमण्डल में भूकम्प होने से, राजा, धान्य, व्यापारी, वेश्या, शिल्पज्ञ और वर्षा का विनाश होता है।

पुष्यद्विदैवभरणी पितृभाग्यानलाऽजपात्।।
आग्नेयमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पोभवेद्यदि।
नृपवृष्ट्यर्घनाशाय हन्ति शाम्बरटंकणान्।।

अन्वयः-पुष्य, द्विदैव, भरणी, पितृ, भाग्य, अनल, अजपात् आग्नेयमण्डलं एतस्मिन्यदि कम्पो भवेत् तदा नृप, वृष्टि, अर्घनाशाय भवति तथा शांवर (शाम्भर) टकणान् अपि हन्ति।

पुष्य, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपदा ये नक्षत्र 'अग्निमंडल' में आते हैं। इनमें भूकंप होने से राजा का विनाश, अवर्षण, महँगाई रहे तथा शांभर नमक और सुहागा इत्यादि वस्तु महँगा रहे।

अभिजिद्धातृ-वैश्वेन्द्रवसुवैष्णवमैत्रभम्।
वासवं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद्यदि।।
राजनाशाय कोपाय हन्ति माहेयदर्दुरान्।

अन्वयः-अभिजित्, धातृ, वैश्व, इन्द्र, वसु, वैष्णव, मैत्रभम् एते वासवमंडलसंज्ञकः एतस्मिन् यदि कंपो भवेत् तदा राजनाशाय, कोपाय च भवति, माहेय दर्दुरान् च हन्ति।

अभिजित्, रोहिणी, उत्तराषाढ़, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, और अनुराधा ये नक्षत्र 'वासवमंडल' के हैं। इनमें भूमिकंप होने से राजा का नाश हो तथा राजाओं में परस्पर वैर बढ़े, माहेय तथा दर्दुर देश का नाश होता है।

मूलाहिर्बुध्न्यवरुणाः पौष्णमाद्र्राहिभानि च।।
वारुणं मण्डलं त्वेतदस्मिन् कम्पो भवेद्यदि।
राजनाशकरोहन्ति पौण्ड्रचीनपुलिन्दकान्।।

अन्वयः- मूल, अहिर्बुध्न्य, वरुण, पौष्णम, आद्र्रा, अहिभानि च एते वारुणमण्डलं, एतस्मिन् यदि कम्पो भवेत् तदा राजनाशकरः पौण्ड्र, चीन पुलिन्दकान् च हन्ति।

मूल, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा, रेवती, आर्द्रा और आश्लेषा ये नक्षत्र 'वरूणमण्डल' के हैं। इनमें भूकंप होने से राजा का नाश होता है तथा पौण्ड्र, चीन और पुलिन्द देशों का नाश होता है।

प्रायेण निखिलोत्पाताः क्षितीशानामनिष्टदाः।
षड्भिर्मासैश्च भूकंपो द्वाम्यां दाहफलप्रदः।।
अनुक्तः पंचभिर्मासैस्तदानीं फलदं रजः।।

अन्वयः-प्रायेण निखिलोत्पाताः अनिष्टदा भवन्ति। षड्भिः मासैश्च भूकम्पः फलं भवति द्वाम्यां मासाभ्यां दाह फलप्रदो भवति।। पंचभिः मासैः अनुक्तं रजः उत्पातानां च फलं भवति।

प्रायः सभी उत्पात विशेषकर राजाओं को अशुभ कहा गया है। भूकंप का फल 6 महीने में होता है और दो महीने में दिग्दाह का फल होता है। रज तथा अन्य उत्पात का फल पाँच महीने में प्राप्त होता है।

बोध प्रश्न -

1. प्रकृति के बदलने पर कौन सा उत्पात उत्पन्न होता है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.सभी

2. ग्रहनक्षत्रों से उत्पन्न उत्पात को क्या कहते है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.कोई नहीं

3. अश्व एवं ऊँट से उत्पन्न उत्पात किस श्रेणी में आता है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.आपदा

4. पृथ्वी से सम्बन्धित उत्पात कौन सा है।

क. दिव्य ख. भौम ग.अन्तरिक्ष घ.सभी

5. निम्न में वरूण मण्डल के नक्षत्र है।

क. अश्विनी ख. उ0फा0 ग. रेवती घ. कोई नहीं

6. भूकम्प का फल कितने मास में मिलता है।

क.४ ख.५ ग. ८ घ. ६

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि प्राकृतिक आपदा से तात्पर्य है- प्रकृतिजन्य आपदा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जिन आपदाओं का सम्बन्ध सीधे-सीधे प्रकृति से जुड़ा हो, उसे प्राकृतिक आपदा कहेंगे। इसका क्षेत्र भी प्रकृति के तरह ही अतिवृहत् है। सम्प्रति इसे 'डिजास्टर' के नाम से जाना जाता है। आपदा-प्रबन्धन के नाम से इसका अध्ययन-अध्यापन भी कराया जाता है। इसके अन्तर्गत भूकम्प, बाढ़, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, पर्यावरण सम्बन्धित समस्यायें, उल्कापातादि, धूमकेतु, वृक्षों से सम्बन्धित, राष्ट्र एवं विश्व से सम्बन्धित नाना प्रकार की आपदायें आदि इत्यादि विषय आते हैं। संहिता ज्योतिष में उक्त सभी विषयों को मुख्यत: तीन उत्पात - दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्ष उत्पातों में विभक्त किया है। आपदाओं के बारे में आचार्य वशिष्ठ स्वग्रन्थ 'वशिष्ठ संहिता' में बताते हुए कहते हैं कि - प्रकृति का अन्यत्व अर्थात् विपरीत होने की उत्पात संज्ञा कही गयी है। प्रकृति के बदलने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य, ये तीन प्रकार के उत्पात होते हैं। मनुष्यों में जब विनम्रता नहीं रहती, पाप करने लगते हैं। और जब पाप बहुत बढ़ जाता है तो इससे प्रकृति में उपद्रव होने लगता है, इसी उपद्रव को आचार्यों ने उत्पात संज्ञा दी है। अधर्म से, असत्य से, नास्तिकता से, अति लोभ से, मनुष्यों के अनाचार से, नित्य ही उपद्रव उत्पन्न होते हैं। उस उपद्रव वश तीन प्रकार के शोक और दुःख देने वाले उत्पात उत्पन्न होते हैं। दिव्य,

अन्तरिक्ष एवं भूमिजन्य भयंकर रूप वाले विकार कहे गये हैं।ग्रह नक्षत्रों से उत्पन्न और केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक कहे गये हैं। अर्थात् सूर्य आदि ग्रह और अश्विनी आदि नक्षत्रों के विकारयुक्त होने से जो उत्पात होता है, उसे दिव्य संज्ञा दी गयी है। निर्घात, परिवेश, उल्का, इन्द्रधनुष और ध्वज। लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व, कबन्ध तथा परिघ आदि से उत्पन्न हुए बड़े उत्पातों को अन्तरिक्ष उत्पात कहा जाता है। पृथ्वी के चलायमान होने से अथवा चर वस्तु के स्थिर एवं स्थिर वस्तु के चलायमान होने पर उसके एक भाग को भूमि सम्बन्धी उत्पात की संज्ञा दी गयी है। भौम उत्पात तुच्छ अर्थात् स्वल्प फल देने वाले होते हैं। जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देते हैं। किन्तु दिव्य उत्पात सम्पूर्ण फल देते हैं। वह तीन महीने, छः महीने अथवा एक वर्ष में अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

प्राकृतिक – प्रकृति से जुड़ा

अतिवृष्टि - अत्यधिक वर्षा

भूकम्प – पृथ्वी का कम्पन

अनावृष्टि – अत्यल्प वर्षा

दिशा – प्राच्यादि १० दिशायें होती है।

दिव्य – प्रधान तीन उत्पातों में से एक

अन्तरिक्ष – प्रधान तीन उत्पातों में एक

भौम - प्रधान तीन उत्पातों में एक

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. क
3. ग
4. ख
5. ग
6. घ

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वशिष्ठ संहिता – महात्मा वशिष्ठ, टीककार – प्रोफेसर गिरिजाशंकर शास्त्री

2. वृहत्संहिता – टीकाकार – पं. अच्युतानन्द झा

3. नारदसंहिता – टीकाकार – पं. राजजन्म मिश्र

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. नारद संहिता
2. भृगु संहिता
3. वृहत्संहिता

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक आपदा से आप क्या समझते है?
2. दिव्य उत्पात का वर्णन कीजिये।
3. वशिष्ठ संहिता के अनुसार भौमोत्पात का उल्लेख कीजिये।
4. अन्तरिक्ष उत्पात का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. नारद संहिता के अनुसार भूकम्प का लक्षण लिखिये।

इकाई - ५ दकार्गल विचार

इकाई की संरचना

५.१. प्रस्तावना

५.२. उद्देश्य

५.३. दकार्गल परिचय

५.४. दकार्गल विचार

५.५. सारांश

५.६. पारिभाषिक शब्दावली

५.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

५.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

५.९. सहायक पाठ्य सामग्री

५.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

५.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – दकार्गल विचार। इससे पूर्व आप सभी ने प्राकृतिक आपदाओं का अध्ययन कर लिया है। अब आप दकार्गल का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

दकार्गल किसे कहते है? उसके अन्तर्गत कौन-कौन से विषयों का समावेश है? उसका स्वरूप एवं महत्व क्या है ? इन सभी प्रश्नों का समाधान आप इस इकाई के अध्ययन से प्राप्त कर सकेंगे।

आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े दकार्गल से सम्बन्धित विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

५.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि दकार्गल किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे दकार्गल विधि क्या है।
- दकार्गल के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- दकार्गल के विभिन्न प्रकारों को जान लेंगे।
- दकार्गल की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

५.३. दकार्गल परिचय

संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत दकार्गल अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं चराचर जगत् से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। दकार्गल का सामान्य अर्थ है – भूमिगत जल। यद्यपि यह एक परीक्षण जन्य ज्ञान है कि भूमि पर कहाँ, कितना और कैसा जल मिलेगा? यह परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कथित दकार्गल ज्ञान से प्राप्त करना सम्भव है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता में दकार्गल के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय का ही प्रतिपादन किया है। अत: आइए हम सभी उसका ज्ञान प्राप्त करते है।

आचार्य वराहमिहिर ने सर्वप्रथम दकार्गल का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि -

दकार्गल का प्रयोजन-

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धि।
पुंसां यथाङेगषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्था।।
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषांघ।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेङ्ग।।

जिसका ज्ञान होने पर भूमिगत ज्ञान प्राप्त होता है, उस धर्म और यश को देने वाले 'दकार्गल' को कहते हैं। मनुष्यों के अंग में नाड़ियाँ होती हैं, उसी तरह भूमि में भी ऊँची-नीची शिरा आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है; किन्तु वही जल विशेषता से तत्तत् स्थानों में अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला हो, जल की तरह भूमि के वर्ण और रस के समान ही जल के भी रस और वर्ण सिद्ध होती है। भूमि, वर्ण और रस का परीक्षण-पूर्वक जल के रस और स्वाद का परीक्षाण् चाहिये।

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टमिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम्।।

भूमिगत जल ज्ञान के लिए हमें शिराओं का ज्ञान होना परमावश्यक है। अत: पहले शिराओं का समझते हैं।

शिराओं के नाम -

पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशंङकरा देवाः।
विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः।
दिक्पतिसंज्ञा च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी।
एताभ्योऽन्याः शतशो विनिः सृता नामभिः प्रथिताः।।
पातालादूध्र्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च।
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये।

पूर्व आदि आठ दिशाओं के क्रम से इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी होते हैं। इन आठ दिक्पतियों के नाम से आठ (ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि) ही शिरायें भी प्रसिद्ध हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नाम वाली नवमी शिरा है। इन नव शिराओं के अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों शिरायें निकली हैं, जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं। पाताल से ऊपर की

तरफ जो शिरा निकली है, वह और पूर्व आदि चारों दिशाओं में स्थित शिरायें शुभ तथा अग्निकोण आदि विदिशाओं में स्थित शिरायें अशुभ होती हैं। अतः इसके बाद शिराओं के लक्षण कहते हैं।

शिरा ज्ञान -

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र।।
चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरोऽथ मृत् पीता।
पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः।।

यदि जलरहित देश में वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। भुजा ऊपर की तरफ खड़ी करने से पुरुष की जितनी लम्बाई हो, वह एक पुरुषप्रमाण (120 अंगुल) यहाँ पर ग्रहण कर इस खात में पश्चिमा शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय कुछ चिन्ह जैसे-आधा पुरुषप्रमाणतुल्य खोदने पर पाण्डु वर्ण का मेढ़क, उसके नीचे पत्थर और पत्थर के नीचे जल मिलता है।

निर्जले वेतसं दृष्ट्वा तस्माद्वृक्षादपि त्रयम्।
पश्चिमायां दिशि ज्ञेयमधः सार्धेन वै जलम्।।
नरोऽत्र षष्टिद्विगुणा चांगुलानां प्रकीर्तितः।
तत्र खात्वाऽर्धपुरुषं भेकः पाण्डुरवर्णकः।।
मृत् पीता पुटभेदश्च पाषाणोऽधस्ततो जलम्।
शिरा पश्चिमदिक्स्थात्र वहतीति विनिर्दिशेत्।।

अन्य कथन

जम्ब्वाश्चोदग्घस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा।
मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः।।

यदि जलरहित देश में जामुन का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तर दिशा पुरुषतुल्य नीचे पूर्व शिरा होती है। वहाँ पर भी खोदने के समय में कुछ चिन्ह निम्नलिखित हैं; जैसे-एक पुरुषप्रमाणतुल्य नीचे लोहे के समान गन्ध वाली मिट्टी उसके कुछ सफेद मिट्टी और उसके नीचे मेढ़क निकलता है।

अन्य कथन

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत् समीपस्थः।
तस्माद्दक्षिणपाश्र्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु।।

अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः।

मृवति चात्र नीला दीर्घं कालं च बहु तोयम्।।

जामुन के वृक्ष से पूर्व की तरफ समीप में ही बाँबी हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे मधुर जल मिलता है। आधा पुरुषप्रमाण नीचे मछली और उसके नीचे कबूतर केर समान रंग वाला पत्थर निकलता है तथा इस खात में नील वर्ण की मिट्टी होती है और चिर काल तक अधिक जल होता है।

जम्बूवृक्ष से पूर्वभाग में वल्मीको दिखलाई पड़ने पर -

तरोर्दक्षिणतो हस्तांस्त्रीस्त्यक्त्वाऽधो जलं वदेत्।।

नरद्वयेऽर्धपुरुषो मत्स्योऽश्मा पक्षिसन्निभः।

ततोऽपि मृत्तिका नीला ततो मृष्टं जलं वदेत्।।

पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे।

पुरुषे सितोऽहिरश्मा...नोपमोऽधः शिरा सुजला।।

जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष नीचे सुन्दर जल वाली शिरा होती है। यहाँ पर भी खोदने के समय कुछ चिन्ह मिलते हैं; जैसे-आधा पुरुष खोदने पर सफेद सर्प, उसके नीचे काला पत्थर और उसके नीचे सुन्दर जल वाली शिरा निकलती है।

उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि ततोऽर्जुनाद्धस्तैः।

त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात्।।

श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा।

पीता सिता ससिकता ततो जलं निर्दिशेदमितम्।।

अर्जुन वृक्ष से तीन हाथ उत्तर दिशा में बाँबी हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर भी खोदने पर कुछ चिन्ह मिलते है जैसे-आधा पुरुष नीचे गोधा (गोह), एक पुरुषतुल्य नीचे काली-सफेद मिट्टी, नीचे काली मिट्टी, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे सफेद रेत और उसके नीचे अधिक जल निकलता है।

वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः।

पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम्।।

रोहितमत्स्योऽर्धनरे मृत् कपिला पाण्डुरा ततः परतः।

सिकता सशर्कराऽथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः।।

वल्मीकयुक्त निर्गुण्डी (सिन्दुवार वृक्ष 'सिन्दुवारेन्द्रसुरसौ निर्गुण्डीन्द्राणिकेत्य त्यमरः) हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में सवा दो पुरुष नीचे कभी नहीं सूखने वाला जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय वक्ष्यमाण चिन्ह मिलते हैं-

आधा पुरुष नीचे लाल मछली, उसके नीचे पीली मिट्टी, उसके नीचे सफेद मिट्टी, उसके नीचे पत्थर के सूक्ष्म कणों से समन्वित रेत और उसके नीचे जल की प्राप्ति होती है।।

पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात्।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्द्धनरे।।

यदि वेर के वृक्ष से पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे सफेद छिपकिली निकलती है।

पूर्वभागं बदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम्।
पश्चातद्धस्तत्रये वाच्यं खाते तु पुरुषत्रये।।
अधःखातेऽर्धपुरुषे दृश्यते गृहगोधिका।
श्वेतवर्णा ततोऽधःस्थं जलं भवति निर्मलम्।।
सपलाशा बदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति।
पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभश्चहम्।।

जलरहित देश में पलाश (ढाक) के वृक्ष से युक्त वेर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे विषरहित सर्प मिलता है।

पलाशयुक्ता बदरी यत्र दृश्या ततोऽपरे।
हस्तत्रयादधस्तोयं सपादे पुरुषत्रये।।
नरे तु दुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चहमेव च।
अधस्तोयं च सुस्वादु दीर्घकालं प्रवाहितम्।
बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन।
पुरुषस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्द्धनरे च मण्डूकः।।

जहाँ वेल के वृक्ष से युक्त गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल की स्थिति होती है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे कृष्ण .... निकलता है।

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन्।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च।।
आपाण्डुपीतिका मृरसवर्णश्च भवति पाषाणः।

पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति।।

यदि काकोदुम्बरिका वृक्ष (कटुम्बरि = 'काकोदुम्बरिका फल्गुर्मलपूर्ज त्यमरः) के समीप वल्मीक हो तो उस वल्मीक के सवा तीन पुरुष नीचे पश्चिम में बहने वाली शिरा निकलती है। यहाँ पर खोदने के समय सफेद और .... निकलती है। उसके नीचे सफेद पत्थर और आधा पुरुष नीचे सफेद चूहा दिखता है।

जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः।
प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम्।।
मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता दृश्यते ततस्तस्मिन्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यकः पयोऽल्पं च सक्षारम्।।

जलरहित देश में कम्पिल्ल वृक्ष (कपिल = कवीला) दिखाई दे तो उससे तीन हाथ पूर्व दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे दक्षिण शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय पहले नील कमल के समान रंग वाली मिट्टी और उसके नीचे कबूतर के रंग की मिट्टी दिखाई देती है तथा एक हाथ नीचे बकरे के समान गन्ध वाली मछली और उसके नीचे खारा जल निकलता है।

निर्जले यत्र कम्पिल्लो दृश्यस्तस्मात् करत्रये।
प्राच्यां त्रिभिर्नरैर्वारि सा भवेद् दक्षिणा शिरा।।
अधो नीलोत्पलाभासा मृत् कापोतप्रभा क्रमात्।
हस्तेऽजगन्धको मत्स्यो जलमल्पमशोभनम्।।

अन्य कथन

शोणाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य।
कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति।।

जलरहित देश में शोणाक (सरिवन) वृक्ष दिखाई दे तो उससे दो हाथ व ..... कोण में तीन पुरुष नीचे 'कुमुदा' नाम की शिरा होती है।

अन्य कथन

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपाश्र्वे विभीतकस्य यदि।
अध्यर्धे भवति शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम्।।

यदि विभीतक (बहेड़ा) वृक्ष के समीप दक्षिण दिशा मेंर वल्मीक दिखई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ पूर्व डेढ़ पुरुष नीचे शिरा होती है।

विभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते।

करद्वयान्तरे पूर्वे सार्धे च पुरुषे जलम्।।

अन्य कथन

तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते।
तत्रोदग् भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषौः।
श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते।

यदि बहेड़े के वृक्ष से पश्चिम दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से .... साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष .... का विश्वम्भरक (प्राणिविशेष) दिखाई देता है। उसके नीचे केशर के रंग .... और उसके नीचे पश्चिम दिशा को बहने वाली शिरा निकलती है; परन्तु यह... वर्ष बाद नष्ट हो जाती है अर्थात् जल नष्ट हो जाता है।

अन्य कथन

सकुशः सित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य।
मध्ये तयोर्नरैरर्धपंचमैस्तोयमक्षोभ्यम्।।
प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही रक्ता।
कुरुविन्दः पाषाणश्चहान्येतानि वाच्यानि।।

जहाँ पर कोविदारक (छितिवन = सप्तपर्ण) वृक्ष के ईशान कोण में कुशायुक्त श्वेत वल्मीक हो, वहाँ पर सप्तपर्ण वृक्ष और वल्मीक के मध्य में साढ़े पाँच पुरुष नीचे अधिक जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे कमलपुष्प के मध्य के समान रंग का सर्प, उसके नीचे लाल वर्ण की भूमि और उसके नीचे कुरुविन्द नामक पत्थर निकलता है। ये सभी चिन्ह यहाँ पर कहने चाहिये।

अन्य कथन

यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृतस्तदुत्तरे तोयम्।
वाच्यं पुरुषैः पंचभिरत्रापि भवन्ति चिन्हानि।।
पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च।
पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवहा।।

यदि वल्मीक से युक्त सप्तपर्ण वृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पाँच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। जहाँ पर भी वक्ष्यमाण चिन्ह मिलते हैं; जैसे-आधा पुरुष नीचे हरा मेढ़क, उसके बाद हरताल के समान पीली भूमि, उसके नीचे मेघ के समान काला पत्थर और उसके नीचे मधुर जल वाली

उत्तरवाहिनी शिरा निकलती है।

भुजंगगृहसंयुक्तो यत्र स्यात् सप्तपर्णकः।
ततः सौम्ये हस्तमात्रात् पंचभिः पुरुषैरधः।।
वाच्यं जलं नरार्धे तु मण्डूको हरितो भवेत्।
हरितालनिभा भूश्च मेघाभोऽश्मा ततः शिरा।।
उत्तरा सुजला ज्ञेया दीर्घा मृष्टाम्बुवाहिनी।।

अन्य कथन

सर्वेषां वृक्षाणामधः स्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः।
पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता।
दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चात्र।।

जिस किसी वृक्ष के मूल में मेढ़क दिखाई दे, उस वृक्ष से एक हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर खोदने के समय एक पुरुष नीचे नेवला, उसके नीचे क्रम से नीली, पीली तथा सफेद मिट्टी, उसके नीचे मेढ़क के सदृश पत्थर और उसके नीचे जल निकलता है।

तरूणां यत्र सर्वेषामधः स्थो दर्दुरो भवेत्।
वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धैर्नरैरधः।।
चतुर्भिः पुरुषे खाते नकुलो नीलमृत्तिका।
पीतश्वेता ततो भेकसदृशोऽश्मा प्रदृश्यते।।

अन्य कथन

यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करंजस्य।
हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे।।
कच्छपकः पुरुषाद्र्धे प्रथम चोद्यते शिरा पूर्वा।
उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माधस्ततस्तोयम्।।

यदि करंजक वृक्ष के दक्षिण दिशा में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण तीन पुरुष नीचे शिरा होती है। यहाँ पर आधा पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे पूर्ववाहिनी शिरा, उसके नीचे उत्तरवाहिनी शिरा, उसके नीचे हरे रंग का पत्थर और उसके नीचे जल निकलता है।

अन्य कथन

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम्।
परिहृत्य पंच हस्तानर्धाष्टमपौरुषान् प्रथमम्।।
अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलुत्थवर्णोऽश्मा।
माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम्।।

महुए के वृक्ष से उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ आगे पश्चिम दिशा में साढ़े आठ पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे प्रधान सर्प, उसके नीचे धूम्र वर्ण की पृथ्वी, उसके नीचे कुल्थी के रंग का पत्थर और उसके नीचे सदा फेनयुत जल देने वाली पूर्ववाहिनी शिरा निकलती है।

अन्य कथन

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत्।
पुरुषैः पंचभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा।।

तिलक (तालमखाना) के वृक्ष से दक्षिण कुशा और दूब से युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्ष से पाँच हाथ पश्चिम में पाँच पुरुष नीचे जल और पूर्ववाहिनी शिरा होती है।

तिलकाद् दक्षिणे स्निग्धः कुशदूर्वासमायुतः।
वल्मीकाच्चोत्तरे पंचहस्तान् सन्त्यज्य पश्चिमे।।
नरैः पंचभिरम्भोऽधः शिरा पूर्वात्र विद्यते।।

अन्य कथन

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम्।
परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः।।
कौबेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम्।
कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता।।

कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ दक्षिण में पौने छः पुरुष नीचे जल होता है। वहाँ लोहे के गन्ध से युक्त अधिक जल वाली उत्तरवाहिनी शिरा निकलती है। एक पुरुष नीचे सुवर्ण के रंग का मेढ़क और उसके नीचे पीली मिट्टी निकलती है।

अन्य कथन

वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा।
पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या।।

यदि वाल्मीक से युक्त ताड़ (ताल) या नारियल का वृक्ष हो तो उस वृक्ष में छः हाथ पश्चिम दिशा में चार पुरुष नीचे दक्षिणवाहिनी शिरा होती है।

अन्य कथन

याम्येन कपित्थस्याहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम्।
सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पंच।।
कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत् पुटभिदपि च पाषाणः।
श्वेता मृत् पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति।।

कपित्थ (कैथ) के वृक्ष से दक्षिण में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से सात हाथ उत्तर दिशा में पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुषतुल्य नीचे चितकबग सर्प और काली मिट्टी होती है। उसके नीचे परतदार पत्थर, उसके नीचे सफेद मिट्टी तथा एक पश्चिमवाहिनी शिरा और उसके नीचे उत्तरवाहिनी शिरा होती है।

अन्य कथन

अश्मन्तकस्य वामे बदरी वा दृश्यतेऽहिनिलयो वा।
षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम्।।
कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृत्।
आदौ च शिरा याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च।।

अश्मन्तक वृक्ष के बाँयीं तरफ बेर का वृक्ष या वल्मीक हो तो उस वृक्ष से छः हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे कछुआ, उसके नीचे धूसर वर्ण का पत्थर, उसके नीचे रेतीली मिट्टी, उसके नीचे दक्षिण शिरा और उसके नीचे ईशान कोण की शिरा निकलती है।

अन्य कथन

वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेज्जलं भवति पूर्वे।
हस्तत्रितये सत्र्यंशैः पुम्भिः पंचभिर्भवति।।
नीलो भुजगः पुरुषे मृत् पीता मरकतोपमश्चाश्मा।
कृष्णा भूः प्रथमं वारुणी शिरा दक्षिणेनान्या।।

हरिद्र (हरदुआ) वृक्ष की बाँयीं तरफ वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ पूर्व दिशा में एक तिहाई युत पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे नील वर्ण का सर्प, उसके नीचे पीली

मिट्टी, उसके नीचे हरे रंग का पत्थर, उसके नीचे काली भूमि एवं उसके नीचे पश्चिमशिरा और दक्षिणशिरा निकलती है।

अन्य कथन

जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चेन्निमित्तानि।
वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे।।
भांर्गी त्रिवृता दन्ती सूकरपादी च लक्ष्मणा चैव।
नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्बे त्रिभिः पुरुषैः।।

जिस जलरहित देश में बहुत जल वाले देश के चिन्ह दिखाई दें तथा जहाँ पर वीरण (गाँडर) और दूब अधिक कोमल हों, वहाँ एक पुरुष नीचे जल होता है तथा जहाँ पर भंगरैया, निसोत, इन्द्रदन्ती (दन्तिया = जयपाल), सूकरपादी, लक्ष्मणा-ये औषधियाँ हों, वहाँ से दो हाथ आगे दक्षिण दिशा में तीन पुरुष नीचे जल की प्राप्ति होती है।

अन्य कथन

स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविकटद्रुमाः समीपजलाः।
सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः।।

जहाँ निर्मल लम्बी डालियों से युत छोटे-छोटे विस्तृत वृक्ष हों, वहाँ जल निकट में होता है और जहाँ अन्तःसार वाले, विवर्ण पत्ते वाले, रूखे वृक्ष हों, वहाँ जलाभाव होता है।

अन्य कथन

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकविल्वतिन्दुकांकोलाः।
पिण्डारशिरीषांजनपरुषका वंजुलोऽतिबला।।
एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम्।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरेण।।

जहाँ पर निर्मल वल्मीक से युत तिलक, आम्रातक (अम्बाड़ा), वरुणक (वरण), भिलावा, बेल, तेन्दु (तेन्दुआ), अंकोल, पिण्डार, शिरीष, अंजन, परूषक (फालसा), अशोक, अतिवला-ये वृक्ष हों, वहाँ इन वृक्षों से तीन हाथ आगे उत्तर दिशा में साढ़े चार पुरुष नीचे जल होता है।

अन्य कथन

अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र।
तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं चास्मिन्।।

तृणरहित प्रदेश में कोई एक स्थान तृणयुत दिखाई दे अथवा तृणयुत प्रदेश में कोई एक स्थान तृणरहित दिखाई दे तो उस स्थान पर साढ़े चार पुरुष नीचे शिरा अथवा धन होता है।

अन्य कथन

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात्।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात्।।

जहाँ काँटे वाले वृक्षों में एक बिना काँटे वाला अथवा बिना काँटे वाले वृक्षों में एक काँटे वाला वृक्ष हो, वहाँ उस वृक्ष से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में एक तिहाई युत तीन पुरुष नीचे जल या धन होता है।

अन्य कथन

नदति मही गम्भीरं यस्मश्चरणाहता जलं तस्मिन्।
सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौबेरी तत्र च शिरा स्यात्।।

जहाँ पाँव से ताड़न करने पर गम्भीर शब्द हो, वहाँ तीन पुरुष नीले जल और उत्तर शिरा होती है।

अन्य कथन

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात्।
विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा।।

वृक्ष की एक शाखा नीचे की ओर झुकी हो या पीली पड़ गई हो तो उस शाखा के नीचे तीन पुरुषसमान खोदने पर जल मिलता है।

अन्य कथन

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता।।

जिस वृक्ष के फल-पुष्पों में विकार उत्पन्न हो, उस वृक्ष से तीन हाथ पर पूर्व दिशा में चार पुरुष नीचे शिरा होती है तथा नीचे पत्थर और पीली भूमि मिलती है।

अन्य कथन

यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः।
तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च।।

जहाँ काँटों से रहित और सफेद पुष्पों से युत कटेरी का वृक्ष दिखाई दे, उस वृक्ष के नीचे साढ़े तीन पुरुष खोदने पर जल निकलता है।

अन्य कथन

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषैर्वारि।।

जिस जलरहित देश में दो शिर वाले खजूर का पेड़ हो, वहाँ उस वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल कहना चाहिये।

खर्जूरी द्विशिरस्का स्यान्निर्जले चेत् करद्वये।
निर्देश्यं पश्चिमे वारि खात्वाऽधः पुरुषत्रयम्।।

अन्य कथन

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्वात्पलाश..... वा।
सव्येन तत्र हस्तक्ष्येऽम्बु पुरुषद्वये भवति।।

यदि सफेद पुष्प वाला कर्णिकार (कठचम्पा) या ढाक का वृक्ष हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे जल होता है।

अन्य कथन

यस्यामूष्मा धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले।
निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण।।

जिस स्थान से भाप या धूँआ निकलता हुआ दिखाई दे, वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा कहनी चाहिये।

अन्य कथन

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र।।

जिस खेत में धान्य उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय, बहुत निर्मल धान्य हो या उत्पन्न होकर पीला पड़ जाय, वहाँ दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा होती है।

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति।।

अब मरु देश में जिस प्रकार की शिरा होती है, उसको कहते हैं। जैसे- ऊँट की गर्दन की तरह भूमि में ऊँची-नीची शिरा होती है।

तत्राह-

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात्।
उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पंचभिः पुरुषैः।।
चिन्हं दर्दुर आदौ मृत् कपिला तत्परं भवेद्धरिता।
भवति च पुरुषेऽधोऽश्मा तस्य तलेऽम्भो विनिर्देश्यम्।।

यदि पीलु (पिलुआ = 'पीलौ गुडफलः स्त्रंसी' त्यमरः) वृक्ष के ईशान कोण में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पश्चिम दिशा में पाँच पुरुष नीचे उत्तर बहने वाली शिरा होती है। यहाँ खोदने के समय एक पुरुष नीचे मेढ़क, उसके नीचे पीली तथा हरी मिट्टी, उसके नीचे पत्थर और उसके नीचे जल कहना चाहिये।

ऐशान्यां पीलुवृक्षस्य वल्मीकश्चेज्जलं वदेत्।
चतुर्भिः सरलैर्हस्तैः पश्चिमे नरपंचमे।।
प्रथमे पुरुषे भेकः कपिला हरिता च मृत्।
पाषाणस्य तले सौम्यां शिरां बहुजलां वदेत्।।

अन्य कथन

पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धपंचमैर्हस्तैः।
दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः।।
प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूत्रिश्च।
दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भरि पानीयम्।।

पीलु वृक्ष की पूर्व दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ दक्षिण दिशा में सात पुरुषप्रमाण नीचे जल कहना चाहिये। यहाँ खोदने पर एक पुरुषप्रमाण नीचे एक हाथ लम्बा चितकबरा सर्प और उसके नीचे बहुत खारा जल बहने वाली दक्षिण शिरा निकलती है।

अन्य कथन

उत्तरतश्च करीरस्याहिगृहं दक्षिणे जलं स्वादु।
दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः।।

करीर (करील) वृक्ष के उत्तर दिशा में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से साढ़े चार हाथ पर दक्षिण दिशा में दस पुरुष नीचे मधुर जल जानना चाहिये। यहाँ पर एक पुरुष नीले पीला मेढ़क दिखाई देता है।

उदक्करीराद्वल्मीको दृश्यते चेज्जलं वदेत्।
चतुर्भिर्दक्षिणैर्हस्तैः सार्धैर्दशनरादतः।।

नरे भेकः पीतवर्णो दृश्यते चिन्हमत्र हि।।

अन्य कथन

रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेत्त्रिभिः करैर्याम्ये।

द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा।।

रोहीतक (लाल करंज) वृक्ष के पश्चिम में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से तीन हाथ आगे दक्षिण दिशा में बारह पुरुषप्रमाण नीचे खारे जल वाली पश्चिमवाहिनी शिरा निकलती है।

अन्य कथन

इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते।

खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे।।

यदि अर्जुन वृक्ष के पूर्व में वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्ष से एक हाथ पर पश्चिम दिशा में चौदह पुरुषप्रमाण नीचे शिरा निकलती है और एक पुरुषप्रमाण नीचे पीला गोह दिखाई देता है।

यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजंगगृहम्।

हस्तद्वये तु याम्ये पंचदशनरावसानेऽम्बु।।

क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा।

रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र।।

धत्तूर वृक्ष के उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता है। इस खात में खारा जल होता है तथा आधा पुरुष नीचे नेवला, ताम्रवर्ण का पत्थर और लाल रंग की मिट्टी निकलती है। यहाँ दक्षिण शिरा बहती है।

बदरीरोहितवृक्षौ सम्पृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकम्।

हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोडशभिर्मानवैर्भवति।।

सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या।

पिष्टनिभः पाषाणो मृत् श्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे।।

वल्मीक विना भी बेर एवं लाल करंज-ये दोनों वृक्ष इकट्ठे दिखाई दें तो उन वृक्षों से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में सोलह पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है। यहाँ पर मधुर जल होता है। पहले दक्षिण शिरा और बाद में उत्तर शिरा बहती है, आटे के समान सफेद पत्थर तथा सफेद मिट्टी निकलती है और आधा पुरुषप्रमाण नीचे बिच्छू दिखाई देता है।

अन्यदप्याह-

सकरीरा चेद्बदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः।

अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा।।

करीर वृक्ष के साथ बेर का वृक्ष दिखाई दे तो उन वृक्षों से तीन हाथ आगे पश्चिम दिशा में अठारह पुरुषप्रमाण नीचे ईशान कोण में बहने वाली और बहुत जल वाली शिरा होती है।

अन्य कथन

पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसम्मिते दिशि प्राच्याम्।
विंशत्या पुरुषाणामशोष्यमम्भोऽत्र सक्षारम्।।

यदि पीलु वृक्ष से युत बेर का वृक्ष हो तो उनसे तीन हाथ आगे पूर्व दिशा में बीस पुरुषप्रमाण नीचे कभी न सूखने वाला खारा जल होता है।

अन्य कथन -

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभविल्वौ वा।
हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत् पंचविंशत्या।।

जिस जगह अर्जुन और करीर या अर्जुन और बेल के वृक्ष का संयोग हो तो उन वृक्षों से दो हाथ पर पश्चिम दिशा में पच्चीस पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है।

अन्य कथन -

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति।
कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या।।

यदि वल्मीक के ऊपर दूब या सफेद कुशा हो तो वल्मीक के नीचे कूप खोदने से इक्कीस पुरुषप्रमाण नीचे जल मिलता है।

अन्य कथन

स्निग्धतरूणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च।
तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात् तद्वदेव वदेत्।।

जहाँ स्निग्ध वृक्ष हों, वहाँ उन वृक्षों से चार पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है तथा जहाँ बहुत वृक्षों के मध्य में एक वृक्ष विकारयुत दिखाई दे तो वहाँ उस विकारयुत वृक्ष से दक्षिण चार पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है।

अन्य कथन

नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जांगलानूपे।
कीटा वा यत्र विनालयेन बहवोऽम्बु तत्रापि।।

जिस बहुत जल वाले या स्वल्प जल वाले देश में पाँव रखने से धरती दब जाय और जहाँ बिना रहने के स्थान के बहुत से कीड़े हों, वहाँ डेढ़ पुरुषप्रमाण नीचे जल कहना चाहिये।

उष्णा शीता च मही शीतोष्णाम्भस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः।
इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात्।।

जहाँ सब जगह गरम और एक जगह ठण्डी या सब जगह ठण्डी और एक जगह गरम भूमि हो, वहाँ साढ़े तीन पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है। जिस स्वल्प जल वाले या अधिक जल वाले प्रदेश में इन्द्रधनुष, मछली या वल्मीक हो, उस भूमि में चार हाथ नीचे जल होता है।।

अन्य कथन

वल्मीकानां षङ्क्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितः शिरा तदधः।
शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राम्भः।।

जहाँ बहुत वल्मीकों में एक वल्मीक सबसे ऊँचा हो, वहाँ उस ऊँचे वल्मीक के नीचे चार पुरुषप्रमाण खोदने पर जल मिलता है अथवा जिस खेत में धान्य जम कर सूख जाय या जमे ही नहीं, वहाँ चार पुरुषप्रमाण नीचे जल कहना चाहिये।।

वल्मीकपंक्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रितस्तदधो जलम्।
न रोहते शुष्यते वा यत्र सस्यं चतुष्करात्।।
जलं तत्रैव निर्देश्यं भूमौ निःसंशयं तदा।।

अन्य कथन

न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः।
वटपिप्पलसमवाये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक्।।

जहाँ बड़, पीपल, गूलर-ये तीनों वृक्ष इकट्ठे हों तथा जहाँ बड़, पीपल-ये दोनों वृक्ष एक साथ अवस्थित हों, वहाँ इन वृक्षों के नीचे तीन हाथ खोदने पर जल और उत्तर शिरा मिलती है।।

पलाशोदुम्बरौ यत्र स्यातां न्यग्रोधसंयुतौ।
वटपिप्पलकौ वाऽथ समेतौ तदधो जलम्।।
करैस्त्रिभिरुदक् चाम्भः शिरां शुभजलां वदेत्।।

कूपलक्षण-

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत् कूपः।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः।।

नैर्ऋतकोणे बालक्षयं च वनिताभयं च वायव्ये।
दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः।।

यदि गाँव या नगर के आग्नेय कोण में कूप हो तो उस गाँव या नगर में निम्न अनेक प्रकार का भय होता है। अधिकतर आग लगती है और मनुष्य भी जल कर मरते हैं। नैर्ऋत्य कोण में कूप हो तो बालकों का क्षय और वायव्य कोण में हो तो स्त्रियों को भय होता है। शेष पाँच दिशाओं में कूप का होना शुभ होता है।

एतद्यदुक्तं दकार्गलं तत्सारस्वतं दृष्टेदानीं मानवं वक्ष्यामीत्याह-

सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य।
आर्याभिः कृतमेतद् वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये।।

सारस्वत मुनि द्वारा जो उदकार्गल कहे गये हैं, उनको देखकर मैंने आर्या छन्दों के द्वारा यह उदकार्गल कहा है। अब मनु द्वारा प्रतिपादित उदकार्गल को वृत्तों के द्वारा कहता हूँ।

अन्य कथन

स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो
निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति।
पद्मक्षुरोशीरकुलाः सगुण्ड्राः
काशाः कुशा वा नलिका नलो वा।
खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः
क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः।
छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः
स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः।।
विभीतको वा मदयन्तिका वा
यत्रास्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः।
स्यात् पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्य-
स्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः।।

जहाँ पर स्निग्ध, छिद्ररहित पत्तों से युत वृक्ष, गुल्म या लता हो; वहाँ तीन पुरुषप्रमाण नीचं जल होता है। अथवा स्थलकमल, गोखरू, उशीर (खस), कुल-ये द्रव्यविशेष; गुण्ड्र (सरकण्डा, शर), काश, कुशा, नलिका, नल-ये तृणविशेष; खजूर, जामुन, अर्जुन, वेंत-ये वृक्षविशेष; दूध वाले

वृक्ष, गुल्म और लता, छत्री, हस्तीकर्णी, नागकेशर, कमल, कदम्ब, करंज-ये सभी सिन्दुवार वृक्ष के साथ; बहेड़ा वृक्षविशेष, मदयन्तिका द्रव्यविशेष-ये सब जहाँ पर अवस्थित हों; वहाँ पर तीन पुरुष-प्रमाण नीचे जल होता है। साथ ही जहाँ पर एक पर्वत के ऊपर दूसरा पर्वत हो, वहाँ पर भी तीन पुरुषप्रमाण नीचे जल होता है।

गुल्मपादपवल्लयः स्यु पत्रैश्चाखण्डितैर्युताः।
तदधो विद्यते वारि खाते तु पुरुषत्रये।।
पद्मक्षुरोशीरकुला गुण्ड्रा काशः कुशोऽथवा।
नलिकानलखर्जूरजम्बूवेतसकार्जुनाः।।
यत्र स्युर्दुर्मवल्ल्यश्च क्षीरयुक्ताः फलान्विताः।
छत्रेभनागनीपाश्च शतपत्रविभीतकाः।।
सिन्दुवारा नक्तमालाः सुगन्धा मदयन्तिकाः।
यत्रैते स्युस्तत्र जलं खातेऽम्भः पुरुषत्रये।।
गिरेरुपरि यत्रान्यः पर्वतः स्यात्ततो जलम्।
तस्यैव मूले पुरुषैस्त्रिभिर्वाऽधो विनिर्दिशेत्।।

अन्य कथन

नैम्बं पत्रं त्वक्च नालं तिलानां
सापामार्गं तिन्दुकं स्याद् गुडूची।
गोमूत्रेण स्त्रावितः क्षर एषां
षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिद्यतेऽश्मा।।

नीम के पत्ते, नीम की छाल, तिलों का नाल, अपामार्ग, तेन्दू का फल, गिलोय-इन सबों के भस्म को गोमूत्र में मिलाकर उसे तपाई हुई शिरा पर छः बार छिड़कने से शिला फूट जाती है।

अधुना शस्त्रपानमाह-

आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं
पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः।
टंकस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः।।

शस्त्र पर पहले तिल का तेल मले, फिर मेष के सींग का भस्म तथा कबूतर और चूहे की बीट से युत आक के वृक्ष के दूध का लेप करे, फिर उसको आग में तपा कर पूर्वोक्त पान देवे। ऐसा करने के पश्चात् तेज करके पत्थर पर प्रहार करने से भी उसकी धार नहीं टूटती है।

टंक शस्त्रम्। एष श्लोकः खड्गलक्षणे व्याख्यातः।।

अन्य कथन

क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते
दिनोषिते पायितमायसं यत्।
सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भंग
न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम्।।

एक अहोरात्र तक तक्र से युत कदली वृक्ष की भस्म में स्थापित लोहे में पूर्वोक्त पान देकर तीक्ष्ण करके पत्थर पर प्रहार करने से भी उस शस्त्र की धार नहीं टूटती है तथा अन्य लोहे पर प्रहार करने से भी वह शस्त्र कुण्ठता (अतीक्ष्णता) को नहीं प्राप्त होता है।

वापीलक्षणमाह-

पाली प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः।
तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां सम्पातमावारयेत्
पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः।।

पूर्वोपरायत वापी में अधिक समय तक जल ठहरता है। दक्षिणोत्तरायत वापी में जल नहीं ठहरता है; क्योंकि वायु के तरंगों से वह वापी नष्ट हो जाती है। यदि दक्षिणोत्तरायत वापी बनाना चाहे तो तरंगों से बचाने के लिये उसके किनारों को मजबूत लकड़ी या पत्थर आदि से चुनवा दे तथा बनाने के समय मिट्टी की हरेक तह को हाथी-घोड़े आदि को उस पर दौड़ाकर बैठाता जाय, जिससे कि मिट्टी दबकर विशेष मजबूत हो जाय।

कीदृशं वाप्यास्तीरं कारयेदित्याह-

ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः।
कुरबकतालाशोकमधूकैर्बकुलविमिश्रैश्चावृततीराम्।।

निचुल, जामुन, वेंत, नीप (एक तरह का कदम्ब) - इन वृक्षों के साथ अर्जुन, बड़, आम, पिलखन,

कदम्ब और बकुल के साथ कुरवक, ताड़, अशोक, महुआ, मौलसिरी- इन वृक्षों को वापी के तट पर लगाना चाहिये।

अथ नैर्वाहिकद्वारलक्षणमाह-

द्वारं च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शिलासंजतवारिमार्गम्।
कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांशुभिरावपेत्तम्।

वापी की एक तरफ जल निकलने के लिये पत्थरों से बन्धवाया हुआ एक मार्ग बनाना चाहिये। उस मार्ग को छिद्ररहित लकड़ी के तख्ते से ढककर मिट्टी से दृढ़ कर देना चाहिये।

अधुना द्रव्ययोगमाह-

अंजनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः।।

अंजन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला, कतक का फल-इन सबका चूर्ण कूप में डालना चाहिये।।121।।

अस्य गुणानाह-

कलंषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत्।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम्।।

जो जल गन्दला, कड़ुआ, खारा, बेस्वादर या दुर्गन्ध वाला हो, वह इन पूर्वोक्त औषधियों के डालने पर निर्मल, मधुर, सुन्दर गन्ध वाला और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है।

अधुना नक्षत्राण्याह-

हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः।
शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः।।

हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा-इन नक्षत्रों में कूप का आरम्भ करना शुभ होता है।

अधुना प्रतिष्ठाविधानमाह-

कृत्वा वरुणस्य बलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने
कुसुमैर्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेत् प्रथमम्।।

वरुण को बलि देकर गन्ध, पुष्प, धूप आदि से बड़ या वेतस की लकड़ी की कील की पूजन करके पहले शिरास्थान में उसको स्थापित करना चाहिये।

मेघोवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं
ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा।
भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं
सम्यग्वराहमिहिरेण मुनिप्रसादात्।।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा के बाद में जिस प्रकार जल का ज्ञान होता है, उसको मैंने पहले ही कह दिया है। यहाँ बलदेव आदि आचार्यों का मत देखकर मुनियों की कृपा से मैंने जलज्ञान के लिये यह दूसरा 'दकार्गल' नामक अध्याय कहा है।

बोध प्रश्न -

1. दकार्गल का शाब्दिक अर्थ है -
   क. जल ख. भूमिगत जल ग. पानी घ. नीर
2. पूर्वदिशा के स्वामी का क्या नाम है।
   क. इन्द्र ख. राहु ग. गुरु घ. यम
3. जल शिराओं का नाम किसके नाम पर पड़ा है।
   क. दिक्पतियों ख. कालपति ग. देशपति घ. कोई नहीं
4. नवमी शिरा का नाम क्या है।
   क. लक्ष्मी ख. महाशिरा ग. श्वेत घ. देव
5. पुरुष प्रमाण का मान कितना है।
   क. १२० अंगुल ख. १२ अंगुल ग. १० घ. १४ अंगुल
6. जलरहित देश में गूलर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में ढाई पुरुष नीचे कैसी जल वाली शिरा होती है।
   क. सुन्दर ख. अस्वादु ग. लवणजल घ. कोई नहीं

५.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत दकार्गल अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं चराचर जगत् से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। दकार्गल का सामान्य अर्थ है – भूमिगत जल। यद्यपि यह एक परीक्षण जन्य ज्ञान है कि भूमि पर कहाँ, कितना और कैसा जल मिलेगा? यह परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कथित दकार्गल ज्ञान से प्राप्त

करना सम्भव है। आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ वृहत्संहिता में दकार्गल के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय का ही प्रतिपादन किया है। आचार्य वराहमिहिर ने सर्वप्रथम दकार्गल का प्रयोजन बताते हुए कहा है कि -जिसका ज्ञान होने पर भूमिगत ज्ञान प्राप्त होता है, उस धर्म और यश को देने वाले 'दकार्गल' को कहते हैं। मनुष्यों के अंग में नाड़ियाँ होती हैं, उसी तरह भूमि में भी ऊँची-नीची शिरा आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है; किन्तु वही जल विशेषता से तत्तत् स्थानों में अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला हो, जल की तरह भूमि के वर्ण और रस के समान ही जल के भी रस और वर्ण सिद्ध होती है। भूमि, वर्ण और रस का परीक्षण-पूर्वक जल के रस और स्वाद का परीक्षाण् चाहिये। भूमिगत जल ज्ञान के लिए हमें शिराओं का ज्ञान होना परमावश्यक है। अत: पहले शिराओं का समझते हैं। पूर्व आदि आठ दिशाओं के क्रम से इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी होते हैं। इन आठ दिक्पतियों के नाम से आठ (ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि) ही शिरायें भी प्रसिद्ध हैं। इन आठ शिराओं के मध्य में महाशिरा नाम वाली नवमी शिरा है। इन नव शिराओं के अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों शिरायें निकली हैं, जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं। पाताल से ऊपर की तरफ जो शिरा निकली है, वह और पूर्व आदि चारों दिशाओं में स्थित शिरायें शुभ तथा अग्निकोण आदि विदिशाओं में स्थित शिरायें अशुभ होती हैं। अतः इसके बाद शिराओं के लक्षण कहते हैं।

यदि जलरहित देश में वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में डेढ़ पुरुष नीचे जल कहना चाहिये। भुजा ऊपर की तरफ खड़ी करने से पुरुष की जितनी लम्बाई हो, वह एक पुरुषप्रमाण (120 अंगुल) यहाँ पर ग्रहण कर इस खात में पश्चिमा शिरा बहती है। यहाँ पर खोदने के समय कुछ चिन्ह जैसे-आधा पुरुषप्रमाणतुल्य खोदने पर पाण्डु वर्ण का मेढ़क, उसके नीचे पत्थर और पत्थर के नीचे जल मिलता है।

५.६ पारिभाषिक शब्दावली

दकार्गल – भूमिगत जल की स्थिति

पुरुष प्रमाण - १२० अंगुल

भूमिगत – पृथ्वी के नीचे

पूर्व – पूर्व दिशा

दिक्पति – दिशाओं के स्वामी

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।

मृदु जल - मीठे स्वाद वाला जल

स्वादु जल – पीने योग्य जल

५.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. क
4. ख
5. क
6. क

५.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्संहिता – मूल लेखक – वराहमिहिर, टीका – अच्युतानन्द झा

2. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

५.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. वृहत्संहिता
3. भृगु संहिता
4. प्रश्नमार्ग

५.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. दकार्गल से आप क्या समझते है।
2. वराहमिहिर कथित शिरा ज्ञान का उल्लेख कीजिये।
3. वृहत्संहिता के अनुसार दकार्गल का वर्णन कीजिये।
4. दकार्गल का महत्व प्रतिपादन कीजिये।

खण्ड - 3
विभिन्न चार फल विचार

इकाई - १ रवि, चन्द्र, भौम, बुधचार फल

इकाई की संरचना

१.१. प्रस्तावना
१.२. उद्देश्य
१.३. रवि एवं चन्द्र चार फल
१.४. भौम एवं बुध चार फल
१.५. सारांश
१.६. पारिभाषिक शब्दावली
१.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
१.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
१.९. सहायक पाठ्य सामग्री
१.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

१.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के तृतीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – रवि, चन्द्र, भौम बुध चारफल। इससे पूर्व आप सभी ने संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत प्राकृतिक आपदाओं तथा दकार्गल आदि का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में उसी क्रम में ग्रहचार फल के अन्तर्गत रवि, चन्द्र, भौम एवं बुध का चार फल का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

जैसा कि आपने ग्रहचार का ज्ञान पूर्व में कर लिया है। अब आप उसके शुभाशुभ फलों का अध्ययन करने जा रहे है। इस इकाई में पहले रवि, चन्द्र, भौम एवं बुध ग्रह के चार फल का अध्ययन करेंगे शेष ग्रहों का आगे की इकाई में।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े ग्रहचार फल से सम्बन्धित विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

१.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि ग्रहचार फल किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि सूर्य एवं चन्द्र का ग्रहचार फल क्या है ।
- भौम एवं बुध के फल को समझ सकेंगे।
- ग्रहचार फल के महत्व को समझा सकेंगे।

१.३. रवि एवं चन्द्र चार फल

संहिता ज्योतिष में सभी ग्रहों के ग्रहचार के साथ-साथ उनके अलग-अलग स्थितियों के अनुसार शुभाशुभ फलों का भी वर्णन किया है। वृहत्संहिता, नारद संहिता, भृगु संहिता आदि समस्त संहिता ग्रन्थों में ग्रहचार फल का उल्लेख मिलता है। महात्मा वशिष्ठ ने भी अपने ग्रन्थ वशिष्ठ संहिता में सभी ग्रहों का ग्रहचार फल के नाम से अध्यायों का सृजन किया है। अत: आइए हम सब महात्मा वशिष्ठ द्वारा कथित कमश: सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं बुध आदि ग्रहों का ग्रहचार फल का

अध्ययन करते है।

सूर्य चार फल -

अथार्कचाराज्जगतः शुभाशुभे न्यूनाधिमासेतरमासनिर्णयः।
उद्वाहसंक्रान्तिदिनार्द्धनिश्चयः सर्वप्रचो भवतीति तद्वशात्।।

संसार के शुभाशुभ ज्ञान के लिए क्षयमास तथा अधिकमास के साथ-साथ अन्य मासों का निर्णय विवाह, संक्रान्ति, दिनार्द्ध का निश्चय एवं सम्पूर्ण प्रप... सूर्य के चार अर्थात् गति के अधी होते हैं।

मकरादिराशिषटक्मुदगयनं कर्कटादिगं याम्यम्।
राशिद्वयार्कभोगातषड़तवः शिशिरादयः क्रमशः।।

सूर्य मकर से छः राशि तक उत्तरायण तथा कर्क राशि से छः राशि तक दक्षिणायन तथा दो राशियों तक सूर्य के भोग की ऋतु इसी प्रकार शिशिर आदि छः ऋतुएं क्रमशः होती रहती हैं।

चैत्रादिमासेन यथाक्रमेण मेषादयो द्वादश राशयः स्युः।
न्यूनाधिमासेषु समागतेषु चलन्ति तेभ्यो नियतं विनाऽपि।।

चैत्रादि द्वादश मास क्रमशः मेषादि बारह राशियों में सूर्य के भ्रमण से होते हैं। क्षयमास एवं अधिकमास सूर्य के चार वश नियतकाल के बिना ही आते हैं।

सर्वेषु मासेष्वधिमासकः स्यात्तुलादिमासत्रयगः क्षयाख्यः।
संसर्पकः पूर्वभवोऽधिमासः पश्चाद्भवोऽहस्पतिनामधेयः।।

अधिकमास सम्पूर्ण मासों में होता है, किन्तु तुलादि तीन महीनों में क्षयमास हुआ करता है। अधिकमास पूर्व होने से संपर्क तथा बाद में होने से अहस्पति नाम से कहा जाता है।

यस्मिन्दर्शस्यान्तादर्वागेका परा परं दर्शम्।
उल्लंघ्य भवति भानोः संक्रान्तिः सोऽधिमासः स्यात्।।

जब एक अमावस्या से अगली अमावस्या का उल्लंघन करके सूर्य की संक्रान्ति हो जाती है। उसी को अधिकमास (पुरुषोत्तम मास) कहा जाता है। अर्थात् जिसमें दो अमावस्याओं के अन्तर में सूर्य की एक भी संक्रान्ति नहीं होती।

आद्यन्तदर्शयोर्मध्ये तयोराद्यन्तयोर्यदा।
संक्रान्तिद्वितयं चेत्स्यात्र्यूनमासः स उच्यते।।

अमावस्या के आदि से अन्त अर्थात् जिस चन्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्ति हो जाती हैं उसी को क्षयमास कहते हैं।

मासप्रधानाखिलमेव कर्ममुक्त्वाखिलं कर्म न कार्यमत्र।

यज्ञोपवासव्रततीर्थयात्राविवाहकर्मादि विनाशमेति।।

सम्पूर्ण कर्मों में मास प्रधान होता है। इसलिए सम्पूर्ण कर्म यहाँ यज्ञ, उपवास, व्रत, तीर्थयात्रा, विवाह कर्म आदि अशुभ मास में नष्ट हो जाते हैं।

दास्त्रादिऋक्षद्वयगे दिनेशे वृष्टिर्भवेत्क्षेमकरी जनानाम्।

वह्न्यक्र्षसंस्थे यदि वृष्टिरीतिब्र्राह्मद्वये स्यादतुलं सुभिक्षम्।।

अश्विनी आदि दो नक्षत्रों में अर्थात् अश्विनी भरणी में सूर्य के होने पर वृष्टि होती है तो लोगों का कल्याण होता है। यदि कृत्तिकादि नक्षत्रों में सूर्य के स्थित होने पर वृष्टि होती है तो अतुलनीय सुभिक्ष अर्थात् सुसमय होता है।

प्रवेशकाले यदि रौद्रभस्य वृष्टिर्भवेदीतिरनर्घता च।

शेषेषु पादत्रितयेषु भीतिरत्यल्पवृष्टिर्महती गदा च।।

आद्र्रा नक्षत्र में प्रवेश के समय यदि वृष्टि हो तो ईति का भय होता है तथा मंहगाई होती है। शेष तीन चरणों मेंर वर्षा होने से भय, अत्यल्प वृष्टि और बड़ा रोग होता है।

नोटः अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी, मूषक, तोता, राजा की चढ़ाई इन सभी से किसानों की खेती नष्ट हो जाती है। इसी को ईति का भय कहा जाता है।

आद्र्राप्रवेशेऽह्नि जगद्विपत्तिं सस्यस्य नशिं कुरुतेऽल्पवृष्टिम्।

क्षेमं सुभिक्षं निशि सस्यवृद्धिं सुवृष्टिमत्यन्तजनानुरागम्।।

आद्र्रा नक्षत्र में सूर्य का प्रवेश यदि दिन में हो तो संसार में विपत्ति आती है और फसल का नाश होता है तथा स्वल्प वृष्टि होती है। जबकि रात्रि में प्रवेश होने पर कल्याण होता है सुभिक्ष रहता है, फसल की वृद्धि होती है तथा लोगों में आपस में प्रेम बना रहता है।

पुनर्वसोर्भाद्दशधिष्ण्यवृन्दे प्रीतिर्जनानां कलहो नृपाणाम्।

मैत्रादिऋक्षत्रितये नराणां विभावसोःर साध्वसमामयश्च।।

पुनर्वसु नक्षत्र से दस नक्षत्र पर्यन्त सूर्य के रहने पर लोगों में प्रीति किन्तु राजाओं में कलह होता है। जबकि अनुराधा आदि तीन नक्षत्रों में सूर्य के रहने पर मनुष्य निरोगी रहते हैं।

जलाधिदैवक्र्षगते पतंगे विद्युन्मरुद्वारिघनैश्च युक्ते।

दिनेषु सार्द्धत्रितयेषु पश्चाद्रौद्रादिभेषु क्रमशः सुवृष्टिः।।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में सूर्य के जाने पर बिजली, वायु, जल तथा बादल से युक्त समय रहता है।

साढ़े तीन दिन तक यह स्थिति रहती है इसके पश्चात् सुन्दर वृष्टि होती हैं।

भङ्गोगऽस्य पौष्णक्र्षगते दिनेशे भिन्नेषु रात्रावपि वीक्षणीयम्।

विश्वादिऋक्षत्रितये यदा स्यात्तदा सुभिक्षं त्रिषु वारुणक्र्षात्।।

सूर्य के रेवती नक्षत्र में जाने पर छत्रभंग होता है। लेकिन रात्रि में प्रवेश होने पर इससे भिन्न स्थिति होती है। उत्तराषाढ़ा आदि तीन नक्षत्रों में जब सूर्य होते हैं तब सुभिक्ष होता है। और शतभिषा से तीन नक्षत्र तकर सूर्य के रहने पर भी यहीं स्थिति होती है।

राहोः सुतास्तामसकीलकाद्याः कबन्धकाकोष्ट्श्रृगालरूपाः।

यदा रवेर्मण्डलगास्तदानीं मातंगभूपाहयभीतिदाः स्युः।।

राहु के पुत्र तामस और कीलक, कबन्ध, काक, उष्ण, श्रृंगाल रूप होकर जब सूर्यमण्डल में जाते हैं। उस समय हाथी, राजा तथा घोड़े आदि को भय देने वाले होते हैं।

शशरक्तनिभो युद्धं राजान्यत्वं विधूपमः सविता।

श्यामनिभः कीटभयं भस्मनिभो भयदमासुरं जगतः।।

सूर्य का वर्ण खरगोश के रक्त के समान हो तो राजाओं में युद्ध होता है और यदि चन्द्रमा के वर्ण के समान हो तो राजाओं में संघर्ष होता है। यदि काले रंग का हो तो कीट का भय, तथा भस्म का रंग होने से आसुरी जगत् में भय देने वाला होता है।

भानोरुदयास्तमये चोल्कापतनं महाहवं राज्ञाम।

परिवेषयति प्रकटं पक्षं पक्षार्द्धमेव वा सततम्।।

सूर्य के उदय अस्त के समय यदि उल्का पतन हो तो राजाआ को बहुत भय देने वाला होता है और एक पक्ष में यह प्रभाव प्रकट होता है।

यद्युपसूर्य्यकमस्यां संध्यायामर्थनाशनं प्रचुरम्।

क्षितिपतिकलहः शीघ्रं सलिलभयं वा भवेन्नूनम्।।

यदि उपसूर्य संध्या के समय दिखाई पड़े तो धन का अधिक मात्रा में नाश होता है। तथा निश्चित ही जल का भय होता है और शीघ्र ही राजाओं में कलह होता है।

ऋतौ वसन्ते खलु कुंकुमाभः शुभप्रदः कापिलसन्निभो वा।

आनन्ददस्ताम्रनिभो विवस्वान्यः शैशिरे वा कपिलः सुभिक्षः।।

बसन्त ऋतु में कुंकुम के रंग का यदि सूर्यमण्डल हो तो वह शुभफल देने वाला होता है। किन्तु यदि श्वेत मिश्रित पीला वर्ण का हो तो तब भी शुभद होता है और आनन्द देने वाला होता है,

यदि वह ताम्र वर्ण का हो, किन्तु शिशिर ऋतु में कपिल वर्ण का होने से सुभिक्ष देता है।

ग्रीष्मे सदा हेमनिभो विचित्रवर्णो नृणां क्षेमशुभप्रदश्च।।

अम्भोजगर्भोपमशोभनश्च ग्रावृष्यतीवाखिलस्यवृद्ध्यै।।

ग्रीष्म ऋतु में सदा स्वर्णिम रंग का होने से तथा विचित्र वर्ण वाला राजाओं के लिए कल्याणकारी और शुभ फल देने वाला होता है।

चन्द्र चार फल -

अमृतकिरणचारं खेटचारेषु सारं,

विपुलनिखिललोकानन्दनं सुन्दरं च।

सदसदखिललोकाभोगदं यत्फलं तत्,

कथितविषमकालज्ञानरूपं प्रवच्मि।।

चन्द्रमा का चार सम्पूर्ण ग्रहों के चारा का सार है। यह विस्तृत सम्पूर्ण लोक को आनन्द देने वाला तथा सुन्दर है। मैं सद् तथा असद् सम्पूर्ण लोकों के आभोग को देने वाले जो फल हैं, कहे गये उन विषम काल ज्ञान रूप को कह रहे हैं -

असितचतुर्दश्यन्ते प्रतिमासं चास्तमेति तुहिनकरः।

सततं दर्शस्यान्ते तुलितौ राश्यादिभिर्नियतम्।।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के अन्त से प्रतिमास चन्द्रमा अस्त हो जाता है। वह निरन्तर अमावस्या के अन्त में राश्यादि से नियत फलों को देता है।

विमलः प्रतिपद्यन्ते उदयं संयाति भास्करान्मुक्तः।

द्वादशभागविवृद्ध्या तिथयश्चन्द्राच्च सम्भूताः।।

निर्मल प्रतिपदा के अन्त में, सूर्य से मुक्त हो करके उदय होता है। बारह अंशों से वृद्धि होने पर तिथियां चन्द्रमा से उत्पन्न कही गयी हैं।

हिमद्युतेरभ्युदितस्य श्रृंगे याम्योन्नते मेषझषे सुभिक्षम्।

जनानुरागं वृषकुम्भयोश्च तुल्ये विषाणे जगतोऽखिलस्य।।

चन्द्रमा के उदित होने पर यदि मेष या मीन राशि हो और उसकी सींग दक्षिण की ओर उठा हुआ हो तो सुभिक्ष होता है। और यदि वृष या कुम्भ राशि हो और सींग समान हो तो सम्पूर्ण संसार में लोगों में आपस म प्रेम होता है।

सौम्योन्नते जिह्म मृगास्ययोश्च मासद्वयं स्वास्थ्यमुपैति लोकः।

सौम्योन्नते शीतनिभे सुवृष्टिः क्षेमं सदा कर्कटचापयोश्च।।

उत्तर की ओर यदि सींग उठा हो मकर राशि में हो तो दो महीने पर्यन्त संसार के लोगा का स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उत्तर की चन्द्रमा की सींग ऊँचा होने पर कर्क एवं धनु राशि वालों के लिए सदा कल्याणदायक होता है एवं सुन्दर वृष्टि होती है।

सस्याभिवृद्धिर्हरिकीटयोश्च सौम्योन्नते चापनिभे सुवृष्टिः।
अनामया वृष्टिरतीव कन्यातुलाद्वयोः शूलनिभे तथैव।।

यदि चन्द्रमा का सींग सिंह एवं वृश्चिक राशि में उत्तर की ओर ऊँचा हो तो फसल की वृद्धि होती है। धनु होने पर सुन्दर वृष्टि होती है तथा कन्या और तुला दोनों राशियों में उसी प्रकार रोगरहित, अत्यधिक वृष्टि होती है।

एवं क्रमेणाभ्युदितःर शशांकः क्षेमं सुभिक्षं जगतः करोति।
व्यस्तोदितः प्रोक्तफलं समस्तं करोति नाशं कलहं नृपाणाम्।।

इस क्रम से चन्द्रमा के उदित होने पर संसार में कल्याण एवं सुभिक्ष होता है। इसके विपरीत उदित होने पर पूर्व के कहे गये समस्त फल विपरीत होते हैं तथा राजाओं में कलह और नाश होता है।

श्रृंगे व्रीहियवाकारे वृष्टिः स्यान्महदर्घता।
तस्मिन्पिपीलिकाकारे पूर्वोक्तफलनाशनम्।।

यदि सींग धान या जौ की आकार का हो तो वृष्टि होती है और महंगाई आती है और यदि चींटी की आकार का हो तो पहले कहे गये फल का नाश हो जाता है।

विशालशुक्ले वृद्धिः स्यादविशाले त्वनर्घता।
अधोमुखे भूपहानिर्दण्डाकारे नृपाहवः।।

विशाल शुक्ल पक्ष में बड़ा सींग होने पर वृद्धि होती है और छोटा होने पर महंगाई नहीं आती। नीचे मुख होने पर राजाओं की हानि तथा राजाओं के समूह को दण्डाकार होने पर भय होता है।

नाशं ययुर्नृपतयोन्तगतः किराता मन्दे हते हिमकरस्य नवे विषाणे।
क्षुच्छस्त्रभीतिरतुलानिहतेकुजेच दुर्भिक्षवृष्टिभयमिन्दुसुतेहतेऽस्मिन्।।

यदि अन्तगत हो जाय तो राजाओं का नाश होता है। और चन्द्रमा के नवीन सींग के शनि से हत होने पर किरातों की हानि होती है। मंगल से हत होने पर छुद्र शस्त्र का भय होता है तथा बुध से हत होने पर दुर्भिक्ष तथा अकाल का भय रहता है।

श्रेष्ठा नृपा युधि लयं त्वमरेन्द्रवन्द्ये।

शुक्रे हते नियतमल्पनृपाश्च सर्वे।।

कृष्ण फलं त्वविकलं भवति प्रजानां।

पक्षे सिते विफलमेति भवेच्च यद्वा।।

बृहस्पति से हत होने पर बड़े-बड़ै राजा आपस में युद्ध करते हैं जबकि शुक्र से हत होने पर सभी राजा लोग नियत कार्यों में लगे रहते हैं। कृष्ण पक्ष रहने पर प्रजा विकल होती है। जबकि शुक्ल पक्ष पर ये सभी कथन विफल हो जाते हैं।

वलक्षपक्षः खलु वर्द्धते चेत्क्षेमाभिवृद्धिः सततं द्विजानाम्।

कृष्णे विवृद्धौ यदि शूद्रवृद्धिर्व्यत्यासवृद्धौ स्वफलं तथैव।।

शुक्ल पक्ष में सींग की वृद्धि होने पर ब्राहमणों के कल्याण की सदैव वृद्धि होती है किन्तु कृष्ण पक्ष में वृद्धि होने पर शूद्रों की वृद्धि होती है। और इसके विपरीत होने पर सदैव उसी प्रकार से फल होता रहता है।

विश्वाम्बुमूलेन्द्रविशाखमैत्रभानां यदा दक्षिणभागगेन्दुः

वहेर्भयं त्वीतिभयं जनानां करोति दुर्भिक्षमतीव युद्धम्।।

उत्तराषाढ़ा, पूर्वोषाढ़ा, मूल, ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा नक्षत्रों में जब दाहिने भाग में चन्द्रमा होता है तो अग्नि का भय ईति का भय तथा बड़ा दुर्भिक्ष एवं लोगों में युद्ध होता है।

१.४ भौम एवं बुध चार फल

भौम (मंगल) चार फल -

यस्माद्विना भूमिसुतस्य चारं शुभाशुभं यज्जगतः सुसम्यक्।

न ज्ञायते ज्ञानमनुत्तमं तत्तस्मात्प्रवक्ष्यामि समासतोऽत्र।।

जिसके बिना सम्पूर्ण जगत् के ठीक प्रकार से शुभ अशुभ फलों को तथा अनुत्तम ज्ञान को नहीं जाना जा सकता। अतएव संक्षेप में यहां भूमिपुत्र मंगल के चार को कह रहे हैं।

स स्वोदयर्क्षान्नवमेऽष्टमे वा सप्तर्क्षके वा विचरेत्प्रतीपम्।

तद्वक्रमुख्याहयमेव तत्र वहेर्भयं व्याधिभयं जनानाम्।।

मंगल यदि अपने नक्षत्र से आठवें या नवें नक्षत्र में उदित हो या सातवें नक्षत्र में विपरीत विचरण करे तो इसे वक्रमुख नाम से कहा गया है। इसमें लोगों को अग्नि का भय तथा रोग का भय होता है।

एकादशे द्वादशभे प्रतीपे दशर्क्षगे वाश्रुमुखं प्रतीपम्।

तत्राश्रुवक्त्रेऽर्घविवृद्धिपूर्वं रसादिकं नाशमुपैति नूनम्।।

यदि मंगल ग्यारहवें या बारहवें नक्षत्र में अथवा दसवें नक्षत्र में विपरीत या वक्री हो जाय तो इसको अश्रुमुख नाम से कहा गया है। इस अश्रुवक्त्र में महंगाई की वृद्धि तथा रसादि का निश्चित ही नाश कर देता है।

त्रयोदशर्क्षेऽपि चतुर्दशर्क्षे वक्रे कुजे व्यालमुखाभिधानम्।

तेभ्यो भयं तत्र सुवृष्टिसस्यसमृद्धिरर्घं च जनानुरागम्।।

तेरहवें या चैदहवें नक्षत्र में मंगल के वक्री होने पर यह सर्पमुख नाम से कहा गया है। यह भय तथा सुन्दर वृष्टि, फसलों की समृद्धि तथा लोगा में परस्पर में प्रेम पैदा करता है।

प्रतीपगे पंचदशेऽथ धिष्ण्ये धरासुते षोडशधिष्ण्यके च।

रक्ताननं नाम भवेत्तु तत्र सुभिक्षमत्यामयशत्रुवृद्धिः।।

पन्द्रहवें अथवा सोलहवें नक्षत्र में मंगल के वक्री होने पर उसका नाम रक्तानन होता है। और वह सुन्दर वृष्टि तथा रोग एवं शत्रु की वृद्धि करता है।

अष्टादशे सप्तदशे प्रतीपे निस्त्रंशपूर्वं मुशलाहयं च।

तत्रार्घभीतिः क्षितिपालकानां युद्धे क्षयं यान्ति समस्तलोकाः।।

मंगल के अठारहवें तथा सत्ररहवें नक्षत्रों में विपरीत तथा वक्री होने पर मुसल नाम से कहा गया है। इसमें महंगाई का भय, राजाओं का युद्ध तथा सम्पूर्ण लोक क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

भूमिसुतः फाल्गुन्योरुदये कृत्वाथ वक्रितो वैश्वे।

प्राजापत्येऽस्तमितः करोति निखिलधराभ्रमणम्।।

यदि मंगल पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में उदय करता है अथवा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में वक्री होता हैं तथा रोहिणी नक्षत्र में अस्त होता है तो सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का भ्रमण अर्थात् भूकम्प होता है अथवा लोगों की मृत्यु होती है।

अभ्युदितः श्रवणर्क्षे पुष्ये वक्रं गतो धरातनयः।

निखिलधराधिपवर्गप्रलयकरः प्रतिदिनं प्रजानां च।।

यदि मंगल श्रवण नक्षत्र में उदित होकर के पुष्य नक्षत्र में वक्री होता है। तो सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामियों में प्रलय मच जाता है तथा प्रजाओं में प्रतिदिन लड़ाई होती है।

अभ्युदितः पितृतधष्ण्ये तस्मिन्नेव प्रतीपगः क्षितिजः।

पीडां क्षितिपतिमरणं करोति कलहं क्षितीशानाम्।।

यदि मंगल मघा नक्षत्र में उदित होकर के यदि उसी नक्षत्र में विपरीत हो जाय तो राजाओं का मरण होता है। पीड़ा होती है अथवा आपस में कलह हुआ करता है।

यस्मिन्दिग्द्वारनक्षत्रे क्षितिजोऽभ्युदयं गतः।
तद्दिगीशस्य मरणं यदि तेषु प्रतीपगः।।

मंगल जिस भी दिकद्वार नक्षत्र में मंगल उदय को प्राप्त होता है। यदि वह मंगल उसी में विपरीत हो जाय उस दिशा के राजा का मरण अवश्य होता है।

भिनत्ति योगतारां च पितृधातृभयोः कुजः।
तदा भूपाहवैर्भूमिर्नूनं भ्रमति चक्रवत्।।

यदि मंगल मघा एवं रोहिणी नक्षत्र के योगतारा का भेदन करता है। तब वह राजाओं में हाहाकार तथा पृथ्वी चक्र की भांति भ्र-मित हो जाती है।

विशाखाविश्वधिष्ण्यान्त्यभानां याम्यचरः कुजः।
दुर्भिक्षवृष्टिभयकृदाहवे भुवि भूभुजाम्।।

विशाखा नक्षत्र एवं उत्तराषाढ़ा नक्षत्र तथा रेवती नक्षत्रों में मंगल दाहिने चले तो दुर्भिक्ष वृष्टि का भय करता है। तथा राजाओं में पृथ्वी पर युद्ध होता है।

शुभदः सर्वधिष्ण्यानां सौम्यमार्गचरः कुजः।
अरिष्टफलदः सर्वजन्तूनां याम्यमार्गगः।।

यदि मंगल सम्पूर्ण नक्षत्रों में सौम्य मार्ग से गमन करे तो शुभ देने वाला होता है। जबकि याम्य मार्ग से गमन करे तो सम्पूर्ण प्राणियों के लिए अरिष्ट फल देने वाला होता है।

मेषसिंहझाषचापभसंस्थे वक्रिते क्षितिसुते रविजे वा।
गोनराश्वगजपक्षिसमूहं नाशमेति निखिलं च दलं वा।।

यदि मंगल अथवा शनि मेष, सिंह, मीन, धनु राशि पर स्थित होकर वक्री हो जाय तो गौ, मनुष्य, घोड़ा, हाथी तथा पक्षी समूह का, अथवा सम्पूर्ण दल का नाश कर देता है।

अशोकबन्धूकमणिप्रवालसन्तप्तताम्रामलकिंशुकाभः।
एवं विधः सन्नुदितो महीजः शुभाय वृद्ध्यै भवति प्रजानाम्।।

बुधचार फल -

बुधोदयः सर्वजगद्विपत्त्यै भवेत्कदाचिद्भृशमन्यथा वा।
वृष्ट्यर्घवाय्वग्निभयप्रदश्च तेभ्यो भयं कुत्रचिदन्यथा वा।।

बुध का उदय सम्पूर्ण जगत् की विपत्ति के लिए होता है। अथवा कभी कुछ अन्यथा भी हो जाता है। वृष्टि, महंगाई, वायु तथा अग्नि का भय देने वाला अथवा कहीं-कहीं इनसे अन्यथा भय भी होता है।

पुरन्दरश्रीपतिवैश्वदेववसुस्वयम्भूड्षु चन्द्रसूनुः।
चरन्करोति प्रचुरार्घवृष्टिं नृपाहवातिमतीवपीडाम्।

ज्येष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा, स्वयं इन नक्षत्रों में यदि बुध विचरण करें तो बहुत अधिक मात्रा में महंगाई एवं वृष्टि होती है। राजाओं को युद्ध भय तथा अत्यधिक पीड़ा भी होती है।

आद्रादितिज्याहिमघासु भेषु चरन्प्रजानामतुलां च पीडाम्।
करोति शीतांशुसुतो वलीयान्क्षुच्छस्त्रवृष्ट्यामयशत्रुभिश्च।।

आद्र्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा तथा मघा नक्षत्रों में विचरण करता हुआ बुध प्रजाओं को अत्यधिक पीड़ा देता है। इस स्थिति में बुध बली होने पर शस्त्रभय, वृष्टि, रोग तथा शत्रु देने वाला होता है।

हस्तद्वयस्वातीविशाखमैत्रसुरेशधिष्ण्यानि हि पीडयन्बुधः।
करोति तैलाज्यरसादिवस्तु१समृद्धिदस्तत्र गवादिपीडाम्।।

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा नक्षत्रों में विचरण करने से बुध पीड़ा देता हुआ तेल, घी, रस, वस्तु अथवा वस्त्र की समृद्धि करता है। किन्तु वहां गाय आदि पशुओं को पीड़ा देता है।

हौतभुगजपादायमयाम्यक्र्षेषु शीतदीधितेस्तनयः।
अतिविपुलकरोत्यग्निं घ्नन् देहभृतां सप्तधातुविकलकरः।।

पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा भरणी आदि नक्षत्रों में यदि बुध विचरण करता हो तो अत्यधिक मात्रा में अग्नि से प्राणियों को दहन करता है। तथा सप्तधातुओं को विकल करता है।

वारुणनैर्ऋतपौष्णान्नुपमृद्नन् साश्विनानि चन्द्रसुतः।
सलिलजभेषजतुरगक्रयविक्रयजीविनां च नाशकरः।

शतभिषा, मूल, रेवती, स्वाती तथा अश्विनी आदि नक्षत्रों में यदि बुध भ्रमण करे तो जल से उत्पन्न, दवा, घोड़ा के क्रय-विक्रय करने वाले लोगों का नाश करता है।

विशदं त्वाहिर्बुध्न्यभमेकं चन्द्रात्मजो विमृद्नीयात्।
विपुलामयशस्त्रभयं क्षुयमतुलं प्रजानां च।।

निर्मल उत्तराभाद्रपद नामक नक्षत्र में यदि बुध भ्रमण करता है। तो विपुल रोग तथा शस्त्र भय तथा सम्पूर्ण प्रजाओं में बुभुक्षा भय उत्पन्न होता है।

प्राकृतमिश्रसंक्षप्ततीक्ष्णयोगान्तिकघोरपापाश्च।
सप्तविधा गतिभेदा हिमकरतनयस्य विविधफलदाः स्युः।।

प्राकृतिक, मिश्रित, संक्षिप्त, तीक्ष्ण, योग में बुध के विचरण करने से भयंकर पाप होता है। और बुध के सात प्रकार के गतिभेद होने पर अनेक प्रकार के फल प्राप्त होते हैं।

अनिलानलकमलजयमधिष्ण्यैः स्यात्प्राकृताभिधानगतिः।
पितृशशिशंकरभुजगैर्धिष्ण्यैर्गतिरपरा मिश्रसंज्ञा च।।

कृत्तिका पूर्वाषाढ़ा तथा रोहिणी नक्षत्रों में बुध के गमन करने से प्रकृति समान रहती है। किन्तु मघा, मृगशिरा, आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्रों में बुध की गति होने पर दूसरी मिश्र नामक संज्ञा होती है।

भगाद्वितयादितिभद्वितयैः संक्षिप्रसंज्ञिका विपुला।
भाद्रपदद्वयवासवभद्वितर्यश्च विमलतीक्ष्णाख्या।।

पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्रों की विपुला संक्षिप्रसंज्ञा कही गयी है। पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभद्रपद, धनिष्ठा तथा शतभिषा नक्षत्रों की विमल तीक्ष्ण संज्ञा दी गयी है।

योगान्तिकगतिरतुला नैर्ऋतमारम्भत्रितये।
श्रवणत्रितयं त्वाष्ट्रभमृक्षचतुष्कं च घोरसंज्ञा सा।।

मूल से आरम्भ करके तीन नक्षत्रों की अर्थात् मूल पूर्वाषाढ़ा एवं उत्तराषाढ़ा की अतुला योगान्तिक संज्ञा दी गयी है। तथा श्रवण आदि तीन नक्षत्रों की तथा चित्रा आदि चार नक्षत्रों की घोर संज्ञा कही गयी है।

दिनकरमित्रविशाखाभत्रितयं भवति पापरूपाख्या।
प्राकृतगत्यां राजप्रवृद्धिरारोग्यसस्यवृद्धिः स्यात्।।

हस्त, अनुराधा एवं विशाखा आदि तीन नक्षत्रों की पापरूप संज्ञा होती है। इनमें प्रकृति की गति में तथा राजाओं की वृद्धि, आरोग्य तथा फसल की वृद्धि होती है।

मित्रविरोधः सततं भवति तयोः क्षिप्रमिश्रयोर्गत्योः।।
अपरासु गतिषु नियतं विपरीतं भवति सर्वजन्तूनाम्।।

उन दोनों क्षिप्र और मिश्र नामक संज्ञाओं में बुध की गति होने पर हमेशा मित्रों से विरोध होता है। तथा दूसरी गतियों में बुध के गमन होने पर सम्पूर्ण प्राणियों की विपरीत गति होती है।

विकला ऋज्व्यनुवक्रा वक्राख्या बोधनस्य गतिभेदाः।।
विविधफलं तासु करोत्यविकलमेवं वलीयांश्चेत्।।

विकला, सरला, अनुवक्रा, वक्रा बुध के गति-भेद जानने चाहिए। इनमें अविकल तथा बली होने से बुध अनेक प्रकार के फलों को करता है।

शस्त्रभयामयजननी विकला ऋज्वी च देहिनां शुभदा।।
अर्थविनाशनकरी त्वनुवक्रा भूपयुद्धदा वक्रा।।

बुध की विकला गति होने पर शस्त्र का भय तथा रोग पैदा करने वाली होती है। जबकि सरलागति में होने पर प्राणियों को शुभ फल देता है। अनुवक्रा गति में रहने पर धन का विनाश करता है।

बोध प्रश्न

1. वशिष्ठ संहिता किसकी रचना है?
   क. वशिष्ठ   ख. नारद   ग. लोमश   घ. भृगु
2. सूर्य जब मकरादि से मिथुन तक छः राशि में रहता है तो क्या होता है।
   क. उत्तरायण   ख. दक्षिणायन   ग. शुक्ल पक्ष   घ. कोई नहीं
3. सूर्य के दो राशि का भोग करने पर क्या फल होता है।
   क. पक्ष   ख. मास   ग. ऋतु   घ. अयन
4. जिस मास सूर्य की संक्रान्ति न हो, वह क्या कहलाता है।
   क. अधिमास   ख. क्षयमास   ग. मलमास   घ. कोई नहीं
5. द्विसंक्रान्ति मास क्या होता है।
   क. अधिमास   ख. क्षयमास   ग. मलमास   घ. कोई नहीं

१.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि संहिता ज्योतिष में सभी ग्रहों के ग्रहचार के साथ-साथ उनके अलग-अलग स्थितियों के अनुसार शुभाशुभ फलों का भी वर्णन किया है। वृहत्संहिता, नारद संहिता, भृगु संहिता आदि समस्त संहिता ग्रन्थों में ग्रहचार फल का उल्लेख मिलता है। महात्मा वशिष्ठ ने भी अपने ग्रन्थ वशिष्ठ संहिता में सभी ग्रहों का ग्रहचार फल के नाम से

अध्यायों का सृजन किया है। सूर्य का चार फल है कि संसार के शुभाशुभ ज्ञान के लिए क्षयमास तथा अधिकमास के साथ-साथ अन्य मासों का निर्णय विवाह, संक्रान्ति, दिनार्द्ध का निश्चय एवं सम्पूर्ण प्रपंच सूर्य के चार अर्थात् गति के अधी होते हैं। सूर्य मकर से छः राशि तक उत्तरायण तथा कर्क राशि से छः राशि तक दक्षिणायन तथा दो राशियों तक सूर्य के भोग की ऋतु इसी प्रकार शिशिर आदि छः ऋतुएं क्रमशः होती रहती हैं। चैत्रादि द्वादश मास क्रमशः मेषादि बारह राशियों में सूर्य के भ्रमण से होते हैं। क्षयमास एवं अधिकमास सूर्य के चार वश नियतकाल के बिना ही आते हैं।चन्द्रमा के चारफल के अन्तर्गत कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के अन्त से प्रतिमास चन्द्रमा अस्त हो जाता है। वह निरन्तर अमावस्या के अन्त में राश्यादि से नियत फलों को देता है। निर्मल प्रतिपदा के अन्त में, सूर्य से मुक्त हो करके उदय होता है। बारह अंशों से वृद्धि होने पर तिथियां चन्द्रमा से उत्पन्न कही गयी हैं। चन्द्रमा के उदित होने पर यदि मेष या मीन राशि हो और उसकी सींग दक्षिण की ओर उठा हुआ हो तो सुभिक्ष होता है। और यदि वृष या कुम्भ राशि हो और सींग समान हो तो सम्पूर्ण संसार में लोगों में आपस म प्रेम होता है। इसी प्रकार मंगल एवं बुध का भी चार फल कहा गया है।

१.६ पारिभाषिक शब्दावली

ग्रह चार – ग्रह चलन

भौम - मंगल

ज्ञ – बुध

सौर – सूर्य

श्रृंग – सींग

तिथि – शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त १५ तिथि होती है, वहीं कृष्णपक्ष में भी १५ तिथि ही होती हैं केवल १५ वीं तिथि अमावस्या होती है। तिथि से १५ का ही बोध होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष में १५ वीं तिथि अमावस्या होती है।

१.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. ग
4. क
5. ख

१.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वशिष्ठ संहिता – मूल लेखक – भास्कराचार्यः, टिका – पं. सत्यदेव शर्मा
2. वृहत्संहिता – आर्ष ग्रन्थ, टिका – कपिलेश्वर शास्त्री/ प्रोफे. रामचन्द्र पाण्डेय

१.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. नारद संहिता
2. वृहत्संहिता
3. मकरन्दप्रकाश

१.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. सूर्य का चार फल लिखिये।
2. वशिष्ठ संहिता के अनुसार चन्द्रमा का फल लिखिये।
3. बुध का चार फल लिखिये।
4. मंगल के चार फल का प्रतिपादन कीजिये।

इकाई – 2 गुरू, शुक्र, शनि, राहु, केतु चारफल

इकाई की संरचना

२.१. प्रस्तावना
२.२. उद्देश्य
२.३. गुरु एवं शुक्र चारफल
२.४. शनि, राहु एवं केतु चारफल
२.५. सारांश
२.६. पारिभाषिक शब्दावली
२.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
२.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
२.९. सहायक पाठ्य सामग्री
२.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

२.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – गुरू, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु चारफल। इससे पूर्व आप सभी ने सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं बुध ग्रह के चारफल का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसी क्रम में आगे गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु के चार फल का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ग्रहों से सम्बन्धित चार फल का अब आपके ज्ञनार्थ किया जा रहा है।

अत: आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े ग्रहों के चारफल की कड़ी में पूर्व अध्याय में कथित ग्रहों के अतिरिक्त शेष ग्रहों का चारफल को समझते हैं।

२.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि गुरु का चार फल क्या है।
- समझा सकेंगे कि शुक्र का चारफल क्या है।
- शनि ग्रह का चारफल से अवगत हो जायेंगे।
- राहु एवं केतु ग्रह के चारफल को जान जायेंगे।

२.३. गुरू एवं शुक्र चार फल

ग्रहचार फल क्रम में अब आगे इस इकाई में गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ग्रहों का चारफल दिया जा रहा है। आप सभी उसका अध्ययन कीजिये।

गुरु चार फल -

मासेषु चोर्ज्जादिषु कृत्तिकाद्द्वयं द्वयं च क्रमशोऽश्विभात्स्यात्।
त्रिभान्नभस्येषतपस्यमासाः शुक्लान्तयुक्तर्क्षवशादजस्त्रम्।।

कृत्तिकादि दो-दो नक्षत्रों से क्रमशः कार्तिक मास, तथा आश्विन मास, श्रावण मास तथा ज्येष्ठा से इसी प्रकार से शुक्ल पक्ष के अन्त में युक्त नक्षत्र के कारण अन्य मास कहे गये हैं।

उदेति धिष्ण्येन सुरेन्द्रमन्त्री तेनैव तन्नाम भवेत्तु वर्षम्।
ज्ञेयानि तत्कार्तिकपूर्वकाणि भवन्ति तेषां च फलं च सम्यक्।।

जिस नक्षत्र में बृहस्पति उदित होता है उसी नाम से उसी प्रकार वह वर्ष कहा जाता है। इसे कार्तिक मास से जानना चाहिए। इनका ठीक फल कहा जा रहा है।

सितरक्तहरितपीतद्रव्याणां वृद्धिरतुला स्यात्।

शकटकृषीवलवणिजां पीडा स्यात्कार्तिके वर्षे।।

जब कार्तिक मास में बृहस्पति को वर्षारम्भ हो तो श्वेत, लाल, हरा, पीले द्रवों की अत्यधिक वृद्धि होती है। गाड़ी वाहकों, किसान तथा बणिकों को पीड़ा होती है।

सौम्येऽब्दे सस्यानां भयमीतिभ्यो निरन्तरं जगति।

पौषे निवृत्तवैरा राजानो व्याधिपीडितास्त्वपरे।।

अगहन मास में वर्षारम्भ होने पर फसलों का भय तथा संसार के लिए ईति भय बना रहता है। पौष मास में राजाओं में आपस में बैर की निवृत्ति तथा दूसरे लोग रोग से पीड़ित होते हैं।

माघे सस्यविवृद्धिर्महदर्घं कर्म पौष्टिकं प्रचुरम्।

सुरपितृपूजावृद्धिर्भवति जनानां च हार्दितो भीतिः।।

माघ मास में फसल की वृद्धि, महंगाई, प्रचुर मात्रा में पौष्टिकता, देवता-पितरों की पूजा में वृद्धि, लोगों में हृदय सम्बन्धी भय होता है।

फाल्गुनमासे वृद्धिः क्वचित्क्वचित्तद्वदर्घसस्यानि।

जन्तूनामारोग्यं परस्परं हन्तुमुद्यता भूपाः।।

फाल्गुन मास में वृद्धि, कहीं-कहीं उसी प्रकार से अन्न की वृद्धि, प्राणियों में आरोग्यता तथा परस्पर राजा एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत रहते हैं।

चैत्रे स्त्रीजनहानिः क्रोधवशा भूमिपालकाः सर्वे।

क्षेमं सुभिक्षमतुलं प्रीतिद्र्विजसाधुजन्तूनाम्।।

चैत्र मास में स्त्री जनो की हानि, सम्पूर्ण राजा लोग क्रोण के वशीभूत तथा कल्याण एवं अत्यधिक सुभिक्ष ब्राहमण, साधु आदि प्राणियों में प्रीति बनी रहती है।

द्विजपशुसज्जनवृद्धिर्वैशाखे शान्तिसंयुताः सर्वे।

अध्वग्निरताः सर्वे भूसुरनिकराश्च सस्यसम्पूत्त्रिः।।

बैशाख मास में ब्राहमण, पशु एवं सज्जनों की वृद्धि तथा सभी शान्ति से युक्त रहते हैं। सभी ब्राहमण अपने मार्ग में निरत यज्ञ करते रहते हैं तथा फसल की पूर्ति रहती है।

ज्येष्ठेऽब्दे निखिलजनाः स्वे स्वे कर्मप्रवत्र्तका जगति।

सततं ज्ञातिषु वैरं कुर्वन्त्यवनीश्वरा न तथा।।

ज्येष्ठ मास में आरम्भ होने पर संसार के सभी लोग अपने-अपने कर्म में लगे रहते हैं। निरन्तर

अपनी जातियों में बैर करते हैं किन्तु राजा लोग ऐसा नहीं करते।

आषाढेऽब्दे प्रचुरं पीड्यन्ते सर्वसस्यानि।

कमिकीटादिभिरतुलं त्वपरं सस्यं च वृद्धिमाप्नोति।।

आषाढ़ मास में आरम्भ होने पर सम्पूर्ण फसलों को अत्यधिक पीड़ा, कृषि आदि की वृद्धि होती है। किन्तु कुछ दूसरी फसलों (अन्न) में वृद्धि होती है।

श्रावणवर्षे क्षेमं सस्यान्यखिलानि पाकमुपयान्ति।

राजक्षोभैरतुलं निखिलजनाः पीडिताः सततम्।।

श्रावण मास में वर्षारम्भ होने पर सम्पूर्ण फसलों का कल्याण होता है तथा सम्पूर्ण फसलें पक भी जाती हैं। राजाओं में अत्यधिक क्षोभ रहता है। अन्य सभी लोग निरन्तर पीड़ित रहते हैं।

भाद्रपदेऽब्दे षण्डास्तक्ता ये च ते निपीड्यन्ते।

पूर्वं यत्सस्य...च निखिलं निष्पत्तिमुपयान्ति।।

भाद्रपद मास में जो नपुंसक या उनके भक्त हैं वहीं पीड़ित होते हैं। और पूर्व में कहे गये जो फसल आदि हैं। उन सबकी उत्पत्ति होती हैं।

अश्वियुजेऽब्दे वृष्टिर्भवति च नाना निरामयं क्षेमम्।

अपरं सस्यं न स्यात्कुत्रचिदीतिः प्रचापीडा।।

आश्विन मास में वर्षारम्भ होने पर अधिक वृष्टि होती है। अनेक प्रकार से लोग रोगरहित तथा कल्याण को प्राप्त होते हैं। तथा दूसरी फसलों को कहीं से भी ईति का भय तथा प्रजा को पीड़ा नहीं होती।

भानां यदा सौम्यगतिः सुरेज्यस्तदा जनानामभयप्रदः सः।

व्याधिप्रदो दक्षिणमार्गगामी भूदेवभूमीश्वरनाशदश्च।।

जब नक्षत्रों में बृहस्पति सौम्य गति से गमन करता है तो सम्पूर्ण लोगों को निर्भयता प्रदान करता है। किन्तु दक्षिण देश वाले रोगग्रस्त होते हैं। ब्राहमणों तथा क्षत्रियों का नाश भी होता है।

वहेर्भयंवहिसमानवर्णः पीतश्च रोगं हरितोऽरिभीतिम्।

श्यामस्तु युद्धं सततं करोति रक्तः क्षितीशद्विजकामपीडाम्।।

बृहस्पति उदय होने पर यदि अग्नि के समान वर्ण वाला हो तो अग्नि का भय करता है। पी वर्ण होने पर रोग देता है। हरा वर्ण होने पर शत्रुभय होता है, काला वर्ण होने पर हमेशा युद्ध कराता है तथा लाल वर्ण होने पर राजा एवं ब्राहमणों में काम की पीड़ा होती है।

प्रभवो १ विभवः २ शुक्लः ३ प्रमोदो४ऽघ प्रजापतिः५।

अङ्गिराः ६ श्रीमुखो ७ भावो ८ युवा ९ धाता १० तथेश्वरः ११॥

1. प्रभव 2. विभव, 3. शुक्ल, 4. प्रमोद, 5. प्रजापति, 6. अङ्गिरा, 7. श्रीमुख, 8. भाव, 9. युवा, 10. धाता तथा 11 वाँ ईश्वर संवत्सर होता है।

बहुधान्यः १२ प्रमाथी च १३ विक्रमो १४ वृषवत्सरः १५।

चित्रभानुः १६ सुभानुश्च १७ तारणः १८ पार्थिवो १९ व्ययः २०॥

12. बहुधान्य, 13. प्रमाथी, 14. विक्रम, 15. वृष, 16. चित्रभानु, 17. सुभानु, 18. तारण, 19. पार्थिव तथा बीसहवां व्यय संवत्सर होता है।

सर्वजित् 21 सर्वधारी च 22 विरोधी 23 विकृतः 24 खरः 25।

नन्दनो 26 विजय 27 श्चैव जयो 28 मन्मथ 29 दुर्मुखौ 30॥

21. सर्वजित, 22. सर्वधारी, 23. विरोधी, 24. विकृत, 25. खर, 26. नन्दन, 27. विजय, 28. जय, 29. मन्मथ तथा तीसहवां दुर्मुख नामक संवत्सर होता है।

हेमलम्बो 31 विलम्बश्च 32 विकारी 33 शार्वरी 34 प्लवः 35।

शुभकृ 36 च्छोभकृ 37 त्क्रोधी 38 वि...वसु 39 पराभवौ 40॥

31. हेमलम्ब, 32. विलम्ब, 33. विकारी, 34. शार्वरी, 35. प्लव, 36. शुभकृत्, 37. शोभ कृत्, 38. क्रोधी, 39. वि...वसु तथा चालीसवाँ पराभव नामक संवत्सर होता है।

प्लवंगः 41 कीलकः 42 सौग्यः 43 साधारण 44 विरोधकृत् 45।

परिधावी 46 प्रमादी 47 स्यादानन्दो 48 राक्षसो 49 नलः 50॥

म...मती टीकाः 41. प्लवंग, 42. कीलक, 43. सौम्य, 44. साधारण, 45. विरोधकृत, 46. परिधावी, 47. प्रमादी, 48. आनन्द, 49. राक्षस तथा पचासवाँ नल नामक संवत्सर होता है।

पिंगलः 51 कालयुक्तश्च 52 सिद्धार्थो 53 रौद्र 54 दुर्मती 55।

दुन्दुभी 56 रुधिरोकारी 57 रक्ताक्षी 58 क्रोधनः 59 क्षयः 60॥

म...मती टीकाः 51. पिंगल, 52. कालयुक्त, 53. सिद्धार्थ, 54. रौद्र, 55. दुर्मति, 56. दुन्दुभी, 57. रूधिरोद्गारी, 58. रक्ताक्षी, 59. क्रोधन तथा साठवाँ क्षय नामक संवत्सर होता है।

अब्दैर्युगं पंचभिरब्दषष्ट्या युगानि च द्वादश वै भवन्ति।

पंचाब्दनाथाः क्रमशो युगस्य वहयर्कचन्द्राब्जजशंकराः स्युः॥

पाँच-पाँच संवत्सरों का सूमह बनाकर साठ संवत्सरों में युग बारह बनते हैं। अर्थात् एक-एक युग में पांच प्रभव वर्षादि के बारह युग होते हैं या प्रभवादि पांच-पांच की युग संध्या होती है। इन पांचों वर्ष वाले युगों के स्वामी क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, अज तथा शंकर होते हैं।

कृष्णः सूरिस्त्विन्द्रो ज्वलनस्त्वष्टा चाहिर्बुध्न्यः पितरः।
विश्वे चन्द्रस्त्वन्द्रो दहनस्त्वश्चन्याख्यो भगस्त्वपरः।।

कृष्ण, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, त्वष्ट्रा, अहिर्बुध्न्य, पितर, विश्वदेवता, चन्द्रमा, इन्द्र, अश्विनी कुमार तथा अन्य भग आदि स्वामी होते हैं।

अब्दे प्रभवेऽग्निकोपः सन्तीतयः पैत्तकफाश्च रोगाः
स्तोकं जलं मु...ति वारिवाहः सदा प्रमोदन्ति जनाश्च सर्वे।।

प्रभव संवत्सर के आरम्भ होने पर अग्नि का कोप पित्त एवं कफ का रोग होता है। बादल थोड़ी वर्षा करते हैं किन्तु सभी लोग सदा प्रसन्न रहते हैं।

वृष्टिः प्रभूताखिलसस्यवृद्धिर्जनानुरागं विभवे प्रवृत्ते।
अन्योऽन्ययुद्धैः क्षितिपालकानां न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि।।

विभव संवत्सर के आरम्भ होने पर अधिक वृष्टि होती है। सम्पूर्ण अन्नों की वृद्धि होती है। लोग आपस में प्रेम करते हैं। राजा लोग एक दूसरे से युद्ध करते हैं। किन्तु लोग फिर भी दुःख नहीं पाते।

शुक्रचार फल

शुक्रचार में नौ बीथिका, तीन मार्ग और छः मण्डल होते हैं। ये नौ बीथियां हैं। 1. नाग, 2. गज, 3. ऐरावत, 4. वृष, 5. गो, 6. जरद्गौ, 7. मृग, 8. अज, 9. दहन। तीन मार्ग हैं - उत्तर, मध्य और दक्षिण। इन्हीं नौ बीथियों में शुक्र का गमन होता है। इसे विस्तार से बताया जा रहा है।

मध्यमरेखानियतं गोवीथिर्भवति मध्यरेखातः।
वृषभैरावतगजनागाख्या वीथयः कुबेरदिग्भागे।।1।।

मध्य मार्ग में नियत मध्यम रेखा से गोबीथी होती है। वृषभ, ऐरावत, गज, नाग, बीथी, कुबेर के दिक्भाग अर्थात् उत्तर मार्ग में होती है।

दक्षिणतोऽपि जरवमृगाजदहनाश्च नवभेदाः।
वीथेरेकैकस्याक्र्षत्रितयं क्रमेण धिष्ण्यानि।

दक्षिण मार्ग में जरद्गौ, मृग, अज तथा दहन बीथियां होती हैं। ये कुल नौ भेद से कही गयी हैं।

इन बीथियों के एक-एक में तीन-तीन नक्षत्र क्रमशः हुआ करती हैं।

दिनकरधिष्ण्यात्त्रितयं गोवीथिगतं द्विदैवधिष्ण्यातः।

द्वादश भानि क्रमशो दक्षिणवीथेश्चतुष्टयस्थानि।।

हस्त नक्षत्र से तीन नक्षत्र अर्थात् हस्त, चित्रा, स्वाती, गोबीथी के अन्तर्गत और विशाखा नक्षत्र से बारह नक्षत्र तक क्रमशः जरद्गौ, मृग, अज्र एवं अग्नि चार स्थानों में बारह नक्षत्र आ जाते हैं।

आश्विनभादिद्वादशधिष्ण्यान्युत्तरवीथेश्चतुष्टयस्थानि।

अथ कथयामि नवानां वीथीनां फलानि तान्यधुना।।

अश्विनी नक्षत्र से बारह नक्षत्र अर्थात् अश्विनी, भरणी, कृत्तिका नागबीथी रोहिणी, मृगशिरा एवं आद्र्रा गजबीथी के अन्तर्गत पुनर्वसु पुष्य एवं आश्लेषा ऐरावत बीथी के अन्तर्गत तथा मघा पूर्वा फाल्गुनी एवं उत्तरा फाल्गुनी वृष बीथी के अन्तर्गत आते हैं। अब इन नौ बीथियों के फलों को इस समय कहा जा रहा है।

नागवीथिविचरन्भृगोः सुतः पश्चिमदिशि च वृष्टिनाशकृत्।

क्षेमकृत्सुखकरो गजवीथ्यांमर्घवृद्धिमतुलां करोतिर सः।।

नाग बीथी के अन्तर्गत विचरण करता हुआ शुक्र पश्चिम दिशा मेंर वृष्टि का नाश करता है। किन्तु गज बीथी के अन्तर्गत गमन करने पर कल्याण एवं सुख के साथ अत्यधिक महंगाई करता है।

शालीक्षुगोधूमयवादिसस्यसम्पूर्णधात्री नितरां विभाति।

ऐरावतोक्षाहययोश्च वीथ्योः स्थिते सिते संयति राजनाशः।।

मकृमती टीकाः ऐरावत एवं नाग बीथी में विचरण करने पर शुक्र धान गन्ना, गेहूं, जौ आदि फसलों से सम्पूर्ण पृथ्वी शोभायमान होती है। किन्तु राजा का नाश होता है।

गोवीथिगे दैत्यपुरोहिते भूर्विभाति नानाविधसस्यवृद्ध्या।

जरवायां मृगसंज्ञितायां मध्यार्घवृष्टिर्महदाहवश्च।।

गो बीथी में शुक्र के भ्रमण करने पर पृथ्वी अनेक प्रकार के अन्नों की वृद्धि से शोभायमान होती है। जबकि जरद्गौ एवं मृग बीथी में शुक्र के गमन करने पर मध्यम महंगाई तथा मध्यम वृष्टि होती है।

क्षितीशसंग्रामजभीतिरीतिर्वह्नेर्भयं वारिभयं जनानाम्।

अजाग्वीथ्योरतुलाग्निभीतिः क्वचित्क्वचिद्वर्षति वासवोऽपि।।

अज और अग्नि बीथी में शुक्र के गमन करने पर राजाओं में परस्पर युद्ध का भय, ईति का

भय, अग्नि का भय तथा लोगों को जल का भय बना रहता है। मेघ भी कहीं-कहीं बरसते हैं।

उदग्वीथिषु दैत्येज्यश्चस्तगश्चोदितोऽपि च।

सुभिक्षकृन्मध्यवीथ्यां सामान्यो याम्योगोत्रभः।।

यदि उत्तर बीथी स्थित शुक्र का उदय या अस्त हो तो सुभिक्ष होता है। और मध्य बीथी में हो तो सामान्य तथा दक्षिण बीथी में कष्ट देने वाला होता है।

स्वातीत्रये पूर्वदिशि पश्चिमे पितृपंचके।

अनावृष्टिकरः शुक्रो विपरीतः सुवृष्टिकृत।।

स्वाती से तीन नक्षत्र अर्थात् स्वाती, विशाखा और अनुराधा। पूर्व दिशा में मघा आदि पांच नक्षत्रों में अर्थात् मघा, पूर्वा फाल्गनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त एवं चित्रा। पश्चिम दिशा में उदय या अस्त हो रहा हो तो शुक्र अनावटि करने वाला होता है। किन्तु इसके विपरीत रहने पर सुभिक्ष करता है।

दुष्टः समस्तदिवसे भयदश्चामयोद्धवः।

दिनार्द्धं प्रति दृष्टश्चेत्परेषां बलभेदकृत।।

यदि यह सम्पूर्ण दिन दिखाई पड़े तो भय देने वाला और रोग को उत्पन्न करने वाला होता है। यदि दिनार्द्ध के बाद दिखाई पड़े तो परस्पर एक दूसरों में तथा सेना में भेद करता है।

भिनत्ति रोहिणीचक्रं शुक्रः पैतृभतारकम्।

यदा तदा करोत्येनां कपालास्थिमयीं धराम्।।

यदि शुक्र रोहिणी चक्र का अथवा मघा नक्षत्र का भेदन करें तब सम्पूर्ण पृथ्वी को अस्थि और कपालमयी कर देता है।

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममायां यदि भार्गव।

उदयं चास्तमनं च करोत्यम्बुमयीं क्षितिम्।।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी अथवा अमावस्या को यदि शुक्र उदय या अस्त होता हो तो सम्पूर्ण पृथ्वी को जलमयी बना देता है।

प्राक्पश्चिमस्थौ सुरदानवेज्यौ परस्परं सप्तमराशिसंस्थौ।

तदा जनानां भयदो जलाग्निरोगास्त्रचैराग्निनिशाचरेभ्यः।।

२.४ शनि, राहु एवं केतु चार फल

शनि चार फल -

रौद्रार्कवारीशमरुद्द्विदैवमुकुन्दभेष्वर्कसुतः करोति।
चरन् सुभिक्षं विपुलं पृथिव्यां गौडाश्मकाश्मीरपुलिन्दहानिः।।

आर्द्रा, हस्त, शतभिषा, स्वाती, विशाखा तथा श्रवण नक्षत्रों में शनि भ्रमण करता है। तो पृथ्वी अधिक सुभिक्ष युक्त होती है। किन्तु गौड़ देशवाले, अश्म, काश्मीर तथा पुलिन्द लोगों की हानि होती है।

मैत्राख्यसंक्रंदनपौष्णभेषु चरन् सदा सूर्यसुतः। करोति।।
ईतेर्भयं व्याधिभयं प्रजानां कलिंगवाहीकजनाभिवृद्धिम्।।

अनुराधा भरणी, रेवती नक्षत्रों में जब शनि भ्रमण करता है। तब प्रजाओं में ईति का भय तथा रोग का भय होता है। किन्तु कलिंक, बाहीक स्थान के लोगों की अभिवृद्धि होती है।

तयोरहिर्बुध्न्यभयाम्ययोश्च धराधिपानां कलहस्त्ववृष्टिः।।
अनुक्तभेष्वर्कसुतः प्रजानां चरन् तदा मध्यमवृष्टिदः स्यात्।।

उत्तराभाद्रपद एवं पूर्वाभाद्रपद में जब शनि भ्रमण करता है। तब राजाओं में कलह होती है। और वृष्टि नहीं होती। जो नक्षत्र नहीं कहे गये हैं इनमें यदि सूर्य पुत्र भ्रमण करें तब प्रजाओं के लिए मध्यम वृष्टि देने वाला होता है।

कीटाजपनकर्कटेषु चरंछनिः क्षुद्रपदः प्रजानाम्।।
वृष्टेर्भयं कु वदामयश्च तथापि जीवन्ति जनाः कथंचित्।।

वृश्चिक, मेष, सिंह तथा कर्क राशियों में जब शनि भ्रमण करता है तो छोटे पदों वाले प्रजाओं को अनुकूल किन्तु वृष्टि का कहीं-कहीं भय, फिर भी लोग जिस किसी प्रकार से जीवित रहते हैं।

कन्यानृयुग्गोधटचापसंस्थः स्वक्षेत्रसंस्थोऽपि शुभप्रदः स्यात्।।
वङ्गगङ्गकाश्मीरकलिंगगौडसौराष्टदेशेष्वशुभप्रदः स्यात्।।

कन्या राशि, मिथुन राशि, वृष राशि, कुम्भ राशि तथा धनु राशि स्थित होने पर अपने क्षेत्र पर स्थित होने पर लोगों के लिए शुभप्रद रहता है। बंगाल, बिहार तथा कश्मीर, कलिंग, गौड़ एवं सौराष्ट्र देश के लिए अशुभ हो जाता है।

प्रक्षुभ्यन्ति क्षितीशाः प्रचलितवसुधा मोदते दस्युवर्गो।

धीभ्रंशो बुद्धिभाजां जनपदहरणं चित्रवर्षी पयोदः।

चन्द्रार्कौ मन्दरश्मी ग्रहगणसहितो वान्ति वाताः प्रचण्डाः।

चक्राकारं समग्रं भ्रमति जगदिदं मीनगे सूर्यसूनौ।।

जब सूर्य पुत्र शनि मीन राशि में जाता है उस समय राजा लोग क्षुभित होते हैं। पृथ्वी चलायमान हो जाती है। चोरों, डाकुओं का समूह हर्षित हो जाता है। बुद्धिमानों की बुद्धि नष्ट हो जाती हैं। जनपद का हरण होता है। बादल विचित्र वर्षा करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा की किरणें ग्रहगणों के साथ मन्द पड़ जाती हैं। प्रचण्ड आँधी चलती है। और सम्पूर्ण जगत् चक्राकार भ्रमण करने लगता है।

राहुचार फल -

प्रच्छन्नामररूपं धृत्वा राहुः सुधाप्रदानेऽभूत्।

हरिरपि निखिलं ज्ञात्वाच्छिनद्धि चक्रेण तच्छीर्षम्।

अमृत बाँटने के समय राहु छिपकर देवता कास रूप धारण करके अमृत प्राप्त कर लिया। भगवान विष्णु सब कुछ जानकर चक्र के द्वारा उसका सिर काट डाले।

अमृतमयत्वान्नत्वा हरिं शिर उवाच विस्मिते सदसि।

दातव्या ग्रहसमता गतोऽस्मि मां रक्ष तव शरणम्।।

अमृतमय हो जाने के कारण उसका सिर भगवान को प्रणान करके सभा को आश्चर्यचकित करते हुए बोला कि मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करें। मुझे ग्रहों की बराबरी देनी चाहिए।

दत्त्वाष्टमग्रहत्वं पीतो विससर्ज तं राहुम्।

धातृवराच्चन्द्रमसं तुदति ततः सर्वपर्वणि च।।

अमृत पी लेने के बाद उस राहु को आठवें ग्रह का स्थान देकर छोड़ दिया। विधाता के वरदान से वह सभी पर्वो पर चन्द्रमा को कष्ट देता है।

अवनतिविक्षेपवशाद्दूराद्दूरं गतः सततम्।

षण्मासाभ्यन्तरिताद्ग्रहणं प्रायेण सम्भवति।।

अवनति और विक्षेप के कारण दूर से दूर निरन्तर गमन होने के कारण छः महीने के अन्दर प्रायः ग्रहण सम्भव होता है।

राहुरसौ दनुजत्वाद्भुजगाकारेण गृहाति।

भूगोलाधोभागे दर्पणसदृशे रवौ सदा भ्रमति।।

वह राहु राक्षस होने के कारण सर्प के आकार से सदा भ्रमण करता हुआ भूगोल के आधे भाग में दर्पण सदृश सूर्य को भ... करता है।

उद्धूताखिलधरणीछाया छादयति न्दुयुपरिम्।

स्थगयति रमुपरिस्थं पश्चदागत्य शीघ्रगश्चन्द्रः।।

सम्पूर्ण पृथ्वी की छाया अद्भूत होकर चन्द्रमा को ऊपर से ढक लेता है। और सूर्य को ऊपर से स्थित होकर उकता है। पश्चिम भाग से आकर शीघ्र चन्द्रमा को ग्रहण करता है।

गणितस्कन्धाज्ज्ञात्वा सृष्टयादेरिष्टपर्वपर्यन्तम्।

पर्वसमूहं यत्तत्सप्तभिरवशिष्टपर्वेशाः।।

गणित स्कन्द से ज्ञान करके सृष्टयादि से इष्ट पर्व अर्थात् ग्रहण लगने के पर्व पर्यन्त पर्व समूहों के सात स्वामी अर्थात् परिवेश कहे गये हैं।

धातृशशीन्द्रकुबेरा वरुणाऽग्नियमाश्च विज्ञेयाः।

एषां पर्वेशानां क्रमशस्तु फलानि वक्ष्यन्ते।।

धात्री, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरूण, अग्नि और यम क्रमशः जानने चाहिए। इन परिवेश के स्वामियों के फलों को क्रमशः कहा जा रहा है।

ब्राह्ये पर्वणि सम्यग्द्वजगोपसुवृद्धिरपरिमिता।

सौम्ये पर्वणि तद्वत्सज्जनहानिस्त्ववृष्टिजाद्धीतिः।।

यदि ब्रह्म पर्व में ग्रहण हो तो ब्राहमण और गोपों की वृद्धि होती है। जबकि चान्द्र पर्व में उसी प्रकार सज्जनों की हानि तथा अनावृष्टि से भय होता है।

शारदसस्यविनाशः क्षितिपतिकलहः सुवृष्टिरैन्द्रे स्यात्।

धनिकानां धनहानिस्त्वतुला वृष्टिश्च कौबेरे।।

ऐन्द्र पर्व में ग्रहण होने से शरद् ऋतु में धान्य का नाश होता है। राजाओं में कलह होता है। तथा सुन्दर वृष्टि होती है। किन्तु कौबेर पर्व में ग्रहण होने पर धनिकों के धन की हानि किन्तु अत्यधिक वृष्टि होती है।

निखिलजनानां वृद्धिः क्षेमकरी वारुणे च नृपहानिः।

आग्नेये चाग्निभयं त्वतुला वृष्टिः क्षितीशकलहश्च।।

वारूण पर्व में ग्रहण होने से राजाओं की हानि लेकिन सम्पूर्ण प्रजाओं की वृद्धि तथा कल्याण होता है। जबकि अग्नि पर्व में अग्नि भय, अत्यधिक वृष्टि तथा राजाओं में कलह होता है।

दुर्भिक्षकरं याम्यं लोकानां भीतिदं सततम्।

पर्वाधिपफलमुक्तं यत्तज्ज्ञातव्यं चेन्द्विनोग्र्रहणे।।

याम्य पर्व में ग्रहण होने पर दुर्भिक्ष होता है। और निरन्तर लोगों को भय बना रहता है। इस प्रकार से पर्वो के स्वामियों का फल कहा गया है। इसका ज्ञान चन्द्र ग्रहण में कर लेना चाहिए।

यद्येकस्मिन्मासे चन्द्रार्कोपपप्लवो यदा भवति।
आतंकानर्घभयं क्षितिपतिकलहं विजानीयात्।।

यदि एक मास में सूर्य एवं चन्द्रग्रहण हो तो आतंक एवं महंगाई होती है तथा राजाओं में परस्पर कलह जानना चाहिए।

उदगयनेऽर्कग्रहणं भवति च यदि वा शशांकस्य।
द्विजसज्जननृपहानिर्भवति परेषां च दक्षिणे त्वयने।।

उत्तरायण में सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो रहा हो तो ब्राहमण, सज्जन एवं राजा की हानि होती है। जबकि दक्षिणायन में ग्रहण होने पर अन्य दूसरे लोगों की हानि होती है।

ग्रस्तोदयगेऽस्तमिते शारदसस्यावनीशनाशः स्यात्।
क्षुद्भयमामयभयदं निखिलग्रहणं भवेद्यदि वा।।

सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण यदि ग्रस्तोदय हो अथवा ग्रहण के साथ अस्त हो रहा हो तो शरद् ऋतुओं के फसलों तथा राजा का नाश करता है। यदि सम्पूर्ण ग्रहण हो जाय तो क्षुदभय तथा रोग का भय देता है।

केतुचार फल -

केतोरुदयास्तमयं ज्ञातुं गणितान्न शक्यते यस्मात्।
दिव्यान्तरिक्षभौमास्तस्मात्त्रिविधाश्च केतवो जगति।।

केतु का उदय या अस्त गणित के द्वारा नहीं जाना जा सकता। कारण दिव्य, (आकाश में उत्पन्न) अन्तरिक्ष स्थान में उत्पन्न और भौम अर्थात् पृथ्वी पर उत्पन्न तीन प्रकार के केतु संसार में होते हैं।

एकोत्तरशतभेदा दृश्यन्ते वा सहस्त्रभेदास्ते।
औत्पातिकरूपत्वाद्भवन्ति बहवस्तथैको वा।।

101 भेद वाले केतु दिखाई देते हैं अथवा एक सहस्त्र भेद वाले केतु दिखाई देते हैं। ये सभी उत्पात करने वाले होते हैं। अथवा बहुत केतुओं को एक ही कहा गया है।

दिवि ऋक्षग्रहजास्ते दिव्याख्यकेतवो महाफलदाः।
परिवेषेन्द्रधनुरुल्कागन्धर्वनगराणि निर्घातः।
गगनविकारजमेतन्मध्यमफलदं तथान्तरिक्षं च।।

आकाश में नक्षत्र-ग्रहों से उत्पन्न दिव्य नामक केतु महाफल देने वाले होते हैं। परिवेष, इन्द्रधनुष, उल्का, गन्धर्व नगर, निर्घात ये सभी अन्तरिक्ष विकार से उत्पन्न होते हैं। इन्हें अन्तरिक्ष केतु कहते हैं। ये मध्यम फल देने वाले होते हैं।

भूमिभवा भौमाः स्युश्चरस्थिरा वस्तुसम्भवा ये च।

तेऽधमफलदास्तेषां कथयामि फलानि रूपाणि।।

भूमि से उत्पन्न होने वाले भौम केतु कहे जाते हैं। ये चर स्थिर तथा वस्तु सम्भव होते हैं। ये अधम फल देने वाले होते हैं। इन तीनों प्रकार के केतुओं के फलों को कहा जा रहा है।

वर्षैर्मासैः पक्षैः क्रमशः परिपाकमुपयान्ति।

स्निग्धः प्रसन्नरूपः शुक्लनिभो ह्रस्वदण्डवत्सौम्यः।।

वर्ष, मास एवं पक्ष में क्रमशः ये अपने-अपने परिणाम को देते हैं। चिकने, प्रसन्न रूप, श्वेत कान्ति वाले, ह्रस्व तथा सौम्य।

उदयास्तमये त्वेवं सुभिक्षसौख्यावहः केतुः।

धूमनिभो धूमाख्यः केतुर्दोषप्रदो भवति।।

उदय एवं अस्त के समय ये केतु सुभिक्ष और सुख देने वाले होते हैं। धूम्र के वर्ण वाला धूम नामक केतु दोष प्रदान करने वाला होता है।

इन्द्रशरासनरूपः स्थूलनिभो वार्थभीतिदः सम्यक्।

बहुभिः शिखाभिरतुला विद्युन्मणिहारहेमनिभाः।।

इन्द्रधनुष के रूप वाला, स्थूल कान्ति वाला, अनेक शिखाओं वाला, विद्युत, मणि, हार तथा स्वर्ण की कान्ति वाला केतु अर्थभय देने वाला होता है।

अपरेन्द्रदिशो दृश्या महाहवं तद्दिगीशानाम्।

शुकमुखबन्धूकनिभा वह्निसुताः क्षतजसन्निभा रूक्षाः।।

पश्चिम दिशा में दिखाई पड़ने वाले महाभयानक तथा उसी दिशा के स्वामी तोता के मुख के समान, दोपहरी पुष्प के कान्ति के समान, अग्नि के पुत्र क्षतजवर्ण (लाल) केतु चोट देने वाले होते हैं।

दृश्यन्ते यद्यनलदिशि तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः।

मृत्युसुता वक्रशिखाः कृष्णा रूक्षाः प्रहीणकराः।।

अग्निकोण में उदित होने वाले जितने केतु होते हैं वे सभी केतु भय देने वाले होते हैं। ये मृत्यु के पुत्र, वक्रशिखा वाले, कृष्ण और रूक्ष, प्रजा को नष्ट करने वाले होते हैं।

दृश्यन्ते याम्यायांर जनमरणभयप्रदास्तेऽपि।
क्षितितनया द्वात्रिंशद्दर्पणसदृशाः सरश्मयो विशिखाः।।

बोध प्रश्न -

1. जब कार्तिक मास में वृहस्पति को वर्षारम्भ हो तो किस वर्ण की वृद्धि होती है।
   क. श्वेत ख. लाल ग. हरा घ. सभी
2. जब नक्षत्रों में गुरु सौम्य गति गमन करता है तो क्या फल होता है।
   क. निर्भय ख. सुखी ग. दुःखी घ. कोई नहीं
3. प्रभवादि संवत्सरों की संख्या कितनी है।
   क. ५० ख. ६० ग. ७० घ. ८०
4. शुक्रचार में कितनी वीथिकाये होती है।
   क. ७ ख. ८ ग. ९ घ. १०
5. उदय एवं अस्त के समय ये केतु सुभिक्ष और क्या देने वाले होते हैं।
   क. सुख ख. दुःख ग. लाभ घ. हानि

२.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि कृत्तिकादि दो-दो नक्षत्रों से क्रमशः कार्तिक मास, तथा आश्विन मास, श्रवण मास तथा ज्येष्ठा से इसी प्रकार से शुक्ल पक्ष के अन्त में युक्त नक्षत्र के कारण अन्य मास कहे गये हैं। जिस नक्षत्र में बृहस्पति उदित होता है उसी नाम से उसी प्रकार वह वर्ष कहा जाता है। इसे कार्तिक मास से जानना चाहिए। इनका ठीक फल कहा जा रहा है।जब कार्तिक मास में बृहस्पति को वर्षारम्भ हो तो श्वेत, लाल, हरा, पीले द्रवों की अत्यधिक वृद्धि होती है। गाड़ी वाहकों, किसान तथा बणिकों को पीड़ा होती है। अगहन मास में वर्षारम्भ होने पर फसलों का भय तथा संसार के लिए ईति भय बना रहता है। पौष मास में राजाओं में आपस में बैर की निवृत्ति तथा दूसरे लोग रोग से पीड़ित होते हैं। शुक्रचार में नौ बीथिका, तीन मार्ग और छः मण्डल होते हैं। ये नौ बीथियां हैं। 1. नाग, 2. गज, 3. ऐरावत, 4. वृष, 5. गो, 6. जरद्गौ, 7. मृग, 8. अज, 9. दहन। तीन मार्ग हैं - उत्तर, मध्य और दक्षिण। इन्हीं नौ बीथियों में शुक्र का गमन होता है।

इसे विस्तार से बताया जा रहा है। मध्य मार्ग में नियत मध्यम रेखा से गोबीथी होती है। वृषभ, ऐरावत, गज, नाग, बीथी, कुबेर के दिक्भाग अर्थात् उत्तर मार्ग में होती है। दक्षिण मार्ग में जरद्गौ, मृग, अज तथा दहन बीथियां होती हैं। ये कुल नौ भेद से कही गयी हैं। इन बीथियों के एक-एक में तीन-तीन नक्षत्र क्रमशः हुआ करती हैं। आर्द्रा, हस्त, शतभिषा, स्वाती, विशाखा तथा श्रवण नक्षत्रों में शनि भ्रमण करता है। तो पृथ्वी अधिक सुभिक्ष युक्त होती है। किन्तु गौड़ देशवाले, अश्म, काश्मीर तथा पुलिन्द लोगों की हानि होती है। अनुराधा भरणी, रेवती नक्षत्रों में जब शनि भ्रमण करता है। तब प्रजाओं में ईति का भय तथा रोग का भय होता है। किन्तु कलिंक, बाहीक स्थान के लोगों की अभिवृद्धि होती है। उत्तराभाद्रपद एवं पूर्वाभाद्रपद में जब शनि भ्रमण करता है। तब राजाओं में कलह होती है। और वृष्टि नहीं होती। जो नक्षत्र नहीं कहे गये हैं इनमें यदि सूर्य पुत्र भ्रमण करें तब प्रजाओं के लिए मध्यम वृष्टि देने वाला होता है। इसी प्रकार राहु एवं केतु के भी फल समझ लिया होगा आपने।

२.६ पारिभाषिक शब्दावली

इज – वृहस्पति

भृगु - शुक्र

सौरि – शनि

सुधा– अमृत

ग्रहोदय – ग्रह का उदय

ग्रहास्त – ग्रह का अस्त होना

दिक्भाग – दिशाओं के भाग

२.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. क
3. ख
4. ग
5. क

२.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वशिष्ठ संहिता – मूल लेखक – महात्मा वशिष्ठ

2. वृहत्संहिता – वराहमिहिर, टीका – अच्युतानन्द झा

3. नारद संहिता – टीका - पं. रामजन्म मिश्र

२.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वृहत्संहिता

2. भृगु संहिता

3. अद्भुतसागर

4. लोमश संहिता

२.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. गुरु एवं शुक्र ग्रह का चार फल लिखिये।

2. शनि ग्रह का चार फल वर्णन कीजिये।

3. राहु का चारफल लिखिये।

4. केतु के चार फल का उल्लेख कीजिये।

इकाई - ३ अगस्त्य चार फल

इकाई की संरचना

३.१. प्रस्तावना
३.२. उद्देश्य
३.३. अगस्त्य परिचय
३.४. अगस्त्य चार फल
३.५. सारांश
३.६. पारिभाषिक शब्दावली
३.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
३.८. संदर्भ ग्रंथ सूची
३.९. सहायक पाठ्य सामग्री
३.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

३.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – अगस्त्य चार फल। इससे पूर्व आप सभी ने सूर्यादि समस्त ग्रहों के चारफल का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से अगस्त्य चार फल का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

वैदिक परम्परा में अगस्त्य ऋषि का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। पराक्रम में यह साक्षात् शिव के समान कहे जाते है। यह शिव के शिष्य भी है। अगस्त्य चार फल का उल्लेख हमें संहिता ग्रन्थों में पर्याप्त मिलता है।

आइए संहिता ज्योतिष से जुड़े अगस्त्य चार फल से सम्बन्धित विषयों की चर्चा क्रमश: हम इस इकाई में करते है।

३.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि अगस्त्य किसे कहते हैं।
- समझा सकेंगे कि ऋषि अगस्त्य का इतिहास क्या है।
- अगस्त्य के चारफल के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- अगस्त्य के चारफल का विवेचन करने में समर्थ हो सकेंगे

३.३. अगस्त्य परिचय

संहिता ज्योतिष में अगस्त्य मुनि का वर्णन किया गया है। साथ ही अगस्त्य चार फल का भी उल्लेख मिलता है संहिता के ग्रन्थों में। महात्मा अगस्त्य को शिव का अवतार कहा जाता है। अगस्त्य ऋषि स्वयं भगवान शिव के ही शिष्य थे। पुराणों के अनुसार संस्कृत, तमिल आदि कई भाषाओं का ज्ञान उन्होंने शिव के द्वारा ही प्राप्त किया था। पर्वत भी जिसके चलने से स्तम्भित हो जाय, उसका नाम अगस्त्य। ऋषि अगस्त्य ने एक बार अपने तपोबल से सम्पूर्ण समुद्र का पान कर लिया था। दक्षिण की गंगा कावेरी का उद्भव उन्हीं के प्रताप से हुआ था। ऐसे अनेक रहस्यों एवं असीमित शक्तियों से पूर्ण थे ऋषि अगस्त्य। इनके नाम से ब्राह्मणों की गोत्रावली भी चलती है।

अगस्त्य चार फल का वर्णन वृहत्संहिता, अद्भुतसागर आदि संहिता ग्रन्थों के अनुसार यहाँ किया जा रहा है। अब ग्रन्थानुसार ऋषि अगस्त्य का वर्णन करते है-

वृहत्संहिता ग्रन्थ के अनुसार अगस्त्यमुनिवर्णनम्-

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः।
पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारः समासादयम्।।

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये बढ़े हुये शिखर वाले विन्ध्याचल पर्वत को जिन्होंने रोक लिया, मुनियों के पेट को फाड़ने वाला और देवताओं के शत्रु वातापी राक्षस को जिन्होंने पचा डाला, समुद्र को जिन्होंने पी लिया और तपोरूप समुद्र से दक्षिण दिशा को जिन्होंने भूषित किया, जल राशि को निर्मल करने वाले उन अगस्त्य मुनि का संक्षेप से यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः।
पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानिव पुरा।।

पहले तत्क्षण जलप्रवाह से, मकर के नखों से उत्पाटित शिखर वाले अन्तर्गत पर्वतों से तथा परिमित रत्नों से युत मुकुट वाले देवताओं को तिरस्कार करने के लिये इधर-उधर अनेक पतित मुक्ताओं से मिश्रित श्रेष्ठ मणि और रत्नों से युत जलप्रवाहों से समुद्र को जिन्होंने अतिशय सुन्दर बनाया।

अन्य कथन -

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः।
निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः सागरोऽधिकतरं विराजितः।।

जिस अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने पर भी मणि, रत्न और प्रवालों से युत, वृक्ष तथा पंक्ति से पृथक् स्थित सर्पों से रहित पर्वतों के कारण समुद्र अतिशय शोभित हुआ है।।

अम्बुहरणे जलापहरणे कृतेऽपि सति सागरः समुद्रः। अधिक-तरमतिशयेन विराजितः शोभितः। कैः? भूधरैः पर्वतैः। कीदृशैः? विदुमैः। विगता दुमा वृक्षा येभ्यस्तैः। वृक्षरहितैः। जलमध्यगतत्वात्तेषु वृक्षाः क्लिन्ना यतः। तथा समणिरत्न-विद्रुमैः। मतणिरत्नैः प्रधानरत्नैर्विदुमेण प्रवालेन सह वर्तन्ते ये तैः। निर्गतैस्तदुरगैश्च। तदिति भूधराणां पराशर्मः। तदुरगैः। तेभ्यः पर्वतेभ्यो ये उरगाः सर्पा निर्गता निष्क्रान्तास्तैः। कथं च ते निर्गताः? राजितः पंडितस्तैस्तथाभूतैः।

अन्यदाह-

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः।
आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम्।।

अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने के कारण विपत्तिग्रस्त होने पर भी समुद्र ने जलभाव के कारण चंचल मत्स्य, जलहस्ती, सर्प तथा इधर-उधर बिखरे हुये रत्न और मणियों से सुशोभित होकर स्वर्गीय शोभा प्राप्त की।

अन्य कथन -

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशंखचितः सलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम्।
सतरंगसितोत्पलहंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचिम्।।

जल नष्ट होने पर भी चलित मत्स्य, शुक्ति और शंख से युत समुद्र शरद् ऋतु में तरंग, श्वेत कुवलय और हंस से युत सरोवर की शोभा धारण करता है (यहाँ पर चलित मत्स्य त्र तरंग, शुक्ति त्र श्वेत कुवलय, शंख त्र हंस है)।

सरितां नदीनाम्। पतिः प्रभुः समुद्रः। सलिले जलेऽपहृतेऽपि सति। शरदि शरत्काले। सरसो महोदकाधारस्य सम्बन्धिनीं रुचिं दीप्तिम्। बिभर्ति धारयति इव। कीदृशस्य सरसः? सतरंगसितोत्पलहंसभृतः। सतरंगाणि तरंगेण वीचिसमूहेन सहितानि सितोत्पलानि श्वेतकुवलयानि पुष्पविशेषान् हंसान् पक्षिविशेषांश्च बिभर्ति धारयति यत् तस्य। समुद्रः कीदृशः? प्रचलत्तिमिशुक्तिजशंखचितः। प्रचलद्भिस्तिमिभिर्मत्स्यैः। शुक्तिजैः प्राणिभिः शंखैश्च चितो व्याप्तः। प्रचलन्तो मत्स्यास्त एवं तरंगाः। शुक्तिजाः सितोत्पलानि। शंखा हंसा इति।

अथान्यत्-

तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्द्युतिः।
फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च चकार यः।।

मत्स्यरूप मेघ, मणिरूप तारा, स्फटिक मणिरूप चन्द्र, जलाभावरूप शारदीय द्युति और सर्पों के फणा पर स्थित मणि (चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि) के किरणरूप केतु ग्रह हैं, जिसमें ऐसे कुटिलगेश (समुद्र) को जिन्होंने बना दिया।

अथ समुद्रवर्णनानन्तरं विन्ध्यवर्णनामाह-

दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्ग-
मुद्भ्रान्तविद्याधरांसावासक्तप्रियाव्यग्रदत्ताङ्कदेहाव-
लम्बाम्बरात्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैः शोभितम्।
करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारि-

द्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान् बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान्
धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम्।
गगनतलमिवोल्लिखन्तं प्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुम-
त्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीहृष्टमन्द्रस्वनैः
शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः
रहसि मदनसक्तया रेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्या-
सितोद्यानमम्भोऽशनानन्नमूलानिलाहारविप्रान्वितं
विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्च तस्योदयः श्रूयताम्।।

सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये उन्नत होने में कम्पायमान श्रृङग होने से भयभीत विद्याधर के कन्धे में सक्त और व्यग्र विद्याधरी गण से दिये हुये विद्याधन के शरीर में लगे हुये कम्पायमान और अत्युन्नत ध्वजरूप वस्त्र से शोभित, हस्ती के मद से युक्त रक्त के आस्वादन से उत्पन्न सुगन्धि को खोजने में उद्यत भ्रमरगणों से युक्त शिर वाले मानो बाणपुष्पों से रचित शिरोमाला धारण करने वाले सिंहों से युक्त गुहागत निर्झर वाला, बढ़े हुये गजों से आकृष्ट होने पर कम्पित प्रफुल्लित वृक्षों पर चंचल और आनन्द से मधुर शब्द करते हुये भ्रमरपंक्ति वाले तथा वन के अश्व, भालू, व्याघ्र और वानरों से युत पर्वतश्रृंगों से मानो आकाश को उल्लिखित करता हुआ, निर्जन स्थान में मदनवृक्ष से युक्त होने के कारण मानो मदनातुर प्रिया-रेवा नदी से युक्त, देवताओं से सेवित उद्यान वाला तथा जलहारी, निराहारी, मूलाहारी, वाताहारी ब्राहमण मुनियों से सेवित विन्ध्याचल को जिन्होंने रोका, उन अगस्त्य मुनि के उदय के सम्बन्ध में सुनो।

३.४ अगस्त चार फल

अगस्त्य उदय का प्रभाव -

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि।
हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि।।

जिस तरह खलों की सङगति-रूप मल से दूषित हृदय वाला मनुष्य भी सज्जनों के दर्शन से निर्मल हृदय वाला हो जाता है, उसी तरह वर्षा ऋतु में कीचड़ मिला हुआ जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से निर्मल हो जाता है।

अगस्त्यनाम्नो मुनेरुदये उदमे। पुनर्भूयः। अम्बूनि पानीयानि। स्वभावात् प्रकृत्यैव। निर्मलानि प्रसन्नानि भवन्ति। कीदृशानि? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कोर्भूम्याः समायोगः संश्लेषः कुसमायोगः। तस्मात् कुसमायोगाद्यन्मलं पङकः। तेन प्रदूषितानि दुष्टानि यानि तान्यगस्त्यदर्शनान्निर्मलानि भवन्ति।

वर्षासु कुसमायोगस्तेषाम्। यथा सतां साधूनां उदये दर्शने हृदयानि पुनर्निर्मलानि भवन्ति। कीदृशानि? कुसमायोगमलप्रदूषितानि। कुत्सितैर्जनैर्योऽसौ समायोगस्तस्माद्यन्मलं पापं तेन प्रदूषितानि दुष्टानि। पुनः स्वभावादेव निर्मलानि भवन्ति। साधुदर्शनात् पापक्षय उत्पद्यते यावत्।

विन्ध्यवर्णनानन्तरं शरद्वर्णनमाह-

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्।
ताम्बूरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत् सहासा।।

ताम्बूल से रक्त ओठों के मध्य विराजमान दन्तपंक्ति वाली, हासयुत स्त्री की तरह दोनों पार्श्वों में स्थित लाल वर्ण के चक्रवाकों के मध्य शब्दायमान हंसपंक्ति से विराजमान नदियों के द्वारा शरद् ऋतु शोभित है।

अन्य कथन -

इन्दीवरासत्रसितोत्पलान्विता शरद् भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा।।

भ्रमण करते हुये भ्रमर की पंक्तियों से भूषित, नीलकमल के निकट स्थित श्वेत कमल से युत नदियों से शोभित शरद् मानो भ्रूलता के साथ कटाक्ष चलाने वाली मदनातुरा स्त्री की तरह शोभित है।

अन्य कथन -

इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं
द्रष्टुं तरङगवलया कुमुदं निशासु।
उन्मूलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म
वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम्।।

तरंगरूप कङकण वाली वापीरूप कामिनी रात्रि में मेघ के चले जाने से बढ़ी हुई चन्द्रमा की शोभा को देखने के लिये मानो भ्रमयुक्त कुमुदरूप कृष्ण तारा से युक्त नेत्र को खोलती है।

भूमेः शोभामुपवर्णयितुमाह-

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने।।

अनेक प्रकार के विचित्र कमल, हंस, चक्रवाक, कारण्डव आदि से भूषित तड़ागरूप हस्त के द्वारा पृथ्वी मानो अनेक रत्न, पुष्प और फलों से अगस्त्य मुनि को अर्घ्य देती है।

भगवतः प्राधान्यमाह-

सलिलममरपाज्ञयोज्झितं यद् घनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः।
फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन।।

मेघों से परिवेष्टित मूर्ति वाले सर्पो के फणा से उत्पन्न विषरूप अग्नि से दूषित इन्द्र की आज्ञा से पतित जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से श्रेयस्कर हो जाता है।

अन्य कथन -

स्मरणादपि पापमपाकुरुते
किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः।
मुनिभिः कथितोऽस्य यथार्घविधिः।
कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम्।।

जिनका स्मरण करने से भी पाप नष्ट हो जाते हैं, उन वरुण के पुत्र अगस्त्य की स्तुति का फल कहाँ तक कहें। गर्ग आदि मुनियों के द्वारा जिस प्रकार उनकी अर्घविधि कही गई है, उसी प्रकार राजाओं के हित के लिये मैं कहता हूँ।

अगस्त उदय लक्षण -

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य
विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां
भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य।।

गणित के द्वारा प्रत्येक देश में इनका दर्शन जानकर पण्डितों को कहना चाहिये। वह दर्शन सिंह राशि के तेईस अंश पर जब स्पष्ट सूर्य जाते हैं तब होता है।

अस्यागस्त्यमुनेः संख्याविधानाद् गणितविधानात् प्रतिदेशं देशं देशं प्रति सन्दशंनमुदर्य विज्ञाय ज्ञात्वा ज्ञः पण्डित आदिशेद् वदेत्। तच्च दर्शनमुज्जयिन्यां स्फुटभास्करस्य स्फुटादित्यस्य कन्यां कुमारीं स्वराख्यैर्भागैः सप्तभिरंशैरगतस्याप्राप्तस्य भवति। सिंहस्य भागत्रयोविंशतिं भुक्त्वेत्यर्थः। तथा च समाससंहितायाम्-

सप्तभिरंशैः कन्यामप्राप्ते रोमके तु दिवसकरे।
दृश्योऽगस्त्योऽवन्त्यां तत्समपूर्वापरेऽप्येवम्।।

अर्घदान लक्षण -

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम्।
सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत्।।

सूर्य के किरणों से रात्रि के अन्धकार के कुछ नष्ट होने पर ज्योतिषी से बताई हुई दक्षिण दिशा में पृथ्वी पर संयत होकर राजा को पृथ्वी पर अगस्त्य मुनि के लिये अर्घ देना चाहिये।

भूपो राजा प्रयतः संयत उर्व्यां भूम्यामर्घं प्रयच्छेद् दद्यात्। कस्मिन् काले? अरुणरश्मिजालैररुणकरनिकरैर्नैशे रात्रिभवेऽन्धकारे तमसि ईषत् किंचित् प्रभिन्ने नष्टे। कस्यां दिश्यर्घं दद्यात्? दक्षिणस्यां याम्यायां दिशि। कीदृशो राजा? सांवत्सरावेदितदिग्विभागः। सांवत्सरेण कालविदा आवेदितः प्रदर्शितो दिग्विभागो यस्य स तथाभूतः। यथेयं दक्षिणदिगस्यां भगवतो दर्शनमि।।

कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च
रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च।
धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यै-
र्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च।।

शारदीय सुगन्धित पुष्प, फल, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु, वृष, पायसयुत भोजन, द्रव्य, दधि, सुगन्धित धूप और चन्दनयुत अर्घ देना चाहिये।।

कालोद्भवैः सुकालजातैः। सुरभिभिः सुगन्धैः। कुसुमैः पुष्पैः। फलैश्च जातीफलादिभिः। तथा रत्नैर्मणिभिः। सागरभवैः समुद्रजातैः। कनकेन सुवर्णेनाम्बरैर्वस्त्रैः। तथा धेन्वा पयस्विन्या गवा वृषेण दान्तेन। परमान्नेन पायसेन युतैश्च भक्ष्यैरपूपादिभिस्तथा दध्ना क्षीरविकारेण। अक्षतैर्यवैः। सुरभिधूपैः सुगन्धधूपैर्विलेपनैरनुलेपनैः सुगन्धिभिश्च।

अर्घ दातु नृप फल -

नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः
प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः।
भवति यदि च दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यग्
जलनिधिरशनायाः स्वामितां याति भूमेः।।

यदि श्रद्धावान् राजा इस प्रकार अर्घ देने की विधि को धारण करे तो नीरोग होता है और शत्रुओं को जीतता है। यदि इस प्रकार सात वर्ष तक भक्तिपूर्वक अर्घ देता रहे तो समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का स्वामी (चक्रवर्ती राजा) होता है।

अथ ब्राहमणविट्शूद्राणां फलमाह-
द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान् प्रमादाश्च पुत्रान्।
वैश्यश्च गां भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे।।

यदि अपनी शक्ति के अनुसार लब्ध वस्तु से अर्घ दे तो ब्राहमण वेदों को, स्त्री पुत्रों को, वैश्य गौओं को एवं शूद्र बहुत धनों को प्राप्त करता है तथा ब्राहमणादि सभी वर्ण रोगक्षय और धार्मिक फल को प्राप्त करते हैं।

अथोदितस्य लक्षणमाह-

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं
धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय।
मांजिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च
कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा।।

यदि अगस्त्य रूक्ष हो तो रोग, कपिल हो तो अवृष्टि, धूम्रवर्ण हो तो गौओं के लिये अनिष्ट फल, कम्पमान हो तो भय, लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष और युद्ध तथा सूक्ष्म हो तो नगर का अवरोध करते हैं।

अथ वर्णलक्षणमाह-

शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयान्निव महीं किरणाग्रैः।
दृश्यते यदि तदा प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढया।।

सुवर्ण, रजत या स्फटिक के समान अपने किरणों से पृथ्वी को तृप्त करते हुये अगस्त्य मुनि दिखाई दें तो पृथ्वी अधिक धान्य, निर्भीक तथा रोगरहित मनुष्यों से युत होती है।

तथा च गर्गः-

शंखकुन्देन्दुगोक्षीरमृणालरजतप्रभः।
दृश्यते यद्यगस्त्यः स्यात् सुभिक्षक्षेमकारकः।।
वैश्वानरार्चिप्रतिमैर्मांसशोणितकर्दमैः।
रणैर्भयैश्च विविधैः किंचिच्छेषायते प्रजा।।

ब्रह्मगुप्ताचार्य के अनुसार अगस्त्य उदय-अस्त लक्षण

राशिचतुष्केण यदा स्वक्र्षभयुतेन भवति तुल्योऽर्कः।
उदयोऽगस्त्यस्य मुनेश्चक्रार्धाच्छोधितेऽस्तमयः।।

सूर्य जब चार राशियों का भोग कर अपनी राशि (सिंह राशि) में विचरण करता है, तब अगस्त्य मुनि का उदय होता है। अगस्त्योदय के समय सूर्य भचक्र में जितने अंश पर स्थित हो, उसे भार्ध (180 अंश) में से घटाने पर शेष अंशतुल्य दिनों में अगस्त्य का अस्त होता है।

विशेष- बृहत्संहिता और समाससंहिता में वराहमिहिर के अनुसार सिंह राशि के 23वें अंश पर स्पष्ट सूर्य के जाने पर अवन्ती, रोमकपत्तन आदि नगर में अगस्त्य का दर्शन होता है।

शुभसूचकागस्त्यलक्षणं वराहसंहितायाम् -

शातकुम्भसदृशं स्फटिकाभं तर्पयन्निव महीं किरणाद्यैः।
दृश्यते यदि ततः प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या।।

सुवर्ण, रजत या स्फटिक के समान अपनी किरणों से पृथ्वी को तृप्त करते हुए अगस्त्य मुनि दिखाई दें तो पृथ्वी अधिक अन्न, निर्भीक और रोगरहित मनुष्यों से युत होती है।

यदि अल्प मूत्रि वाले अगस्त्य मुनि का दर्शन हो तो पुरवासियों का नाश एवं काँपता हुआ दिखाई दे तो भय करता है।

वर्णफलम् वराहसंहिता के अनुसार -

रोगान् करोति कपिलः परुषस्त्ववृष्टिं
धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय।
माजिंष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवं च
कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा।।

यदि अगस्त्य कपिल वर्ण का हो तो रोग, रूक्ष हो तो अवृष्टि, धूम्र वर्ण हो तो गौओं के लिए अनिष्ट फल, कम्पमान हो तो भय, मजिठे के समान लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष और युद्ध तथा सूक्ष्म मूत्रि वाला हो तो नगर का अवरोध करता है।

गर्गः -

शंखकुन्देन्दुगोक्षीरमृणालरजतप्रभः।
दृश्यतेयद्यगस्त्यः स्यात् सुभिक्षक्षेमकारकः।।

यदि अगस्त्य शंख, कुमुदपुष्प, चन्द्रमा, मृणाल या चाँदी के समान श्वेत वर्ण का दिखाई दे तो सुभिक्ष और कल्याण करता है।

पराशरः

सुस्निग्धवर्णः श्वेतश्च शातकुम्भसमप्रभः।
मुनिः क्षेमसुभिक्षाय प्रजानामभयाय च।।

सुन्दर निर्मल वर्ण, श्वेत वर्ण, सुवर्ण-रजत के समान वर्ण वाला अगस्त्य मुनि क्षेम, सुभिक्ष और प्रजाओं को अभय प्रदान करता है।

तथा च

नीलोऽतिवर्षाय। अग्निपरुषरूक्षाभो रोगाय।

कपिलो वृष्टिनिग्रहाय। धूमाभो गवामभावाय।

मांजिंष्ठः क्षुच्छस्त्रभयाय।

अगस्त्य मुनि नील वर्ण वाला अतिवृष्टि, अग्नि के समान, परुष या रूक्ष वर्ण वाला रोग, कपिल वर्ण वाला वृष्टिनिग्रह (अवृष्टि), धूम्र वर्ण वाला गौओं का अभाव और मांजिष्ठ (लोहित) वर्ण वाला दुर्भिक्ष तथा शस्त्रभय (युद्ध) करता है।

गर्गस्तु

वैश्वानरार्चिःप्रतिमो मांसशोणितकर्दमैः।

रणैर्भयैश्च विविधैः किंचिच्छेषायते प्रजाः।।

अग्निशिखा के समान वर्ण वाला अगस्त मांस और शोणित की धारा बहाने वाले युद्ध और अनेक प्रकार के भय से प्रजा का नाश करके कुछ प्रजा को ही अवशेष रहने देता है।

अथ सोत्पातागस्त्यफलं वराहसंहितायाम्

उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुöयं मरकमेव विधत्ते।

यदि अगस्त्य उल्का या केतु से आहत हो तो दुर्भिक्ष और मरी करता है।

पराशरश्च -

हन्यादुल्का यदाऽगस्त्यं केतुर्वाऽप्युपधूपयेत्।

दुर्भिक्षं जनमारश्च तदा जगति जायते।।

जब अगस्त्य उल्का से आहत हो या केतु से धूपित हो तो संसार में दुर्भिक्ष और जनमरण होता है।

बोध प्रश्न -

1. जिनके चलने से पर्वत भी स्तम्भित हो जाय, उसे क्या कहा जाता है।

   क. अगस्त्य ख. लोमश ग.भृगु घ. नारद

2. जब अगस्त्य उल्का से आहत हो या केतु से धूपित हो तो संसार में क्या होता है।

   क. दुर्भिक्ष ख. जनमरण ग. हाहाकार घ. सभी

3. अगस्त्य किनके शिष्य थे।

   क. शिव ख. विष्णु ग. ब्रह्मा घ. दुर्गा

4. नील वर्ण वाला अगस्त्य मुनि का क्या फल है।

क. अतिवृष्टि ख. अनावृष्टि ग. सुभिक्ष घ. दुभिक्ष

5. समुद्र का पान किसने कर लिया था।

क. नारद ख. गर्ग ग. पराशर घ. अगस्त्य

३.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि संहिता ज्योतिष में अगस्त्य मुनि का वर्णन किया गया है। साथ ही अगस्त्य चार फल का भी उल्लेख मिलता है संहिता के ग्रन्थों में। महात्मा अगस्त्य को शिव का अवतार कहा जाता है। अगस्त्य ऋषि स्वयं भगवान शिव के ही शिष्य थे। पुराणों के अनुसार संस्कृत, तमिल आदि कई भाषाओं का ज्ञान उन्होंने शिव के द्वारा ही प्राप्त किया था। पर्वत भी जिसके चलने से स्तम्भित हो जाय, उसका नाम अगस्त्य। ऋषि अगस्त्य ने एक बार अपने तपोबल से सम्पूर्ण समुद्र का पान कर लिया था। दक्षिण की गंगा कावेरी का उद्भव उन्हीं के प्रताप से हुआ था। ऐसे अनेक रहस्यों एवं असीमित शक्तियों से पूर्ण थे ऋषि अगस्त्य। इनके नाम से ब्राह्मणों की गोत्रावली भी चलती है। अगस्त्य चार फल का वर्णन वृहत्संहिता, अद्भुतसागर आदि संहिता ग्रन्थों के अनुसार यहाँ किया जा रहा है। सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये बढ़े हुये शिखर वाले विन्ध्याचल पर्वत को जिन्होंने रोक लिया, मुनियों के पेट को फाड़ने वाला और देवताओं के शत्रु वातापी राक्षस को जिन्होंने पचा डाला, समुद्र को जिन्होंने पी लिया और तपोरूप समुद्र से दक्षिण दिशा को जिन्होंने भूषित किया, जल राशि को निर्मल करने वाले उन अगस्त्य मुनि का संक्षेप से यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

३.६ पारिभाषिक शब्दावली

अगस्त्य – जिनके चलने से पर्वत भी स्तम्भित हो जाय, उसका नाम है अगस्त्य।

चार - चलना

पुराण – १८

विन्ध्याचल – भगवती विन्ध्यवासिनी देवी का स्थल

समुद्र – ७

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

३.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ

3. क
4. क
5. घ

३.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अद्भुतसागर – मूल लेखक – बल्लालसेन, टीका – प्रोफेसर शिवाकान्त झा
2. वृहत्संहिता – वराहमिहिर
3. नारद संहिता – पं. रामजन्म मिश्र

३.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. लोमश संहिता
3. भृगु संहिता
4. वृहत्संहिता

३.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. ऋषि अगस्त्य का परिचय दीजिये।
2. वृहत्संहिता के अनुसार अगस्त्य का फल लिखिये।
3. अद्भुतसागर के अनुसार अगस्त्य चार फल का वर्णन कीजिये।
4. ऋषि अगस्त्य का वैशिष्ट्य लिखिये।

इकाई – ४ सप्तर्षिचारा फल

इकाई की संरचना

४.१. प्रस्तावना

४.२. उद्देश्य

४.३. सप्तर्षि चार परिचय

४.४. सप्तर्षिचार फल

४.५. सारांश

४.६. पारिभाषिक शब्दावली

४.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

४.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

४.९. सहायक पाठ्य सामग्री

४.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

४.१. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-204 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक है – सप्तर्षि चारफल। इससे पूर्व आपने अगस्त्य चार फल का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई से सप्तर्षि चार फल का अध्ययन आरम्भ करने जा रहे हैं।

सप्त च ते ऋषय: सप्तर्षय:। अर्थात् सात ऋषियों के समूह को सप्तर्षि कहा जाता है। संहिता ग्रन्थों में इनके चार फल का विवेचन मिलता है।

अत: आइए हम सब अब संहिता ज्योतिष से जुड़े सप्तर्षि से सम्बन्धित विषयों की चर्चा क्रमश: इकाई में करते है।

४.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि सप्तर्षि किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि सप्तर्षि का इतिहास क्या है।
- सप्तर्षि के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- सप्तर्षि के महत्व को बता सकेंगे।
- सप्तर्षि के चारफल को प्रतिपादित कर सकेंगे।

४.३. सप्तर्षिचर परिचय

संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत सप्तर्षि का उल्लेख मिलता है। व्याकरण दृष्ट्या सप्त च ते ऋषय: सप्तऋषय:। यहाँ संख्यावाची होने के कारण द्विगु समास है। अर्थात् जहाँ सप्त ऋषियों का समूह हो उसे सप्तर्षि कहते हैं। सप्तर्षि चार फल का वर्णन हमें संहिता ग्रन्थों में मिलता है। उसी का अध्ययन हम सब यहाँ करने जा रहे हैं।

वराहमिहिर द्वारा कथित सप्तर्षि विवेचन-

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव।
नाथवतीव च दिग् यै: कौवेरी सप्तभिर्मुनिभ:।।

एकावली (भूषणविशेष) से शोभित, श्वेत कमल की माला से भूषित, मुस्कानयुत और स्वामी-सहित कामिनी की तरह सात मुनियों से युत उत्तर दिशा शोभित है।

ध्रुववशाद् चार फल -

धुरवनायकोपदेशान्नरिनर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च।

यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात्।।

ध्रुव नक्षत्ररूप नायक के उपदेश से भ्रमण करने वाले सप्तर्षियों से उत्तर दिशा मानो बारम्बार नाचती है। अब वृद्ध गर्ग के मत से उनका संचार कहता हूँ।

यैर्मुनिभिभ्र्रमद्भिरुत्तरा कौवेरी दिग् नरिनर्तीव। अत्यर्थं नृत्यति नरिनर्ति। कथं धु्रवनायकोपदेशात्। धु्रव धूएव नायको धु्रवनायकस्तदुपदेशात्। यतो नर्तक्या उपदेशो नायक आचार्यो भवति। तस्या ध्रुवनायकोपदेशः। यस्मात् सकलज्योतिश्चक्रस्य धु्रव एव भ्रामकः। तथा च **भट्टब्रह्मगुप्तः-**

धु्रवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्।।इति।

तेषां मुनीनां चारमहं वृद्धगर्गमतात् कथयिष्ये। वृद्धगर्गो नाम महामुनिस्तन्मता-त्तत्कृताच्छास्त्रादिति।

महाभारतकाल के चार विवेचन-

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च।।

जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर राज्य करते थे, उस समय मघा नक्षत्र में सप्तर्षि थे। शकाब्द में 2526 मिलाने से युधिष्ठिर का गताब्द काल होता है।

1875 शकाब्द में नक्षत्र लाने का उदाहरण - एक नक्षत्र में सप्तर्षि सौ (100) वर्ष रहते हैं; अतः 2526$1875/100 = 4401/100, लब्धि 44 शेष 1।

अतः गत नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा और वर्तमान नक्षत्र रेवती का 1 वर्ष भुक्त और 99 वर्ष भोग्य हैं।

तथा च वृद्धगर्गः-

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः।।

तस्य च युधिष्ठिरस्य राज्ञः षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालो गतः। सहस्रद्वयेन पंचभिः शतैः षड्विंशत्यधिकैः 2526 शकनृपकालो युक्तः कार्यः। एवं कृते यद्भवति तावद्वर्षवृन्दं वर्तमानकालं यावद् गतम्। तस्य च शतेन भागमाहत्य यदवाप्यते तानि नक्षत्राणि मघादीनि भुक्तानि यच्छेषं तानि वर्षाणि भुज्यमाने नक्षत्रे तेषां प्रविष्टानां गतानि। तानि च शताद्विशोध्य यदवशिष्यते तावन्त्येव वर्षाणि तस्मिन्नक्षत्रे स्थितानीति। लब्धनक्षत्राणामपि सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमं मघादिनक्षत्रं

भुक्तमिति वाच्यम्।

अथ तेषां नक्षत्रभोगप्रमाणकालं नक्षत्रावस्थितिं चाह-

एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्।
प्रागुदयतोऽप्यविवरादृजून्नयति तत्र संयुक्ताः।।

एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष सप्तर्षि रहते हैं। जिस नक्षत्र के पूर्व दिशा में उदय होने पर सप्तर्षि-मण्डल स्पष्ट दिखाई दे, उसी नक्षत्र में उनकी स्थिति समझनी चाहिये। 'प्रागुत्तरश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीकाः।' ऐसा पाठ होने के फलस्वरूप ईशान कोण में सदा साध्वी अरुन्धती के साथ सप्तर्षि उदित होते हैं-ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

ते मुनय एकैकस्मिन्नृक्षे नक्षत्रे शतं शतं वर्षाणां चरन्ति। तथा च कश्यपः-

शतं शतं तु वर्षाणामेकैकस्मिन् महर्षयः।
नक्षत्रे निवसन्त्येते ससाध्वीका महातपाः।।

अविवरान्निरन्तरं प्रागुदयतः प्राक् पूर्वस्यां दिशि उदयतो यन्नक्षत्रं तेषामृजून्नयति स्पष्टतां सप्तर्षि पङ्क्त्या नयति तत्र तस्मिन्नक्षत्रे ते संयुक्ताः स्थिति इति। एतदुक्तं भवति-यस्य नक्षत्रस्य प्रागुदयतः सप्तर्षिपङ्क्तिः स्पष्टा भवति तस्मिन्नेव स्थिता इति। केचित् प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीका इति पठन्ति। ते च प्रागुत्तरतश्चैशान्यां दिशि सदा सर्वकालं ससाध्वीकाः सारुन्धतिका उदयन्ते।

पूर्वे भागे भगवान् मरीचिंगरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात्।
तस्याङिगरास्ततोऽत्रिस्तस्यासत्रः पुलस्त्यश्च।।
पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्ना अनुक्रमेण पूर्वाद्यात्।
तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी।।

पूर्व दिशा में भगवान् मरीधि, उनसे पश्चिम में वशिष्ठ, वशिष्ठ से पश्चिम में मरीचिरंगिरा के बाद अत्रि, अत्रि के समीप पुलस्त्य, इनके बाद पुलह, पुलह के बाद केतू इस तरह पूर्व दिशा से लेकर क्रम से सप्तर्षियों की स्थिति रहती है और इनके मध्य के अरुन्धती वसिष्ठ के आश्रित है।

पूर्वे भागे पूर्वस्यां दिशि भगवान् मरीचिर्नाम महर्षिः स्थितः। अस्मा......... पश्चिमे भागे वसिष्ठः स्थितः। तस्य वसिष्ठस्यापरे अङिगराः स्थितः। ततस्तस्माद............ स्थितः। तस्यात्रेरासन्नो निकटवर्ती पुलस्तयश्च।

ततः पुलहस्ततः क्रतुरिति भगवान् अनुक्रमेण परिपाटया पूर्वाद्यात् पूर्वादित आसन्ना निकटस्थिताः। तत्र च तन्मध्ये अरुन्धती साध्वी सच्छीला मुनिवरं मुनिप्रधान वसिष्ठमुपाश्रिता

संश्रितेत्यर्थः।

अथैतैः शुभाशुभफलमाह-

उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वा।
हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्धद्धयै।।

उल्का, वज्र या धून आदि से हत, विवर्ण, ज्योतिरहित या स्वल्प बिम्ब लावा सप्तर्षि मण्डल हो तो अपने-अपने वर्ग का नाश करता है तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हो तो अपने वर्ग की वृद्धि करता है।

तथा च वृद्धगर्गः-

उल्कया केतुना वापि धूमेन रजसापि वा।
हता विवर्णाः स्वल्पार वा किरणैः परिवर्जिताः।।
स्वं स्वं वर्गं तदा हन्युर्मुनयः सर्व एव ते।
विपुलाः स्निग्धवर्णाश्च स्ववर्गपरिपोषकाः।।

अथैतेषां स्ववर्गमाह-

गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम्।
पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च।।
शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान् वनोपेतान्।
हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः।।
अङिगरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राहमणाश्च निर्दिष्टाः।
अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः।।
रक्षःपिशाचदानवदैत्यभुजङगाः स्मृताः पुलस्त्यस्य।
पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः।।

यदि मरीचि पीड़ित हों तो गन्धर्व, देव, राक्षस, मन्त्र, ओषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरों को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल हों उनकी वृद्धि करते हैं। यदि वसिष्ठ पीड़ित हों तो शक, यवन, दरद, पारत, काम्बोज, तपस्वी और वनवासियों को पीड़ित करते हैं तथा किरणों से सम्पन्न हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अङिगरा पीड़ित हों तो ज्ञानी, बुद्धिमान् और ब्राहमणों को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अत्रि पीड़ित हों तो वन तथा जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य, समुद्र और नदियों को पीड़ित करते हैं तथा विपुल और स्निग्ध हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलस्य पीड़ित हों तो राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य और सर्पों को पीड़ित करते हैं

तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि पुलह पीड़ित हों तो मूल और फलों को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि क्रतु पीड़ित हों तो यज्ञ और यज्ञकर्ताओं को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं।

अद्भुतसागर ग्रन्थ के अनुसार सप्तर्षि फल -

भुजवसुदश1082 मितशाके श्रीमद्वल्लालसेनराज्यादौ।

वर्षैकषष्टि61भोगो मुनिभिर्विहितो विशाखायाम्।।

श्रीमद्वल्लालसेन देव के राज्याभिषेक के समय शकाब्द 1082 को विशाख नक्षत्र में विचरण करते हुए सप्तर्षि 61 वर्ष भोग कर चुके थे।

वराहसंहितायाम्

एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्।
प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीकाः।।
पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात्।
तस्यांगिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च।।
पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्नाक्रमेण पूर्वाद्याः।
तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रिताऽरुन्धती साध्वी।।

एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष सप्तर्षि रहते हैं। पूर्वोत्तर (ईशान कोण) दिशा में हमेशा साध्वी अरुन्धती-सहित सप्तर्षि उदित होते हैं। 'प्रागुदयतोऽप्यविवरावृजून्नयति तत्र संयुक्तः।' ऐसा पाठ होने से जिस नक्षत्र का पूरब दिशा में उदय होने पर सप्तर्षिमण्डल स्पष्ट दिखाई दे, उसी नक्षत्र में उनकी स्थिति समझनी चाहिये। ऐसा अर्थ समझना चाहिये। सबसे पूरब भगवान् मरीचि, मरीचि से पश्चिम वशिष्ठ, वशिष्ठ से पश्चिम अंगिरा, अंगिरा के बाद अत्रि, अत्रि के निकट पुलस्त्य, इनके बाद पुलह, पुलह के बाद क्रतु- इस प्रकार पूरब दिशा से लेकर क्रम से सप्तर्षियों की स्थिति है। इनके मध्य में वशिष्ठ के आश्रय में रहने वाली साध्वी अरुन्धती है।

भीष्मपर्वणि कुरुपाण्डवसैन्यवधनिमित्तम्
सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा।

उक्त समय में रजोवर्षण, उल्कापात आदि से सप्तर्षियों की प्रभा आच्छादित हो गई थी अर्थात् वे मेघ की तरह आच्छादित हो गये थे।

विष्णुधर्मोत्तरे

उल्कयाऽभिहतः रूक्षाः स्फुरणा रजसा हताः।
ऋषयः सर्वलोकानां विनाशाय सभूभृताम्।।

यदि सप्तर्षि उल्का से आहत, रूक्ष वर्ण, कम्पमान और धूलियों से आहत हों तो चराचर सभी लोकों का नाश होता है।

वराहसंहितायां तु

उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः।
हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वुद्ध्यै।।

उल्का, वज्र या धूम आदि से हत, विवर्ण, ज्योतिरहित या स्वल्प मूत्रि वाला सप्तर्षिमण्डल हो तो अपने-अपने वर्ग का नाश करता है तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हो तो अपने-अपने वर्ग की वृद्धि करता है।

गर्गस्तु -

उल्कया केतुना वाऽपि धूमेन रजसाऽपि वा।
हता विवर्णाः स्वल्पा वा किरणैः परिवर्जिताः।।
स्वं स्वं वर्गं तदा हन्युर्मुनयः सर्व एव ते।
विपुलाः स्निग्धवर्णाश्च स्ववर्गपरिपोषकाः।।

उल्का या केतु, धूम या रज (धूलि) से सप्तर्षिमण्डल हत हो, विवर्ण, स्वल्प बिम्ब वाला या रश्मिविहीन हो तो सप्तर्षि अपने-अपने वर्ग का नाश करते हैं तथा वे विपुल और निर्मल वर्ण वाले हों तो अपने वर्ग के परिपोषक (वृद्धि करने वाले) होते हैं।

एतेषां वर्गानाह पराशरः

देवदानवगन्धर्वाः सिद्धपन्नगराक्षसाः।
नागा विद्याधराः सर्वे मरीचेः परिकीत्र्तिताः।।

देवता, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, पन्नग, राक्षस, नाग और विधाधर- ये सब मरीचि के वर्ग कहे गये हैं। मरीचि के पीड़ित होने पर इन्हें पीड़ा होती है और स्वस्थ रहने पर इनकी वृद्धि होती है।

वराहसंहितायां तु

गन्धवग्देवदानवमन्त्रौषधिसिद्धनागयक्षाणाम्।
पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणांच।।

यदि मरीचि उल्का आदि से हत (पीड़ित) हों तो गन्धर्व, देव, दानव, मन्त्र, औषधि, सिद्ध, नाग, यक्ष और विद्याधरो को पीड़ित करते हैं तथा निर्मल और विपुल होने पर उनकी वृद्धि करते हैं।

पराशरः -

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोचा दरदाः शकाः।
वसिष्ठस्य विनिर्दिष्टास्तापसा वनमाश्रिताः।

यवन, पारद, काम्बोज, दरद, शक, तपस्वी और वनवासी वसिष्ठ के वर्ग है। वसिष्ठ के पीड़ित होने से उन्हें पीड़ा और विपुल तथा निर्मल होने पर उनकी वृद्धि होती है।

वराहसंहितायां तु

शकयवनदरदपारदकाम्बोजाँस्तापसान् वनोपेतान्।
हन्ति वसिष्ठाभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः।।
अंगिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः।

यदि वसिष्ठ हत हों तो शक, यवन, दरद, पारद, काम्बोज, तपस्वी और वनवासियों का नाश करते हैं तथा रश्मियों से सम्पन्न हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। अंगिरा के पीड़ित होने पर ज्ञानी, बुद्धिमान् और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है तथा विपुल और निर्मल होने पर उनकी वृद्धि होती है।

पराशरस्तु

धीमन्तो ब्राह्मणा ये च ज्ञानविज्ञानपारगाः।
रूपलावण्यसंयुक्ता मुनेरंगिरसः स्मृतः।।

बुद्धिमान्, ब्राह्मण, ज्ञान-विज्ञान में निपुण और रूप-लावण्य से सम्पन्न व्यक्ति अंगिरा मुनि के वर्ग हैं। अंगिरा के पीड़ित होने पर उन्हें पीड़ा और विपुल तथा निर्मल होने पर उनकी वृद्धि होती है।

वराहसंहितयोस्तु1

अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः।

यदि अत्रि पीड़ित हों तो वन और जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य, समुद्र और नदियों को पीड़ित करते हैं तथा विपुल और निर्मल होने पर उनकी वृद्धि करते हैं। ऐसा वराहमिहिर ने बृहत्संहिता और वटकणिका में कहा है।

पराशरस्तु

कान्तारजास्तथाऽम्भोजान्यत्रेर्नद्यः ससागराः।

वन और जल में उत्पन्न द्रव्य, नदी और समुद्र अत्रि मुनि के वर्ग में हैं।

वराहसंहितयोस्तु

रक्षःपिशाचदानवदैत्यभुजंगाः स्मृताः पुलस्त्यस्य।

यदि पुलस्त्य पीड़ित हों तो उनके वर्ग राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य और भुजंग पीड़ित होते हैं तथा विपुल और स्निग्ध हों तो उनकी वृद्धि करते हैं।

पराशरश्च

पिशाचा दानवा दैत्या भुजंगा राक्षसास्तथा।
पुलस्त्यस्य विनिर्दिष्टाः पुष्पमूलफलं च यत्।।
तत्सर्वं पुलहस्योक्तं यज्ञा यज्ञकृतश्च ये।
क्रतोरेव विनिर्दिष्टा वेदज्ञा ब्राह्मणास्तथा।।

विशेषः- अत्र पुष्पमूलफलं पुलहस्य यज्ञादयः क्रतोरिति सम्बन्धः।

पिशाच, दानव, दैत्य, सर्प, राक्षस और सभी प्रकार के पुष्प, मूल एवं फल पुलह के वर्ग कहे गये हैं। यज्ञ, यज्ञ करने वाले, वेद को जानने वाले और ब्राह्मण क्रतु के वर्ग कहे गये हैं। पुलह और क्रतु के पीड़ित होने पर उनके वर्ग पीड़ित होते हैं तथा विपुल और स्निग्ध होने पर उनकी वृद्धि होती है।

तथा च वराहसंहितायाम्

पुलहस्य फलमूलं क्रतोस्तु यज्ञाः सुयज्ञकृतः।

यदि पुलह पीड़ित हों तो फल और मूल को पीड़ित करते हैं तथा स्निग्ध और विपुल हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि क्रतु पीड़ित हों तो यज्ञ और यज्ञकत्राओं को पीड़ित करते हैं तथा विपुल और स्निग्ध हों तो उनकी वृद्धि करते हैं।

भीष्मपर्वणि कुरुपाण्डवसैन्यक्षयनिमित्तम्

या चैषा विश्रुता राजँस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता।
अरुन्धती तथाऽप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः।।

हे राजन्! तीनों लोकों में जो अरुन्धती सती-साध्वी के नाम से (पति की अनुगामिनी के रूप में) विख्यात है, वह भी अपने पति वसिष्ठ को पीछे करके उदित देखी गयी। ऐसा उत्पात कौरव और पाण्डव की सेनाओं के नाश के निमित्त देखा गया।

अगस्त्यसप्तर्षिध्रुवाणामशुभलक्षणं विष्णुधर्मोत्तरे

आगस्त्योऽरुणो रूक्षः श्यावो रेणूल्कयोपहतः
शिखिशिखाध्वस्तो भयाय। एवंविधाः सप्तर्षयश्च।

एवंविधे ध्रुवे त्रैलोक्यमपि पीड्यते।

लोहित, रूक्ष, श्याववर्ण, रेणु और उल्का से हत एवं केतु की शिखा से ध्वस्त (धूपित) अगस्त्य भय देने वाले होते हैं। इसी प्रकार के सप्तर्षि भी भय देते हैं और इसी प्रकार के धुरव भी तीनों लोकों को पीड़ित करते हैं।

भीष्मपर्वणि कुरुपाण्डवसैन्यक्षयनिमित्तम्

ध्रुवः प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवत्र्तते।

महाभारत-युद्ध के समय कौरव और पाण्डवों की सेनाओं के क्षय के निमित्त धुरव प्रज्वलित होकर भयंकर अपसव्य करते हुए देखे गये।

अथर्वमुनिः

यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च नारदः पर्वतस्तथा।
कण्वश्च रैभ्यपुत्राश्च अर्वावसुपरावसू।।
सप्तैते स्थावरा ज्ञेयाः सह सूर्येण सर्पिणः।
स्थावराणां नरेन्द्राणां प्राच्यानां पक्षमाश्रिताः।।
स्वस्तयात्रेयो मृगव्याधो रुरुधः प्रचुरस्तथा।
प्रभासश्चन्द्रहासश्च तथाऽगस्त्यः प्रतापवान्।।
दृढव्रतस्त्रिशंकुश्च अजो वैश्वानरो मृगः।
अरुणः श्वदतश्चैव याम्यायां स्थावराः स्मृताः।।
गौतमोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रश्च काश्यपः।
ऋचीकपुत्रस्तु तथा भारद्वाजश्च वीर्यवान्।।
एवे सप्त महात्मान उदीच्यां स्थावराः स्मृताः।
शिशुमारेण सहिता ध्रुवेण च महात्मना।।
पुलस्त्यः पुलहः सोमो भृगुरंगिरसा सह।
हाहा हूहूश्च विज्ञेया विष्णोर्हृदयमुत्तमम्।।
एतेषां स्थावराणां तु नियतानीति बुद्धिमान्।
अवस्थानानि सर्वेषां दिक्षुरूपाणि लक्षयेत्।।
प्रभान्वितानि श्वेतानि स्निग्धानि विमलानि च।
अर्चिष्मन्ति प्रसन्नानि तानि कुर्युः प्रजाहितम्।।

निष्प्रभाणि विवर्णानि चेरुर्वीथ्याश्रितानि च।
ह्रस्वाण्यस्नेहयुक्तानि न भवाय भवन्ति हि।।
यत्किंचित् स्थावरं लोके तत् प्रसन्नेषु वर्धते।
क्रूरस्थेषु प्रसन्नेषु स्थावरं परिहीयते।।

यवक्रीत, रैभ्य, नारद, पर्वत, कण्व, रैभ्यपुत्र और अर्वावसु-परावसु- ये सात पश्चिम दिशा के स्थावर कहे गये हैं। ये सूर्यास्त के सङ्गथ उदित होते हैं, क्योंकि ये सूर्य के साथ ही गमन करते हैं।

पूर्व दिशा के स्थावर (पृथ्वी पर स्थित) नरेन्द्रों के पक्ष में आश्रित, स्वस्ति, आत्रेय, मृगव्याध, रुरुध, प्रचुर, प्रभास और चन्द्रहास- ये सात स्थावर हैं।

प्रतापी अगस्त्य, दृढ़व्रती त्रिशंकु, अज, वैश्वानर, मृग, अरुण और श्वदत- ये सात दक्षिण दिशा में दृश्य होने वाले स्थावर कहे गये हैं।

गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, काश्यप, ऋचीकपुत्र और वीर्यवान् भारद्वाज- ये सात

महात्मा उत्तर दिशा में दृश्य होने वाले स्थावर कहे गये हैं।

शिशुमार और महात्मा ध्रुव-सहित पुलस्त्य, पुलह, सोम, अंगिरा सहित भृगु, हाहा, हूहू- ये सभी विष्णु के उत्तम हृदयरूपी स्थावर हैं।

इन सभी स्थावरों के स्थान और दिशा को नियत जानकर, इन सबों के दिशारूप अवस्थान से बुद्धिमान् लोगों को लक्षण का ज्ञान करना चाहिये। ये स्थावर यदि प्रभा से युक्त, श्वेत वर्ण वाले, निर्मल्, विमल, रश्मिवान और प्रसन्न दिखाई दें तो प्रजाओं के लिए हितकारी होते हैं। यदि ये कान्तिहीन, विवर्ण, वीथ्याश्रित, स्वल्प मूत्तिवान और रूक्ष दिखाई दें तो कल्याणकारी नहीं होते हैं।

इनके प्रसन्न होने पर पृथ्वी पर स्थित स्थावरों की वृद्धि होती है और उत्पातों से आहत होकर अप्रसन्न होने पर स्थावरों की हानि होती है।

अत्रानुक्तविशेषशान्तिष्वगस्त्याद्यतेषु अगस्त्यादि-
पूजापूर्विका प्रभूतकनकान्नगोमहीदानादिका सामान्य-
शान्तिरौत्पातिकफलगुरुलाघवमवगम्य कर्त्तव्या।

अगस्त्य-सप्तर्षि-ध्रुवादि अतावत्र्त में उत्पातों की विशेष शान्ति कहीं कही गई है। उनकी शान्ति के लिए अगस्त्यादि की पूजा के साथ प्रचुर सुवर्ण, अन्न, गौ, जमीन आदि का दान, औत्पातिक फल की गुरुता और लाघवता को जानकर तदनुसार करना चाहिये।

बोध प्रश्न -

1. सात ऋषियों के समूह को क्या कहते हैं।
   क. सप्तऋर्षय: ख. ऋषि ग. अगस्तय घ. ध्रुव
2. निम्न में कौन सदैव उत्तर दिशा में उगता है।
   क. ध्रुव ख. पुच्छल ग. अगस्त्य घ. कश्यप
3. एक-एक नक्षत्र में कितने सप्तर्षि रहते हैं।
   क. १०० ख. ५०० ग.१००० घ. १००-१००
4. निम्न में सप्तर्षि है-
   क. गौतम ख. अंगिरा ग. विश्वामित्र घ. सभी
5. अद्भुतसागर के प्रणेता कौन है।
   क. बल्लालसेन ख. उग्रसेन ग. कमलाकर घ. दिवाकर

४.५ सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सात ऋषियों के समूह को सप्तर्षि कहते हैं। और एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष सप्तर्षि रहते हैं। पूर्वोत्तर (ईशान कोण) दिशा में हमेशा साध्वी अरुन्धती-सहित सप्तर्षि उदित होते हैं। 'प्रागुदयतोऽप्यविवरावृजून्नयति तत्र संयुक्तः।' ऐसा पाठ होने से जिस नक्षत्र का पूरब दिशा में उदय होने पर सप्तर्षिमण्डल स्पष्ट दिखाई दे, उसी नक्षत्र में उनकी स्थिति समझनी चाहिये। ऐसा अर्थ समझना चाहिये। सबसे पूरब भगवान् मरीचि, मरीचि से पश्चिम वशिष्ठ, वशिष्ठ से पश्चिम अंगिरा, अंगिरा के बाद अत्रि, अत्रि के निकट पुलस्त्य, इनके बाद पुलह, पुलह के बाद क्रतु- इस प्रकार पूरब दिशा से लेकर क्रम से सप्तर्षियों की स्थिति है। इनके मध्य में वशिष्ठ के आश्रय में रहने वाली साध्वी अरुन्धती है। उक्त समय में रजोवर्षण, उल्कापात आदि से सप्तर्षियों की प्रभा आच्छादित हो गई थी अर्थात् वे मेघ की तरह आच्छादित हो गये थे।

४.६ पारिभाषिक शब्दावली

सप्तर्षि – ७ ऋषि

ध्रुव - उत्तर दिशा में उदित होने वाला

चार – चलन

अत्रि – सप्तर्षि में से एक

अंगिरा – सप्तर्षि में से एक

विदिशा – चार कोण को विदिशा के रूप में जानते है।।

सृष्टि – समस्त चराचर जगत्।

४.७ बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. क
3. घ
4. घ
5. क

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अद्भुतसागर – मूल लेखक – बल्लासेन

2. वृहत्संहिता – वराहमिहिर

3. नारदसंहिता – टीका – पं. रामजन्म मिश्र

४.९ सहायक पाठ्यसामग्री

1. वशिष्ठ संहिता
2. लोमश संहिता
3. मकरन्दप्रकाश

४.१० निबन्धात्मक प्रश्न

1. सप्तर्षि से आप क्या समझते है।
2. वराहमिहिर के अनुसार सप्तर्षि का फल लिखिये।
3. बल्लासेन के अनुसार सप्तर्षि का चार फल लिखिये।
4. सप्तर्षि का महत्व प्रतिपादित कीजिये।
5. विभिन्न संहिता ग्रन्थों के आधार पर सप्तर्षि फल का विवेचन कीजिये।

खण्ड - ४
वास्तु विचार

इकाई - 1 वास्तुशास्त्र का स्वरूप प्रवर्त्तक एवं आचार्य

इकाई की संरचना

१.१. प्रस्तावना

१.२. उद्देश्य

१.३. वास्तु शास्त्र - सामान्य परिचय

१.३.१. वास्तु शास्त्र की परिभाषा व स्वरूप

१.४. वास्तु शास्त्र के प्रवर्तक

१.४.१. वास्तु शास्त्र के प्रमुख आचार्य

१.५. सारांश

१.६. पारिभाषिक शब्दावली

१.७. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.८. संदर्भ ग्रंथ सूची

१.९. सहायक पाठ्य सामग्री

१.१०. निबन्धात्मक प्रश्न

१.१. प्रस्तावना

" सर्वज्ञानमयो हि सः" अर्थात वेद ही सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान का उद्गम स्थल है। इस सृष्टि के आरम्भ से लेकर अद्यावधि जितना भी ज्ञान यां विज्ञान हमें इस सम्पूर्ण संसार के किसी भी भूभाग पर दिखाई देता है, उस ज्ञान या विज्ञान के बीज सूक्ष्म रूप में हमें वेद में प्राप्त होते हैं। वेद चार हैं – ऋग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद , अथर्ववेद इन चार वेदों के चार उपवेद हैं। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद , सामवेद का गान्धर्व वेद , अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है और स्थापत्यवेद ही वास्तु शास्त्र का उद्गम स्थल है। इस प्रकार वेद का वास्तु शास्त्र से सीधा- सीधा संबंध है। वास्तुशास्त्र का मूल उद्गम स्थल होने के कारण वास्तु शास्त्र स्वरूप निर्धारण में वेद की प्रमुख भूमिका है। वैदिक काल में उद्भूत इस शास्त्र का उत्तर वैदिक काल और पौराणिक काल में पल्लवन हुआ और आज यह स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इस इकाई में वास्तु शास्त्र के स्वरूप की चर्चा की जाएगी और इस इकाई के अध्ययन से हम वास्तुशास्त्र के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे और जान पायेंगें कि वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य कौन हैं और किन आचार्यों ने इस शास्त्र को पुष्पित और पल्लवित किया।

१.२. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि वास्तु किसे कहते हैं
- समझा सकेंगे कि वास्तुशास्त्र का इतिहास क्या है।
- वास्तुशास्त्र के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- वास्तुशास्त्र के प्रवर्तकों का नाम जान लेंगे।
- वास्तुशास्त्र की उपयोगिता को समझा सकेंगे।

१.३. वास्तुशास्त्र : सामान्य परिचय

रोटी, कपडा और मकान मानव की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। मानव सभ्यता के आरम्भ से ही मनुष्य का प्रयास अपनी इन मूलभूत आवश्यकताओं की सम्पूर्ति के लिये ही था। आरम्भ में मानव वनों में ही रहता था और प्रकृति से प्राप्त होने वाले विविध पदार्थों के माध्यम से ही वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करता था। वन में रहकर कन्द मूलादि का भक्षण कर वह अपनी क्षुधा को शान्त करता था। वस्त्र के लिये वह वृक्षों के पत्तों और शाल का उपयोग करता था और निवास के लिये वह वन में प्राकृतिक और कृत्रिम गुफाओं में रहता था। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होने लगा। वैसे-वैसे मानव भी विकसित होने लगा और उसकी

मूलभूत आवश्यकताओं के स्वरूप में भी अन्तर आने लगा। अब वह भोजन के लिए केवल कन्द-मूल पर निर्भर नहीं था, उसने कृषि कार्य के माध्यम से पृथ्वी से अनेक प्रकार के धान्यों की प्राप्ति करनी शुरू की और अपनी क्षुधा शांति के लिए उसके पास असंख्य खाद्य पदार्थ हो गए। इसी प्रकार वस्त्रों के लिए वह केवल वृक्षों की छाल और पत्तो पर निर्भर नही रहा बल्कि उसने सूत निर्माण के विज्ञान को सीखा और शनैः शनैः कई प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करने लगा। निवास के लिए भी वह केवल वन पर निर्भर नहीं रहा । वन से निकलकर उसने ग्राम और नगर की कल्पना की । वन में रहना उसके लिए कष्टकारी था । वन का जीवन सुविधाजनक नहीं था और उसे हर समय भयंकर जीवों का भय रहता था । वन में शेर, बाघ आदि मांसाहारी पशु अपनी क्षुधा पूर्ति के लिये मानव की जीवन लीला को कभी भी समाप्त कर देते थें । उन जीवों के साथ रहता हुआ मानव भी जंगली प्राणी ही हो गया था, उस समय के मानव को कुछ इतिहासकारों ने असभ्य तक कहा है । परन्तु जैसे ही मानव ने वन के उस भयंकर वातावरण से बाहर निकल कर ग्रामों की कल्पना की ,नगरों की कल्पना की और निवास हेतु भवन का निर्माण किया । वह सभ्य कहलाने लगा । अपने प्रारम्भिक समय में मानव अधिकतर नदियों के किनारे निवास हेतु भवन का निर्माण करने लगा । अपने निवास स्थान के निर्माण में वह प्रकृति का सदुपयोग करने लगा । वह ऐसे भवन का निर्माण करता था ,जहां सूर्य के प्रकाश, वायु और जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की समुचित व्यवस्था हो और उसके द्वारा किये गये भवन के निर्माण से प्रकृति को कोई हानि भी न पहुंचे । इस प्रकार प्रकृति के साथ समन्वय कर भवन का निर्माण होने लगा और यही भारतीय चिन्तन था , यही भारतीय परम्परा थी । परन्तु जैसे-जैसे इस भारतीय चिन्तन पर पाश्चात्य प्रभाव पडने लगा, हम प्रकृति के सहयोगी नहीं, विरोधी हो गयें , हम प्रकृति के रक्षक नहीं, भक्षक बनने लगें । आज हम गगनचुम्बी भवनों का निर्माण भी कर रहे हैं और पृथ्वी को खोदकर बेसमेन्ट आदि का निर्माण भी कर रहे हैं । इन भवनों में सूर्य,वायु,जल आदि प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग न होने के कारण आज के भवनों में निवास करने वाले मानव के जीवन से सुख ,समृद्धि समाप्त हो चुकी है । आज का मानव प्रतिक्षण भौतिक उन्नति के शिखर पर अग्रसर है । इतने भव्य भवनों का निर्माण मानव इसलिये कर रहा है , तांकि इन भव्य भवनों में रहकर उसका जीवन सुरक्षा और समृद्धि से युक्त हो सके । आधुनिक युग के भव्य भवन अत्यन्त सुविधाजनक और सुरक्षित हैं ,इन भवनों में मानव के जीवन को सुखमय बनाने के लिये विविध भौतिक संसाधनों का प्रयोग होता है ।इन भौतिक संसाधनों के माध्यम से मानव को शारीरिक दृष्टि से भले ही सुख प्राप्त हो रहा हो , परन्तु वास्तुशास्त्र के नियमों का पालन न होने के कारण उस भवन में रहने वाले लोगों को मानसिक रूप से सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो पाती ।

इतने बडे-बडे बहुमंजिले भवन, जो कि आधुनिक युग की सभी सुख सुविधाओं से संपन्न है और इतने भव्य भवनों में रहकर भी मानव अगर प्रसन्न नहीं है तो इसका कारण क्या

है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । और यदि उस निर्मित भवन में कोई ऐसा दोष है , जिसके कारण मानव मात्र को सुखाभाव का सामना करना पडता है , तो वह दोष क्या है ? और उस दोष को कैसे दूर किया जा सकता है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर भारतीय वास्तुशास्त्र के पास है ।

भारतीय वास्तु शास्त्र का आधार ही मनुष्य को मानसिक दृष्टि से सुख प्रदान करना है । भारतीय वास्तुशास्त्र केवल मनुष्य के शारीरिक सुख का ही नहीं ,अपितु मानसिक सुख का भी विचार करता है । भारतीय वास्तुशास्त्र केवल ऐसे भवन की कल्पना नहीं करता,जिसमें रहकर मानव को केवल भौतिक सुख ही मिले, अपितु ऐसे भवन की कल्पना करता है ,जिसमे मनुष्य प्रसन्नचित हो, उसका जीवन समृद्ध हो और भवन में रहने वाले सभी लोगों में पारस्परिक सौहार्द और सामञ्जस्य की भावना हो । और यही भारतीय वास्तु शास्त्र का मूल उद्देश्य है और इसी मूल उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारत के ऋषियो ने, आचार्यों ने वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों का प्रणयन किया । भारतीय वास्तुशास्त्र मुख्य रूप से प्राकृतिक शक्तियों के साथ भवन और मानव के सामञ्जस्य के सिद्धान्त पर काम करता है । 'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे ' इस सिद्धान्त के अनुपालन में भारतीय वास्तुशास्त्र ने ब्रह्माण्ड, मानव और भवन में निहित पञ्चमहाभूतों के समन्वय की कल्पना की और प्रकृति के साथ समन्वय कर भवन निर्माण का चिन्तन किया ।

जब तक मनुष्य प्रकृति के साथ समन्वय कर अपना जीवन यापन करता रहा तब तक प्रकृति ने मानव को अपना आशीर्वाद प्रदान कर उसे सुखमय जीवन प्रदान किया और जब से मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये उसके विरोध में कार्य करना आरंभ किया, तब से उसे सदैव ही मुंह की खानी पडी । इसका प्रमाण हमें समरांगण सूत्रधार के सहदेवाधिकार में वर्णित्त इस कथा से प्राप्त होता है, जिसमें आधुनिक विकास सिद्धान्त के प्रतिकूल यह कहा गया है कि प्राचीन काल में मानव और देवता एक साथ रहते थे , देवो के समान मानवों की पुण्यश्लोकता थी , अजरता थी , अमरता थी । वे भी देवों के साथ कल्पवृक्षों के मध्य में स्थित विशाल प्रासादों में विहार करते थे , कालान्तर में मानवों का निवास भी देवताओं के साथ वही हो गया । बहुत समय तक मानव और देवता एकत्र रहे। कुछ समय बाद मानव अपनी मर्यादा को भूल कर देवों की अवज्ञा करने लगें । देवताओ ने भी मानव के साथ 'मैत्री भाव ' त्यागकर उन्हें 'पुनर्मूषको भव ' की दशा में परिणित कर दिया । स्वर्ग से मानव पुनः धरती पर आ गये । जब वे देवों के साथ कल्प वृक्षों के मध्य में थे , तब उन्हे आहार-विहार के सभी साधन उपलब्ध थे । स्वर्ग में केवल एक ही ऋतु - वसन्त ऋतु थी । एक ही वर्ण ब्राह्मण था । वहा ग्राम-नगर-घर की कोई आवश्यकता ही नही थी । किसी की अधीनता नहीं थी । वहां केवल सुख ही था , दुःख की कल्पना भी नहीं थी । परन्तु मानव-देवों के पार्थक्य के कारण मानवों की दिव्य शक्तियां समाप्त हो गयी और वे क्षुधा-तृषा से व्याकुल रहने लगें । उनको भूख लगने लगी , परन्तु संपूर्ण पृथ्वी पर कहीं भी अन्न सुलभ नहीं था । ऐसी अवस्था में दैव कृपा से

पर्पटक (खाद्य विशेष)का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे मानवों ने अपनी बुभुक्षा को शान्त किया ,परन्तु कुछ समय बाद पर्पटक का भी लोप हो गया और शालि-तण्डुलादि का प्रथमोदय हुआ। मानवो के मन में भय पैदा हो गया कि कहीं पर्पटक की तरह तण्डुल का भी लोप न हो जाए, अतः उनमें संग्रह की प्रवृति पैदा हो गयी । उन्होने तण्डुल का संग्रह करना शुरू किया , जिसके लिये उन्हे एक सुरक्षित स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ । तुष सेवन से मानवों में मल प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ और मानवों में काम भावना भी जागृत हो गई। इन कार्यों की अभिगुप्ति के लिए मानवों को सुरक्षित स्थान की आवश्यकता का अनुभव हुआ, जिसमें निवास कर वह इन सब कार्यों का सम्पादन कर सके। अत: वह भवन निर्माण की ओर प्रवृत्त होने लगा। इस प्रकार पृथ्वी पर भवननिर्माण की परम्परा का सूत्रपात हुआ। भवन निर्माण और पृथ्वी के सुनियोजन की यह कथा पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित है । इसका अभिप्राय: यह कदापि नही है कि भारतीय वास्तुशास्त्र का आरम्भ पौराणिक युग से ही हुआ। वैदिककालीन साहित्य में भी अनेक स्थलों पर भवन निर्माण और वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित तत्त्व यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होते है।

१.३.१ वास्तुशास्त्र की परिभाषा व स्वरूप

"वास्तु" शब्द का सामान्य अर्थ निवास है । "वस निवासे" धातु से उणादि सूत्र "वसेस्तुन" के द्वारा "तुन" प्रत्यय करने पर वास्तु शब्द की निष्पत्ति होती है । वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ "वसन्त्यस्मिन्नितिवास्तु" है । अमरकोष में वास्तु शब्द के लिए "वेश्मभूर्वास्तुरस्त्रियाम" इत्यमर: कहा गया है । पाश्चात्यविद्वान "मोनियर विलियम्स" के अनुसार वास्तु शब्द का अर्थ " The Site or foundation of a house, site, ground, building or dwelling place किया गया है । इस प्रकार जब किसी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित स्वरुप प्रदान कर उसे निवास के योग्य बनाया जाता है, तो उसे वास्तु कहा जाता है । अत: भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मन्दिर और नगरादि समस्त रचनाऐं जिनमें मनुष्य वास करते है उन्हे वास्तु पद से सम्बोधित किया जाता है ।

वैदिककाल में वास्तुशास्त्र का स्वरुप

भारतीय वास्तुविद्या उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मानव सभ्यता। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी वास्तुविद्या के निदर्शन प्राप्त होते है। वस्तुत: वास्तुविद्या का उद्गमस्थल वेद ही है। वैदिक युग देवोपासना की दृष्टि से यज्ञ-प्रधान, स्तुति-प्रधान और चिन्तन-प्रधान था । उस युग में भी यज्ञ से पूर्व यज्ञवेदी का निर्माण करने के लिए वास्तुविद्या के सिद्धान्तो का प्रयोग किया जाता था । यही यज्ञवेदी धीरे- धीरे भवन, राजप्रासाद और देवप्रासाद के रुप में परिवर्तित हो गई। वास्तु का वहीं मौलिक तत्त्व मन्दिरों, गृहों और महलों

के कलेवर में आज भी विद्यमान है। वैदिकवाङमय में अनेक स्थलों पर वास्तुसम्बन्धी सूत्र प्राप्त होते है। जैसे कि वेद में सुन्दर घर के लिए " सुवास्तु'' और गृहाभाव के अर्थ में " अवास्तु " शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद मे वर्णित वास्तु विषयक विवेचन से ज्ञात होता है कि वैदिक भवनों के मुख्यरुप से तीन अङ्ग थे । प्रथम गृह-द्वार, द्वितीय आस्थान मण्डप और तृतीय पत्नी-सदन, इसे ही अन्त:पुर कहते है। आर्य लोग अग्नि के आधान के लिए जिस स्थान का प्रयोग करते थे उसे अग्निशाला कहा जाता था। वैदिककाल में निवासगृहों के दो भेद थे। एक गृह पाषाण- काष्ठादि से निर्मित होता था जो आर्थिकरुप से कम सम्पन्न लोगो के लिए होता था। इसी प्रकार एक विशाल और सुदृढ गृह सब प्रकार से सम्पन्न लोगो के लिए होता था। वेद में ऋषियों के द्वारा वैदिक देवता वरुण से प्रार्थना की गई है कि वह मिट्टी के घर में नहीं, अपितु सहस्त्रद्वारों से युत पाषाण-निर्मित सुदृढ घर में निवास करें। इससे वैदिककाल में मिट्टी के घर और सहस्त्रद्वारों वाले घर की परिकल्पना उद्घाटित होती है। ऋग्वेद में "गृह" शब्द का प्रयोग निवास स्थान के अर्थ में किया गया है। यथोक्तम-

"सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे"

वैदिककालीन गृहों में कक्षों की संख्या अधिक होती थी । गृह की सुरक्षा की दृष्टि से कक्षों के पिधान की भी समुचित व्यवस्था थी । यजुर्वेद में वास्तु शब्द का प्रयोग यज्ञ-परक किया गया है। यजुर्वेद में वास्तुशब्द का प्रयोग यूपनिर्माण, स्तूपनिर्माण, आसन्द और पर्यङ्कादि के निर्माण के अर्थ में किया गया है। अथर्ववेद के शालासूक्तों में गृह के कक्षों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है । गृह के सम्पूर्ण सौन्दर्य की साम्यता वहां नवविवाहिता से करते हुए कहा गया है –

"मा न: पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ।"

शाला के निर्माण के पश्चात प्रार्थना की जाती है कि यह शाला हमें गौ – अश्व – ऊर्जा – घृतादि को प्रदान करती हुई कल्याण और सौभाग्य को देने वाली हो । यथोक्तम् –

" इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय । "

ब्राह्मण ग्रन्थों में यूप-वेदी-शमशान आदि के निर्माण में शिल्पकला की उत्कृष्टता प्रतिबिम्बित होती है । अथर्ववेद में "पत्नी-सदन" के वर्णन से ज्ञात होता है कि वैदिककाल में स्त्रियों के लिए गृह में विशेष कक्ष की व्यवस्था होती थी । सूत्रग्रन्थों में वास्तुशब्द का अर्थ "आवास" लिया गया है । यज्ञवेदी के निर्माण में शुल्वसूत्रों का अत्यधिक महत्त्व था । शुल्व शब्द का अर्थ ही मापन कार्य में प्रयुक्त होने वाला सूत्र या रज्जु है। वैदिक साहित्य में यूप शब्द का प्रयोग यज्ञ स्तम्भ के लिए किया गया है। यूप की स्थापना वेदी से पूर्व दिशा में की जाती थी । यूप पर मानव,देव और ऋषियों के चित्र तथा लेख उत्कीर्ण किए जाते थे । जिससे ज्ञात होता है कि वैदिककालीन यज्ञ अत्यन्त श्रमसाध्य थे । वैदिक यज्ञवेदी की रचना वर्गाकार की जाती थी । वैदिकसाहित्य में श्मशान के निर्माण के सिद्धान्तों का वर्णन भी कई स्थानो पर प्राप्त होता है । श्मशान निर्माण के लिए शान्त स्थल का किया जाता था । उसके दोनो तरफ़ अश्वत्थ के वृक्ष लगाये जाते थे । इस प्रकार से वास्तुविद्या के बीज तो समस्त वैदिक वाङ्गमय में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते है । परन्तु स्थापत्यवेद को ही वास्तुविद्या का मूल माना जाता है।इसी स्थापत्यवेद को ही अथर्ववेद का उपवेद होने का गौरव प्राप्त है । जिससे ज्ञात होता है कि वास्तुविद्या की उत्पत्ति का स्थान अथर्ववेद ही है । यही वास्तुविद्या का मूल है और यह वास्तुविद्या आगे चलकर वास्तु,शिल्प और चित्र के रुप में त्रिधा विभक्त है । जो इस प्रकार है -
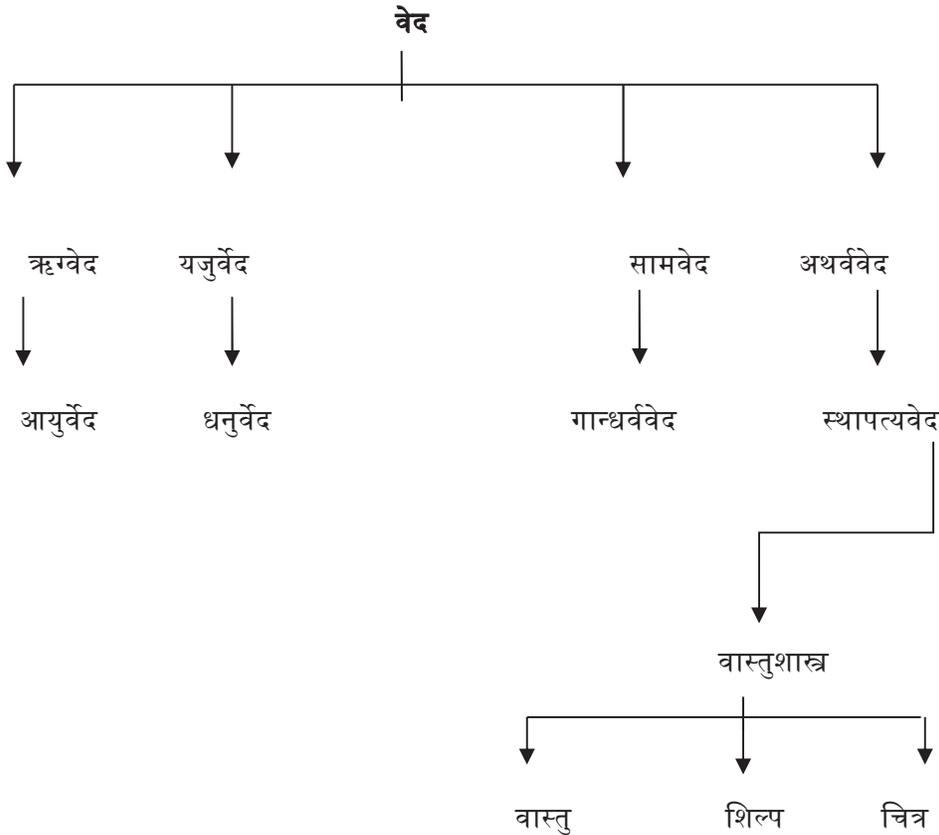
उत्तरवैदिक काल में वास्तुशास्त्र का स्वरुप

यद्यपि भारत की समस्त विद्याओं की तरह वास्तुविद्या का सूत्रपात भी वैदिककाल में ही हो गया था। परन्तु इस विद्या का वास्तविक विकास और पल्लवन उत्तरवैदिक काल में ही हुआ । वेदाङ्ग काल में यहां वास्तुविद्या को स्थिरता प्राप्त हुई वहीं पुराण और आगमकाल में इस विद्या का समुचित विकास हुआ और धीरे – धीरे यह वास्तुविद्या स्वतन्त्र शास्त्र का स्थान प्राप्त कर गई । वास्तव में वैदिककाल की यज्ञवेदी उत्तर वैदिक काल के भव्य प्रासाद का मूल है । इस उत्तर वैदिक काल के साहित्य में छ: वेदाङ्गों और सूत्रसाहित्य की गणना होती है, इन छ: वेदाङ्गों में वास्तुकला का सम्बन्ध कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से है।कल्प वेदाङ्ग के गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्वसूत्र आदि चारों कल्पसूत्रों में से शुल्वसूत्रों का सम्बन्ध यज्ञवेदी की रचना और उसकी मापन विधि से है । धर्मसूत्रों मे वर्णव्यवस्था और आश्रमव्यवस्था का वर्णन है । गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों का सम्बन्ध यज्ञ आदि के सम्पादन से है। इस यज्ञवेदी के निर्माण के लिए मापनविधि का वर्णन शुल्वसूत्रों में प्राप्त होता है । यज्ञवेदी के निर्माण में प्रयुक्त होने वाली यही मापन विधि कालान्तर में भव्य प्रासाद के निर्माण का आधार बनी । जिस प्रकार से वैदिक काल में भवन की सुरक्षा की दृष्टि से चारों दिशाओं में रक्षा प्राचीर का निर्माण होता था उसी प्रकार से मौर्यवंशी,शुंगवंशी,शकवंशी राजाओं के शासन काल में भी स्तूप के चारों और वेदिका का निर्माण किया जाता था । इन सभी कार्यों में प्रमाण का महत्त्व सर्वाधिक है । देवताओं की प्रतिमाएं तो तभी पूज्य है, जब वह प्रमाण के अनुसार हो । कहा गया है ---

"प्रमाणे हि स्थापिता: देवा: पूजार्हाश्च भवन्ति ते ।"

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र में प्रमाण का अत्यधिक महत्त्व है और प्रमाण का आधार कल्पवेदाङ्ग ही है । इसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध छ: वेदाङ्गों में से एक ज्योतिष वेदाङ्ग से भी है । वास्तुशास्त्र भारतीय ज्योतिष की एक समृद्ध एवं विकसित शाखा है । इन दोनों में अंङ्ग – अंङ्गी भाव का विशेष सम्बन्ध है । जैसे शरीर का अपने विविध अंङ्गो के साथ सहज और अटूट समबन्ध होता है । ठीक उसी प्रकार से ही ज्योतिष शास्त्र का अपनी शाखाओं-प्रशाखाओं के साथ अटूट सम्बन्ध है । सामुद्रिकशास्त्र, स्वरशास्त्र, अंकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, शकुनशास्त्र और वास्तुशास्त्र आदि ज्योतिषशास्त्र की विकसित शाखाएँ है और ज्योतिषशास्त्र रुपी वृक्ष ही इनके मूल में स्थित है ।

ज्योतिषशास्त्र और इसकी शाखाओं में आपसी सम्बन्ध का कारण इन सभी शास्त्रों के उद्देश्यों में समानता होना है । ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र इन दोनों का विकास भी वैदिक धरातल पर ही हुआ है । दोनो ही शास्त्र भारतीय जीवन-दर्शन से प्रेरित है । दोनों ही

शास्त्रों का लक्ष्य मानवमात्र को सुविधा और सुरक्षा प्रदान करना है और दोनो ही शास्त्र मनुष्य के जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं पर विचार करते है परन्तु इन शास्त्रों में अत्यधिक साम्यता होने पर भी कुछ मौलिक अन्तर है । वास्तुशास्त्र किसी भवन में निवास करने वाले मनुष्य के जीवन में घटने वाले शुभाशुभ का विचार करता है, जिसका आधार प्राकृतिक शक्तियां है । यह शास्त्र इस बात का विचार करता है कि प्रकृति में विद्यमान गुरुत्व शक्ति, चुम्बकीय शक्ति और सौर ऊर्जा का प्रयोग भवन में किस प्रकार से किया जाए, जिसके कारण उस भवन में रहकर मनुष्य का जीवन समृद्ध हो सके और मनुष्य को जीवन में सन्तुष्टि और प्रगति की प्राप्ति हो । जबकि ज्योतिषशास्त्र जीवन में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं के चार कारण मानता है ---

१) वंशानुक्रम
२) वातावरण
३) कर्म
४) काल

वास्तव में यही विचारणीय तत्व है जो ज्योतिष और वास्तुशास्त्र के दृष्टिकोण के आधार में परिवर्तन करते हैं। वास्तुशास्त्र दिक् और देश को आधार बनाकर विचार करता है जबकि ज्योतिष दिक्, देश और काल के आधार पर विचार करता है । एक ही भवन में रहने वाली दो पीढियों को परस्पर विरोधी फ़ल की प्राप्ति होते देखी गई है । भवन वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तो का अनुपालन करते हुए बना होने पर भी उस भवन में निवास करने वाले सभी लोगो को एक ही तरह के फ़ल की प्राप्ति नही होती है क्योंकि यह शास्त्र काल का विचार नही करता । ज्योतिषशास्त्र दिक्, देश और काल इन तीनो सिद्धान्तों को आधार बनाकर विचार करता है, इसलिए ज्योतिषशास्त्र का क्षेत्र व्यापक है ।आधुनिक युग में महानगरीय संस्कृति में बहुमञ्जिले भवनों के निर्माण की परम्परा है और एक भवन में बने जिन फ़्लैटों के मुख पूर्व की ओर या उत्तर की ओर है तो उन फ़्लैटों के सामने वाले फ़्लैटों के मुख पश्चिम या दक्षिण की ओर होंगे तथा पूर्वमुखी यां उत्तरमुखी फ़्लैटों का निर्माण एक ही दिशा में होने पर भी उन फ़्लैटों में रहने वाले लोगों को अपने जीवन में एक ही समान फ़ल की प्राप्ति नही होती है । इसका भी कारण वास्तुशास्त्र के द्वारा केवल दिक् और देश का विचार करना ही है , जबकि इस प्रश्न का उत्तर ज्योतिषशास्त्र के पास है क्योंकि ज्योतिषशास्त्र इसके साथ –साथ काल का विचार भी करता है।

वास्तुशास्त्र की इन कमियों को रेखांकित करने का अभिप्राय: यह नही है कि यह शास्त्र व्यर्थ है।इस सबका विचार करने का अभिप्राय यह है कि वास्तुशास्त्र का अध्ययन करने से

पहले इस शास्त्र के सभी पक्षों का विचार कर लिया जाए। क्योंकि हर शास्त्र की अपनी सीमाऐं होती है, अपनी विशेषताएँ होती है, अपना दृष्टिकोण होता है ,अपनी उपयोगिता होती है । वास्तव में इस संसार में ऐसा कुछ भी नही है जो परिपूर्ण हो, कोई भी शास्त्र अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है । अगर कोई एक ही शास्त्र सम्पूर्ण होता तो अन्य शास्त्रों की रचना न होती , एक ही विषय पर अनेक शास्त्रों की रचना इस बात का प्रमाण है कि हर शास्त्र की अपनी सीमाएँ है। हमारी संस्कृति में ही छ: आस्तिक दर्शन एवं तीन नास्तिक दर्शन है। इसी प्रकार से रोगों के उपचार के लिए अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों और चिकित्सा शास्त्रों का होना भी सभी शास्त्रों की सीमाओं का द्योतक है । वास्तव में ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र में अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है और ये दोनो एक दूसरे के पूरक है । ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के बिना वास्तुशास्त्र को समझ पाना सम्भव नही है और वास्तुशास्त्र के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान की सम्पूर्णता नही है । इसलिए ये दोनो शास्त्र एक दूसरे के पूरक है । अगर वास्तुशास्त्र से ज्योतिषशास्त्र को अलग कर दिया जाए तो वास्तुशास्त्र के अनेक विषयों जैसे कि गृहारम्भ ,शिलान्यास ,गृहप्रवेश, द्वारस्थापना, गृहमेलापक, दिगीश ज्ञान आदि विषयों को जानना और समझना अत्यन्त कठिन हो जाएगा। अत: वास्तुशास्त्र का अध्ययन करने से पूर्व इन दोनो शास्त्रों का परस्पर सम्बन्ध विचार, क्षेत्र, सीमाएँ और दृष्टिकोण को जान लेना चाहिए। तभी भूखण्ड के चयन, भवननिर्माण और उसमें निवास करने वाले लोगों को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फ़ल का पूर्वानुमान किया जा सकेगा । वस्तुत: वास्तुशास्त्र भारतीयज्योतिष की एक समृद्ध शाखा है। ये दोनो शास्त्र एक दूसरे के सहयोगी है, विरोधी नही है और अपने जीवन के कल्याण के लिए और भवन में सुख और समृद्धि की प्राप्ति हेतु इन दोनो शास्त्रों का अध्ययन अत्यन्त उपकारक है। ज्योतिषशास्त्र अत्यन्त व्यापक होने के कारण तीन स्कन्धों में विभक्त है ----

१) सिद्धान्त
२) संहिता
३) होरा

यथोक्तम् ---

“सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम ।

वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योति: शास्त्रमनुत्तमम ॥ ”

सिद्धान्त :- ज्योतिष शास्त्र के जिस स्कन्ध में त्रुट्यादि काल की गणना, सौरचान्दादिमासों

के भेदों का वर्णन, ग्रहचार के नियम, दिक्-देश-काल के ज्ञान की चर्चा, भूगोल-खगोल, व्यक्त और अव्यक्त गणित की चर्चा हो, उस स्कन्ध को सिद्धान्त स्कन्ध कहते है । यथोक्तम् ----

"त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेद: क्रमा—
च्चारश्चद्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तरा:
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्त: स: उदाहृदोऽत्रगणितस्कन्धप्रबन्ध बुधै: ॥"

यह सिद्धान्त स्कन्ध भी सिद्धान्त, तन्त्र और करण के रूप में त्रिविध विभक्त है, सिद्धान्त में गणितादि से, तन्त्र में युगादि से ग्रहगणित और करण में शकादि से ग्रहगणित होता है ।

होरा :- होरा स्कन्ध ज्योतिषशास्त्र का दूसरा स्कन्ध है । ज्योतिषशास्त्र के जिस स्कन्ध में ग्रहों के द्वारा मनुष्यों को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ, सुखदु:खादि का पूर्वानुमान करने की विधि का प्रतिपादन हो, उस स्कन्ध को होरा स्कन्ध कहा जाता है ।यथोक्तम् ---

" होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात् ।
कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पङ्क्तिं समभिव्यनक्ति ॥ "

अन्यश्च----

" यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पङ्क्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥ "

होराशास्त्र के पांच विभाग है – जातक, ताजिक, रमल, प्रश्न, स्वप्न ।

संहिता स्कन्ध :- यह ज्योतिषशास्त्र का तीसरा स्कन्ध है। जिस स्कन्ध में ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त और होरा स्कन्ध के अतिरिक्त सभी विषयों का विचार हो , उसे संहिता स्कन्ध कहते है । यथोक्तम् ---

" ज्योति: शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम् ।
तत्कात्स्न्योपनस्य नाम मुनिभि: सङ्कीर्त्यते संहिता ॥ "

सम्भवत: यह स्कन्ध सिद्धान्त स्कन्ध से भी प्राचीन है । इस स्कन्ध के अन्तर्गत नारदसंहिता, गर्गसंहिता,पाराशरसंहिता, भृगुसंहिता, वासिष्ठसंहिता, बृहत्संहिता आदि मुख्यग्रन्थ है । बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने ग्रहचार, ग्रहवर्ण, ग्रहगति, ग्रहसमागम, ग्रहयुद्ध, उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, इन्द्रधनुषलक्षण, प्रासादलक्षण, प्रतिमालक्षण, वृक्षायुर्वेदविचार, अङ्गविद्या, वास्तुविद्या आदि का विचार संहितास्कन्धान्तर्गत ही परिगणित किया है ।
यथोक्तम् ----

" दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृति प्रमाण-वर्ण
-किरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागम
-चारादिभि: फ़लानि: नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचार:
सप्तर्षिचार: ग्रहभक्त्यो नक्षत्रव्यूहग्रहश्रृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागम
ग्रहवर्षफ़लगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगा: सद्योवर्षकुसुमलतापरिधि

परिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्वनगररजोनिर्घातार्घ काण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तश्चक्र मृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदो गार्गलनीराजनखञ्जनकोत्पातशान्तिम्यूरचित्रकहतकम्बल- -खड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोगजाश्वभपुरूषस्त्रीअलक्षणान्यन्त: पुरचिन्ता पिटकलक्षणोपाछेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसन -लक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानिशुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगत: प्रतिपुरूषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्य कर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि ॥ ”

इस प्रकार से इन सभी विषयों का विचार संहितास्कन्धान्तर्गत होता है। वास्तुविद्या भी इन विषयों में अत्यन्त प्रमुख विषय है । बृहत्संहिता में ही आचार्य वराहमिहिर ने वास्तुविद्याध्याय, प्रासादाध्याय,प्रतिमालक्षणाध्याय, वज्रलेपाध्याय आदि वास्तुविद्या सम्बद्ध अध्यायों पर स्वतन्त्ररूप से चर्चा की है। इस प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध छ: वेदाङ्गों में से कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से है । इस सम्बन्ध को इस चित्र के माध्यम से भी समझ सकते है ---
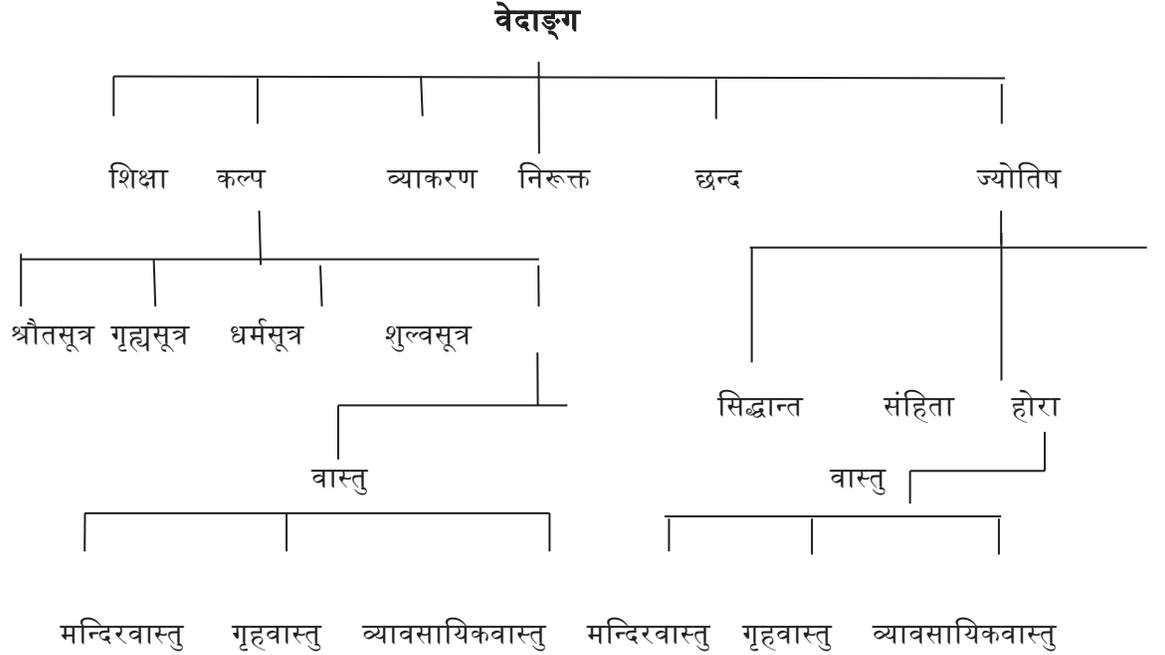
इस प्रकार से वास्तु का सम्बन्ध ज्योतिष और कल्प वेदाङ्ग से है परन्तु इसका यह अभिप्राय: कदापि नही है कि वास्तु ज्योतिषशास्त्र और कल्पशास्त्र का अङ्ग मात्र ही है और इसका अपना स्वतन्त्र रूप नही है। वास्तु का सम्बन्ध ज्योतिष और कल्पवेदाङ्ग से तो है परन्तु इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है । जिस प्रकार से सभी भारतीय विज्ञानों का पारस्परिक सम्बन्ध है, जैसे- पोरोहित्य, वेद, ज्योतिष, योग, आयुर्वेद, धर्मशास्त्रादि सभी सम्बद्ध शास्त्र है उसी प्रकार से वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध भी सभी भारतीय विज्ञानों से है । जिनमें से ज्योतिष और कल्प वेदाङ्ग का वास्तुशास्त्र से सीधा सम्बन्ध है इसका अभिप्राय: यह नही है कि वास्तुशास्त्र ज्योतिष का अङ्गमात्र है । वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थो में ज्योतिषशास्त्र के विविध विषयों की चर्चा की गई है। ज्योतिषशास्त्र काल विषयक शास्त्र है । उसमें काल के विविध पक्षों का विचार किया गया है, परन्तु देशभेद से ही काल का विचार होता है। क्योंकि काल सर्वदा स्थान सापेक्ष ही होता है । ज्योतिषशास्त्र में काल की तथा वास्तुशास्त्र में दिशा की प्रमुखता है । परन्तु काल और दिशा दोनों ही स्थान पर आधारित है अर्थात देशसापेक्ष है । देश के ज्ञान के बिना दिशा और काल दोनों का ही ज्ञान नही हो सकता । इसलिए दिक्- देश और काल तीनों का ही आपसी सम्बन्ध है और अपना महत्व है। विशेषकर वास्तुशास्त्र में देवस्थापना, द्वारस्थापना, गृहारम्भ, प्रासादारम्भ, गृहप्रवेश, वापी-तडागादि खनन, शिलान्यासादि अनेक विषयों में काल का महत्व प्रतिपादित किया गया है । आचार्य विश्वकर्मा

ने काल का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है ----

" आदौ कालं परीक्षेत् सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
कालो हि सर्वजीवानां शुभाऽशुभफ़लप्रद: ॥
कालातिक्रमणे दोषो द्रव्यहानिश्च जायते ।
देवानामपि देवीनां विप्रादीनां विशेषत: ॥
प्रासादभवनारम्भे स्तम्भस्थापनकर्मणि ।
द्वारस्थापनवेलायां भवनानां प्रवेशने ।।
वापीतडागनिर्माणे गोपुरारम्भकर्मणि ।
विमानमण्डपरामगर्भगेहोद्धतो तथा ॥
कालं शुभं परीक्षेत् मंङ्गलावाप्ति साधकम् ।
देशभेदेन कालोऽपि भिन्नतां प्रतिपद्येत ॥
इष्टिकान्यसनं शस्तं शुभकाले विशेषत: ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभं कालं न लङ्घयेत् ॥ "

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र में काल अत्यन्त महत्तवपूर्ण है और काल का ज्ञान कालविधानशास्त्र ज्योतिष के अधीन है अत: काल के ज्ञान के लिए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है ।

इसलिए वास्तुशास्त्र के अनेक आचार्यों ने ज्योतिष को वास्तुशास्त्र का एक अङ्ग मानते हुए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान वास्तुशास्त्र के अध्येताओं के लिए अनिवार्य कहा है । समराङ्गणसूत्रधार कार ने वास्तुशास्त्र के आठ अङ्गों का वर्णन करते हुए अष्टाङ्ग वास्तुशास्त्र की कल्पना की है और इन आठ अङ्गों के ज्ञान के बिना वास्तुशास्त्र का सम्यक् प्रकार से ज्ञान होना सम्भव नही है। वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग इस प्रकार से है -**" सामुद्रं गणितं चैव ज्योतिषं छन्द एव च ।**

सिराज्ञानं तथा शिल्पं यन्त्रकर्मविधिस्तथा ॥
एतान्यंङ्गानि जानीयाद् वास्तुशास्त्रस्य बुद्धिमान् ।
शास्त्रानुसारेणाभ्युद्य लक्षणानि च लक्षयेत् ॥ "

सामुद्र, गणित, ज्योतिष, छन्द, शिराज्ञान, शिल्प, यन्त्रकर्म और विधि वास्तुशास्त्र के आठ अङ्ग है । इसको हम एक चित्र के माध्यम से भी समझ सकते है ----

इस प्रकार से यहां कुछ आचार्यों के मत में वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का एक अङ्ग है, वहीं कुछ आचार्य ज्योतिष को वास्तुशास्त्र का अङ्ग मानते है, परन्तु वास्तव में इन दोनों शास्त्रों का अङ्गाङ्गिभाव सम्बन्ध है और ये दोनों शास्त्र एक दूसरे के पूरक है तथा इन दोनों शास्त्रों का उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण है। इन दोनों शास्त्रों का उपदेश हमारे आचार्यों ने मनुष्य के जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए किया है। इस शास्त्र की चर्चा वैदिक काल से आरम्भ होकर भारतीय सभ्यता के हर काल में हमें प्राप्त होती है । वेद, वेदाङ्ग, पुराण, रामायण, महाभारत आदि विविध कालों में रचित साहित्य में वास्तुकला के निदर्शन प्राप्त होते है जिससे इस शास्त्र की सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता का ज्ञान होता है। रामायण में कई पुरियों का वर्णन है जैसे- अयोध्यापुरी,किष्किन्धापुरी,लङ्कापुरी का वर्णन रामायणकाल की वास्तुकला और शिल्पकला का एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। सुन्दरकाण्ड मे विभिन्न उद्यानों और पुष्पकविमान का वर्णन वास्तुशिल्प का एक अद्वितीय उदाहरण है ।महाभारत में भी वास्तुशास्त्र और शिल्पशास्त्र के अद्भुत निदर्शन प्राप्त होते है । महाभारत में प्राप्त अनेक पुरियों का वर्णन उस काल के उत्कृष्ट वास्तुकौशल का परिचायक है। जैसे- इन्द्रप्रस्थपुरी, द्वारकापुरी और मिथिलापुरी का वर्णन वास्तुशास्त्र के पुरनिवेश की सङ्कल्पना का उदाहरण है। विभिन्न प्रकार के सभा भवन जैसे- पाण्डवसभा, यमसभा, वरूणसभा, कुबेरसभा, इन्द्रसभा और

लाक्षागृह का वर्णन भी वास्तुशास्त्र के उत्कृष्ट उदाहरण है। कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में भी वास्तुशास्त्र की चर्चा दृष्टिगोचर होती है। वहां वास्तु की परिभाषा, दुर्गनिवेश, ग्रामनिवेश, नगरनिवेश, राष्ट्रनिवेश, भवन में द्वारविषयक चर्चा तथा ग्रन्थ में पुर-तोरण-प्रतोली आदि शब्दों के प्रयोग से एक बात तो निश्चित है कि कौटिल्यार्थशास्त्र के रचयिता वास्तुशास्त्र के भी मर्मज्ञ विद्वान थे। मनुस्मृति में भी गुल्म-ग्राम-राष्ट्र-दुर्ग आदि के प्रसङ्ग से विविध वास्तुविषयों की चर्चा की गई है। शुक्रनीति में भी भवननिर्माण, राजधानी की स्थापना, राजप्रासाद, दुर्गनिर्माण, प्रतिमानिर्माण, मन्दिरनिर्माण और राजमार्गनिर्माण आदि वास्तु के विविध विषयों की चर्चा की गई है। आगम साहित्य में भी कई स्थानों पर वास्तुशास्त्र के विविध विषयों की चर्चा प्राप्त होती है। कामिकागम के ४८ अध्यायों में वास्तुविद्या का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार से उत्तरवैदिक कालीन साहित्य में वास्तुशास्त्र के बीज अनेक स्थलों पर दिखाई देते है। वैदिककाल में उद्भूत वास्तुशास्त्र का पल्लवन और विकास पौराणिक युग में अपने चरम पर पहुंच गया। लगभग सभी अष्टादशपुराणों में वास्तुशास्त्र की चर्चा कम या अधिक रूप में प्राप्त होती है।मत्स्यपुराण, अग्निपुराण,स्कन्धपुराण, गरूडपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराण में वास्तुविषयक वर्णन विशेष रूप से प्राप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिए।

1. मकान मानव की मूलभूत आवश्यकता है।
2. भूखण्ड को अनियोजित करना वास्तु है।
3. ऋग्वेद में सुन्दर घर के लिए सुवास्तु शब्द का प्रयोग किया गया है।
4. शुल्व शब्द का अर्थ रज्जु नही है।
5. अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है।
6. ज्योतिषशास्त्र के दस स्कन्ध है।
7. वास्तुशास्त्र ज्योतिष के संहिता स्कन्धान्तर्गत है।
8. वास्तुशास्त्र के आठ अंग है।

१.४ वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक

ब्रह्मा जी को वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक के रूप में माना जाता है। पुराणों के अनुसार पृथु ने जब पृथ्वी को समतल किया और ब्रह्मा जी से पृथ्वी पर नगर–ग्राम आदि की रचना के सम्बन्ध में निवेदन किया। यथोक्तम् ---

" ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च।

घोषान् व्रजान् सशिविरानाकारान् खेटखर्वटान् ॥
प्राक् पृथोरिह नैतेषां पुरग्रामादिकल्पना ।
यथा सुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभया: ॥ "

तब ब्रह्मा जी ने अपने चारों मुखों से विश्वकर्मा आदि की उत्पत्ति की। ब्रह्मा के पूर्व मुख को विश्वभू, दक्षिण मुख को विश्वविद, पश्चिम मुख को विश्वस्रष्टा और उत्तर मुख को विश्वस्थ कहा जाता है। ब्रह्मा के विश्वभू नामक मुख से विश्वकर्मा की, विश्वविद नामक दक्षिण मुख से मय की, विश्वस्रष्टा नामक पश्चिम मुख से मनु की तथा उत्तर दिशा में स्थित विश्वस्थ नामक मुख से त्वष्टा की उत्तपत्ति हुई । इन चारों में से विश्वकर्मा और मय की परम्परा वास्तुशास्त्र में अत्यधिक पल्लवित और विकसित हुई ।

1.4.1. वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्य

वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का उल्लेख वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों और पुराणों में प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण में भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति इन अठारह आचार्यों का वर्णन किया गया है । यथोक्तम् ---

" भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मामयस्तथा ।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर: ॥
ब्रह्मा कुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका: ।
संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिण: ॥"

अग्निपुराण में वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों की सङ्ख्या पच्चीस कही गई है, जो इस प्रकार है-

" व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशति सङ्ख्यया ।
हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादं गार्ग्यगालवम् ।
नारदीयं च सम्प्रश्नं शाण्डिल्यं वैश्वकं तथा ॥
सत्योक्तं शौनकं तन्त्रं वशिष्ठं ज्ञानसागरम् ।
स्वायम्भुवं कापिलं च ताक्ष्य नारायणीयकम् ॥
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारूणकम् ।

बौधायनं तथार्षं तु विश्वोक्तं तस्य सारत: ॥"

मानसार में वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों की सङ्ख्या बत्तीस कही गई है। मानसार में विश्वकर्मा, विश्वेश, विश्वेसार, प्रबोधक, वृत्र, मय, त्वष्टा, मनु, नल, मानवित, मानकल्प, मानसार, प्रष्टा, मानबोध, विश्वबोध, नय, आदिसार, विशाल, विश्वकाश्यप, वासुबोध, महातन्त्र, वास्तुविद्यापति, पाराशरीयक, कालयूपचैत्य, चित्रक, आवर्य, साधकसार, भानु, इन्द्र, लोकज्ञ और सूर्य इन आचार्यों का उल्लेख किया गया है ।यथोक्तम् --

" विश्वकर्मा च विश्वेश: विश्वसार: प्रबोधक: ।
वृत्तश्चैव मयश्चैव त्वष्टा चैव मनुर्नल: ॥
मानविन्मानकल्पश्च मानसारो बहुश्रुत: ।
प्रष्टा च मानबोधश्च विश्वबोधो मयस्तथा ॥
आदिसारो विशालाश्च विश्वकाश्यप एव च ।
वास्तुबोधो महातन्त्रो वास्तुविद्यापतिस्तथा ॥
पाराशरीयकश्चैव कालयूपो महाऋषि: ।
चैत्याख्य: चित्रक: आवर्य: साधकसारसहित: ॥
भानुश्चेन्द्रश्च लोकज्ञ: सौराख्य: शिल्पिवित्तम: ।
ते एव ऋषय: प्रोक्ता द्वाविंशति सङ्ख्यया ॥"

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों की सङ्ख्या के विषय में विविध मत है, परन्तु एक बात निश्चित है कि यह शास्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में विकसित था और इस शास्त्र के अध्येताओं और आचार्यों की एक अपनी विशिष्ट परम्परा थी। इसका शास्त्रीय और प्रायोगिक कलेवर द्विजों के ही परिश्रम का परीणाम था । वास्तुकला मर्मज्ञ सूत्रधार के गुणों की चर्चा करते हुए उसके द्विजत्व की भी चर्चा के गई है । यथोक्तम् ---

" सुशीलश्चतुरो दक्ष: शास्त्रज्ञो लोभवर्जित: ।
क्षमायुक्तो द्विजश्चैव सूत्रधार स उच्यते ॥"

शनै: शनै: यह विद्या द्विजेतरों के हस्तगत हो गई और इस विद्या के अध्येताओं के ज्ञान, प्रयोग और चारित्रिक ह्रास के कारण यह विद्या अपना गरिमामय स्थान खो बैठी। विश्वकर्मा के शाप से दग्ध इस विद्या के अध्येता-शिल्पि विश्वकर्मा के शापित पुत्र कहलाए जो कि मालाकार, कर्मकार, शंखकार, कुविन्द, कुम्भकार, कांस्यकार, सूत्रधार, चित्रकार, स्वर्णकार थे। ये विश्वकर्मा के शूद्रपुत्रों के रूप में विख्यात हुए । यथोक्तम् –

" ततो बभूवु: पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिण: ।
मालाकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दका: ॥
कुम्भकार: कांस्यकार: स्वर्णकारस्तथैव च।
पतितास्ते ब्रह्मशापाद अयाज्या वर्णसङ्करा ॥"

वास्तुशास्त्र के विविध आचार्यों के नामों का उल्लेख तो प्राप्त होता है परन्तु उनकी वास्तुशास्त्र की रचनाओं के बारे में बहुत कुछ प्राप्त नही होता है। मत्स्यपुराण में वर्णित अष्टादश आचार्यों में गर्ग आचार्य ज्योतिषशास्त्र के भी आचार्य थे । इनके "गार्ग्यतन्त्र" नामक एक ग्रन्थ की चर्चा अग्निपुराण में प्राप्त होती है। इसी प्रकार से आचार्य नारद का नारदीय तन्त्र, नारदसंहिता, नारदीयपाञ्चरात्र एवं नारद वास्तुविधान आदि ग्रन्थ प्राप्त होते है। आचार्य अत्रि का आत्रेयतन्त्र, अत्रिसंहिता, अत्रिस्मृति नामक ग्रन्थ प्राप्त होते है। शुक्राचार्य की शुक्रनीति, बृहस्पति की बृहस्पतिस्मृति एवं बार्हस्पत्यशास्त्र आदि ग्रन्थ प्राप्त होते है। आचार्य "नग्नजित" का चित्रलक्षण ग्रन्थ प्राप्त होता है। रामायणकाल में वास्तुविद के रूप में आचार्य नल और नील का वर्णन प्राप्त होता है। इन्होने ही समुद्र पर सेतु का निर्माण किया था । महाभारत काल में लाक्षागृह का निर्माण करने वाले आचार्य पुरोचन प्रमुख वास्तुविद थे। आचार्य वराहमिहिर ने गर्ग, मनु, वशिष्ठ, पाराशर, विश्वकर्मा, नग्नजित, मय आदि आचार्यों की चर्चा वास्तुशास्त्रज्ञ के रूप में की है। वास्तुकौस्तुभ ग्रन्थ में शौनक, राम, रावण, परशुराम, हरि, गालव, गौतम, शौभित, वैद्याचार्य, कार्तिकेय और च्यवन आदि आचार्यों का उल्लेख किया गया है। विश्वकर्माप्रकाश में गर्ग, पराशर एवं बृहद्रथ को वास्तु का प्रवर्तक आचार्य कहा गया है। आचार्य कश्यप का काश्यपशिल्प, अगस्त्य का सकलाधिकार प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन सभी आचार्यों में आचार्य विश्वकर्मा और मय ने वास्तुशास्त्र के प्रमुख आचार्य के रूप में स्थान प्राप्त किया है । इन दोनों आचार्यों की अपनी–अपनी परम्पराओं का विकास समय के साथ–साथ होता गया। विश्वकर्मा देवशिल्पि और मयाचार्य दानवशिल्पि के रूप में विख्यात हुए। विश्वकर्मा नागर परम्परा के प्रवर्तकाचार्य थे । इन्होने ही ब्रह्मा के सृष्टिकार्य में उनका सहयोग किया। इनको ६४ कलाओं का ज्ञाता माना जाता है। इनका स्वरूप चित्रण करते हुए बताया गया है कि ऐरावत हाथी पर आरूढ, प्रसन्नमुख, आभूषणों से सुसज्जित, चतुर्भुज, पीले वस्त्र धारण करने वाले, शान्तरूप हाथ में सूत्रादि धारण करने वाले देवता है।विश्वकर्मा के जन्म के विषय में विविध वास्तुग्रन्थों में विविध मत प्राप्त होते है। समराङ्गण सूत्रधार में इनको बृहस्पति के भाग्नेय, प्रभासवसु के पुत्र कहा गया है।जबकि अपराजितपृच्छा में इनका जन्म चाक्षुष मनु के वंश में माना गया है । जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित इनके मानस पुत्र माने जाते है। इनमें से जय और अपराजित दोनों ही वास्तुविद के रूप में विख्यात हुए। जय और अपराजित दोनो का प्रश्नोत्तररूप ग्रन्थ "जयपृच्छा" तथा "अपराजितपृच्छा" के रूप में प्राप्त होता है। आचार्य विश्वकर्मा ने वास्तुशास्त्र, विश्वकर्माप्रकाश, दीपार्णव, क्षीरार्णव, वृक्षार्णव, अपराजितपृच्छा, जयपृच्छा, वास्तुप्रदीप आदि ग्रन्थों का उपदेश किया। वास्तुशास्त्र की द्राविड परम्परा के जनक मयाचार्य है। महाभारत में एक प्रसंङ्ग में आचार्य मय कहते है ---

" अहं हि विश्वकर्मा दानवानां महाकावि: ॥"

विश्वकर्मा यहां देवशिल्पि थे और मयाचार्य दानवों के शिल्पि थे। रामायण के अनुसार- "मय

दिति के पुत्र थे।स्वर्ग की अप्सरा हेमा इनकी पत्नी थी और मन्दोदरी इनकी पुत्री थी। जिसका विवाह रावण से हुआ । इस प्रकार यह रावण के श्वसुर थे। मयाचार्य ने पाण्डवों के सभा भवन, पुष्पक विमानादि अनेक रचनाएँ की। इनका प्रमुख ग्रन्थ "मयमतम्" है। इसके अतिरिक्त मानसार, कश्यपशिल्प, मनुष्यालयचन्द्रिका, ईशानशिवगुरूदेव पद्धति आदि मय परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ है।

अभ्यास प्रश्न -२

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

१) वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक __________ है ।

२) ब्रह्मा के पूर्वमुख का नाम ________ है ।

३) मय की उत्पत्ति ब्रह्मा के ________ मुख से हुई ।

४) मत्स्यपुराण में वास्तु के आचार्यों की सङ्ख्या ____ है ।

५) _______ में वास्तु के पच्चीस आचार्यों का वर्णन है ।

६) मानसार में वास्तु के _____ आचार्यों का उल्लेख है ।

७) द्राविड परम्परा के जनक _______ है ।

1.5. सारांश --

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि मकान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है, जब से मनुष्य जंगलों के स्थान पर भवन में रहने लगा, तब से वह सभ्य कहलाने लगा। धीरे– धीरे अपने निवास को सुन्दर और सुविधाजनक बनाने की दिशा में प्रवृत्त मानव ने भवन निर्माण के विविध सिद्धान्तों का निर्माण किया और इसे वास्तुशास्त्र का नाम दिया उसने प्रकृति के साथ सामञ्जस्य करते हुए भवन निर्माण की कल्पना की और "यत पिण्डे तत ब्रह्माण्डे" इस सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ऐसे भवन के निर्माण की कल्पना की, जिसमें पञ्चमहाभूतों का समुचित उपयोग हो सके और वास्तुशास्त्र में यह सिद्धान्त निबद्ध किए गए। वैदिक काल में यहां वास्तुशास्त्र का उपयोग यज्ञवेदी और यज्ञशाला के निर्माण में ही होता था, वहीं उत्तरवैदिक काल में वास्तुशास्त्र के माध्यम से बडे-बडे भव्य देवप्रासादों, राजप्रासादों और वास्तुसम्मत भवनों का निर्माण होने लगा । अथर्ववेद के उपवेद "स्थापत्यवेद" में प्राप्त वास्तुशास्त्र के सूत्रों का विकास हुआ और विकास की यह परम्परा "कल्पवेदाङ्ग" और "ज्योतिषवेदाङ्ग" से होती हुई स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में दृष्टिगोचर हुई। ज्योतिषवेदाङ्ग के संहिता स्कन्धान्तर्गत वास्तु की चर्चा प्राप्त होती है। धीरे-धीरे वास्तुशास्त्र पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई । इन ग्रन्थों में अष्टाङ्गवास्तु की कल्पना की गई। जिनमें वास्तु के आठ अङ्गों मे ज्योतिष को भी एक अङ्ग माना गया। इसलिए वास्तु के प्रवर्तक आचार्य और ज्योतिष के

प्रवर्तक आचार्यों में कहीं-कहीं साम्यता भी दृष्टिगोचर होती है, मत्स्यपुराण में वास्तु के अष्टादश, अग्निपुराण में पच्चीस और मानसार में बत्तीस आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र दो परम्पराओं के रूप में विकसित हुआ। एक विश्वकर्मा परम्परा और दूसरी मय परम्परा। विश्वकर्मा नागर परम्परा के तथा मय द्राविड परम्परा के जनक कहलाए। इन दोनों परम्पराओं में वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थो की रचना हुई। इन ग्रन्थों में वर्णित सिद्धान्तों का अनुपालन अद्यावधि भव्य भवनों के निर्माण में किया जाता है ।

1.6. पारिभाषिक शब्दावली

१) **वास्तु** -- वास्तु शब्द का प्रयोग सुनियोजित भवन के लिए किया जाता है। किसी भी अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित कर जब उसका प्रयोग निवास, व्यापार, यां मन्दिर के रुप में किया जाता है, तो उस भूखण्ड को वास्तु कहा जाता है ।

२) **वेद** – विश्ववाङ्गमय का उपलब्ध प्राचीनतम साहित्य वेद है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चार वेद है। वेद शब्द का अर्थ ही ज्ञान है ।

३) **उपवेद** – चार वेदों के चार ही उपवेद है । ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का स्थापत्यवेद उपवेद है। स्थापत्यवेद को ही वास्तु का उद्गम माना जाता है ।

४) **वेदाङ्ग** – वेदों के सम्यक ज्ञान हेतु छ: वेदाङ्गों की रचना की गई। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष। ये वेद के छ: अङ्ग है। वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध कल्प और ज्योतिष वेदाङ्ग से है ।

५) **ज्योतिष**— ग्रहों की गति, स्थिति आदि के माध्यम से मनुष्य पर पडने वाले शुभाशुभ फ़ल का विचार जिस वेदाङ्ग में किया जाए, उसको ज्योतिष वेदाङ्ग कहते है । ज्योतिष वेदाङ्ग के तीन स्कन्ध है ।

१) सिद्धान्त
२) संहिता
३) होरा

वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध से है ।

1.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१) सत्य

२) असत्य

३) सत्य

४) असत्य

५) असत्य

६) असत्य

७) सत्य

८) सत्य

अभ्यास – २ की उत्तरमाला

१) ब्रह्मा
२) विश्वभू
३) दक्षिण
४) अठारह
५) अग्निपुराण
६) बत्तीस
७) मय

1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass,

Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी – १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – १९८९

1.9. **सहायक ग्रन्थ सूची**

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

1.10. **निबन्धात्मक प्रश्न**

१) वास्तु की परीभाषा लिखते हुए वास्तु के स्वरूप का विस्तृत वर्णन कीजिए।

२) पृथ्वी पर प्रथम भवन निर्माण की कथा को विस्तार से लिखिए।

३) वैदिक काल में वास्तुशास्त्र के स्वरूप का वर्णन करें।

४) वास्तुशास्त्र के उद्गमस्थल पर निबन्ध लिखें।

५) वास्तु और ज्योतिष के सम्बन्ध पर निबन्ध लिखें।

६) वास्तुशास्त्र की आचार्य परम्परा पर निबन्ध लिखें।

इकाई – 2 वास्तुपुरूष की अवधारणा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारतीय विज्ञान और धर्म

2.3.1 पृथ्वी का सुनियोजन

2.4 वास्तुपुरूष का सामान्य परिचय

2.4.1 भवन में वास्तुपुरूष

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीयों के जीवन पर आरम्भ से ही अध्यात्म का प्रभाव रहा है । यहां की हर एक कला, हर एक शास्त्र, हर एक विज्ञान, धर्म और अध्यात्म से अनुस्यूत है । धर्म और विज्ञान की यह पारस्परिकता हमें भारतीयों के जीवन में निरन्तर दिखाई देती है । यहां का विज्ञान केवल शुष्क विज्ञान न होकर, अध्यात्म के रस से सराबोर हो, सरस विज्ञान हो गया है। सभी कलाओं, सभी विज्ञानों की तरह वास्तुविज्ञान भी अध्यात्म की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर पुष्पित और पल्लवित हुआ । वैदिक काल में वास्तुविज्ञान पर यह आध्यात्मिक प्रभाव वास्तोष्पत्ति और पौराणिक काल में वास्तुपुरूष के रूप में दृष्टिगोचर होता है । वास्तुपुरूष की व्यापकता यहाँ सम्पूर्ण भूखण्ड पर मानी ही जाती है , वही वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में भी वास्तुपुरूष की व्यापकता दिखाई देती है । वास्तुपुरूष भूखण्ड पर औंधे मुंह लेटा हुआ है ।अतः भवननिर्माण के समय वास्तुपुरूष के मर्म और अतिमर्म स्थानों को छोडकर शेष भूखण्ड पर निर्माण की कल्पना वास्तुपुरूष की वास्तुशास्त्र में महत्ता को इंगित करती है ।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- बता सकेंगे कि भारतीयों के जीवन पर धर्म का प्रभाव है ।
- समझा सकेंगे कि भारतीय विज्ञान, अध्यात्म से अनुस्यूत है ।
- पृथ्वी के सुनियोजन को समझ सकेंगे ।
- वास्तुपुरूष के सामान्य परिचय को जान पायेंगे ।
- भवन में वास्तुपुरूष के विन्यास को समझ सकेंगे ।

2.3 भारतीय विज्ञान और धर्म

सनातन काल से ही भारतीयों के जीवन पर धर्म का प्रभाव रहा है । धर्म और जीवन की यह पारस्परिकता इस देश की एक अद्‌भुत विशेषता है और यही पारस्परिकता भारतीय सभ्यता के उन्नयन का कारण है हमारे शास्त्रों में धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है - "यतोऽभ्युदय- निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" । अर्थात् जिससे मानव का अभ्युदय और निश्रेयस् दोनों सिद्ध हो सके वही धर्म है । अभ्युदय का अर्थ सांसारिक उन्नति से है । आमोद-प्रमोद, खान-पान, परिधान-अलङ्करण और रहन-सहन के साधन जितने प्रचुर हो, सुलभ हो, उतने ही अभ्युदय के द्योतक होते है । जब तक मानव जंगलों में, पर्वतों की कन्दराओं में निवास करता

था, तब तक उसे जंगली और असभ्य कहा जाता था । जिस दिन से मानव ने भव्य घरों और नगरों का निर्माणारम्भ किया, उसी दिन से मानव सभ्य कहलाने लगा । निवास हेतु भवननिर्माण की परम्परा गुफ़ाओं से आरम्भ हुई और फ़िर धीरे- धीरे मानव विशाल और भव्य भवनों का निर्माण करने लगा । यह भव्य भवन सर्वप्रथम राजा और देवता के लिए बनाए जाते थे । इनको राज-भवन और देव-भवन कहा जाता था । और सामान्य लोग साधारण भवनों में रहते थे । पृथ्वी के इस भू-भाग "भारत" पर सर्वाधिक देवभवनों का ही निर्माण हुआ । क्योंकि धर्म से अनुप्राणित भारत की जनता ने सदैव ही अपने देवता के लिए स्वयं से भी उत्कृष्ट समर्पण की भावना रखी है । कोई भी कला, कोई भी शास्त्र, कोई भी विज्ञान अगर अनुशासित न हो तो वह उच्छृंखल हो जाता है और रचनात्मक होने के स्थान पर विध्वंसक हो जाता है । इसलिए ही भारतीयों ने हर इक कला और विज्ञान को अनुशासित करने के लिए उस कला को, उस विज्ञान को शास्त्र के नियमों में बांधा । जिससे कि वह शास्त्र, कला या विज्ञान केवल शुष्कविज्ञान ही न रह जाए,अपितु अध्यात्म से जुडकर लोकोपकारक हो जाए, यही कारण है कि भारत की हर एक कला और विज्ञान हमें देवत्व की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है। हमारे यहां कि नृत्य- कला में नटराज शिव का स्थान, संगीत- कला में नाद ब्रह्म की उत्कृष्टता, आलेख्य- कर्म में जगन्नाथ के पट्ट- चित्र और वास्तु- कला में वास्तु ब्रह्म को जो स्थान प्राप्त है, वह भारत की विविध कलाओं में देव- तत्त्व का प्रमाण है । यह अध्यात्म का प्रभाव ही है कि भारत की समस्त कलाएं, शास्त्र और विज्ञान आज भी उच्छ्रंखल न होकर लोकोपकारक है । भवन निर्माण कला को भी वास्तुशास्त्र ने लोकोपकारक बना दिया है । भारतीय स्थापत्य की यह विशेषता है कि भारतीय स्थापत्य में पार्थिव और अपार्थिव तत्वों का अद्भुत सङ्गम है । जबकि विश्व की अन्य संस्कृतियों में हमें यह सङ्गम कहीं भी दिखाई नही देता । जैसा कि आप लोगों ने भारत के अतिरिक्त अन्य देशों की स्थापत्य कला में भी देखा होगा । उदाहरण के लिए यूनान –रोमादि प्राचीन राष्ट्रों की वास्तुकला में केवल पार्थिव तत्त्वों का विकास ही दृष्टिगोचर होता है । जबकि भारतीय स्थापत्य में प्रत्येक निर्माण के पीछे एक दैवीय पृष्ठभूमि रही है । जो कि भारतीय संस्कृति के अध्यात्म से अनुस्यूत होने की परिचायक है । भारत की वास्तुकला और स्थापत्यशास्त्र पर अध्यात्म का प्रभाव हमें वेदों और पुराणों में कई स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। वास्तु से अभिप्राय: ही एक अनियोजित भूखण्ड को सुनियोजित करना है और यह पृथ्वी भी अपने आप में ब्रह्माण्ड की एक लघु इकाई और वास्तु का एक उदाहरण है । यह भी अपनी आरम्भिक अवस्था में अनियोजित थी और रहने के योग्य नही थी । ऐसा भूगर्भशास्त्री भी मानते है । शनै: शनै: इसका सुनियोजन हुआ और यह रहने योग्य हुई । इसके सुनियोजन के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत पुराण में एक कथा प्राप्त होती है, जो भारतीय भूगर्भ विज्ञान पर अध्यात्म के प्रभाव की द्योतक है ।

2.3.1 पृथ्वी का सुनियोजन

महाराज पृथु के राज्याभिषेक के बाद ब्राह्मणों ने उन्हे प्रजा का रक्षक उद्घोषित कर दिया । उन दिनों पृथ्वी अन्नहीन हो गई थी जिसके कारण राजा पृथु की प्रजा भूख से पीडित होकर त्राहि- त्राहि करने लगी । प्रजाजनों ने राजा पृथु को अपनी इस समस्या से अवगत करवाया । प्रजा का करूण- क्रन्दन सुनकर पृथु को इन सबके मूल में अन्नाभाव ही कारण रूप से दिखाई दिया । "पृथ्वी ने स्वयं ही अन्न एवं औषधादि को अपने भीतर छुपा लिया है ।" ऐसा अपनी बुद्धि में निश्चित कर पृथु ने क्रोधित होकर पृथ्वी को लक्ष्य बनाकर अपने धनुष पर बाण चढाया । क्रोधित पृथु को देखकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर सम्पूर्ण सृष्टि में रक्षा के लिए भागने लगी । जब पृथ्वी को कहीं भी अभयदान नही मिला तो गौ रूप धारिणी पृथ्वी ने बहुत ही विनम्र भाव से राजा पृथु को प्रणाम किया और उनके क्रोध को शान्त करने के लिए कई प्रकार से उनकी स्तुति की । राजा पृथु के शान्त होने पर पृथ्वी ने उन्हे बताया कि राक्षसों और दुष्टों से बचाने के लिए और यज्ञों के निमित्त उसने दिव्य औषधियों को अपने भीतर छुपा लिया है । इन औषधियों को आप कृषि आदि उपायों के द्वारा पुन: प्राप्त कर सकते है, परन्तु सर्वप्रथम इस अस्त व्यस्त पृथ्वी को समतल बनाना होगा। तदनन्तर राजा पृथु ने अपने बाण की नोंक से पृथ्वी पर स्थित ऊंचे – ऊंचे पर्वतों को फ़ोडकर उसे समतल बनाया और इस पृथ्वी पर अनेंको गांव, कस्बे, नगर और दुर्ग बसायें । इस प्रकार अनियोजित पृथ्वी को सुनियोजित कर रहने योग्य बनाया गया । यह वृतान्त वास्तव में प्राचीन भूगर्भशास्त्र की कथा है । पृथ्वी गोल है और लाखों वर्ष पूर्व यह अत्यन्त गर्म थी, रहने योग्य नही थी । यह ज्ञान आधुनिक विज्ञान की ही उपज नही है । वस्तुत: हमारे प्राचीन ऋषि इस तथ्य से पूर्ण परिचित थे । इस आख्यान से यह ज्ञात होता है कि भारतीय वास्तुशास्त्र का दृष्टिकोण कितना व्यापक था । यह समस्त भूमण्डल और सौरमण्डल ही वास्तु का विषय है । भारतीय वास्तुविज्ञान केवल भवन- निर्माण तक ही सीमित नही है, अपितु यह समस्त ब्रह्माण्ड ही भारतीय वास्तुविज्ञान का विषय है । दो पडोसी देशों की परस्पर मित्रता और शत्रुता का वहां रहने वाले लोगो पर निश्चित रूप से प्रभाव पडता है । इसी प्रकार किसी देश के जनपदों, नगरों, ग्रामों,कुटुम्बों की पारस्परिक मित्रता और शत्रुता भी उस स्थान के नागरिकों को प्रभावित करती है और पृथ्वी का भी सूर्यादि ग्रहों से सम्बन्ध पृथ्वी पर रहने वाले लोगों को निश्चित रूप से प्रभावित करता है । हमारी पृथ्वी इस सौरमण्डल की बहुत लघु इकाई है, जब सौरमण्डल के अन्य सदस्य सूर्य और चन्द्र इस पृथ्वी को प्रभावित करते है, तब यह सूर्य-चन्द्र और सौरमण्डल के अन्य ग्रह इस पृथ्वी पर रहने वाले मानवों और पशुओं को कैसे प्रभावित नही करेंगे ? और इस पृथ्वी पर बनने वाले भवनों पर इनका प्रभाव क्यों नही पडेगा ? अवश्य ही पडेगा। इसलिए भारतीय वास्तुशास्त्र

इन प्राकृतिक शक्तियों के साथ समन्वय कर उनका सम्पूर्ण लाभ लेकर मानव मात्र के जीवन को सुखमय बनाने की बात करता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिए –

१. भारतीयों के जीवन पर अध्यात्म का प्रभाव है।

२. भारतीय वास्तुकला में पार्थिव- अपार्थिव तत्त्वों का संगम है।

३. आरम्भ से ही पृथ्वी सुनियोजित थी।

४. पृथु ने पृथ्वी का सुनियोजन किया था।

५. पृथ्वी सौर- मण्डल की ही इकाई है।

2.4 वास्तुपुरूष: सामान्य परिचय

जैसा कि आप लोग समझ गये होंगे कि भारत की हर कला, हर शास्त्र और हर विज्ञान धर्म से अनुप्राणित और अध्यात्म से अनुस्यूत है। भारत की विविध कलाओं में से प्रमुख वास्तुकला और शास्त्रों में प्रमुख वास्तुशास्त्र भी अध्यात्म से अनुस्यूत है और यह देवतत्त्व हमें वास्तु के विविध सिद्धान्तों में दृष्टिगोचर होता है। अगर हम वैदिक- कालीन वास्तुशास्त्र के स्वरूप का अध्ययन करें, तो ज्ञात होता है कि उस काल में वास्तुशास्त्र का देवतत्त्व "वास्तोष्पति" में निहित था। वास्तोष्पति गृह का रक्षक देवता है। ऋग्वेद में वास्तोष्पति की स्तुति करते हुए गृह की रक्षा की कामना की गई है।

तद्यथा –

" वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा न:।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।"
" वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फ़ानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व॥"
"वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमदि रण्वया गातुमत्या।

पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभि: सदा न:॥"

इन मन्त्रो से ज्ञात होता है कि वास्तोष्पति गृह का स्तुत्य देवता था। उससे एक सुन्दर गृह की कामना की गई है, उसके साथ-साथ गृह की रक्षा और गृह में रहने वाले द्विपदों (मानव) और चतुष्पदों (पशुओं) की रक्षा की भी प्रार्थना की गई है। गृह केवल पार्थिव तत्त्वों

से निर्मित होने वाला भवन मात्र न होकर अपार्थिव और पार्थिव दोनो तत्त्वों के संगम से निर्मित एक देव-भवन स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है, जिसमें रहने वाले समस्त द्विपद और चतुष्पद सुख, शान्ति और पारस्परिक सौहार्द की भावना मन में रखकर अपने जीवन का निर्वाह करते है और वैदिक- काल में उद्भूत यह भावना उत्तर- वैदिक काल, पौराणिक काल और आधुनिक काल में भी भारतीयों के जीवन में व्याप्त है। वैदिक-काल में वास्तुशास्त्र का देव-तत्त्व यहां वास्तोष्पति में दृष्टिगोचर होता है, पौराणिक - काल में वही देव- तत्त्व हमें वास्तुपुरूष के रूप में दिखाई देता है । वास्तुपुरूष की व्याप्ति हमें वास्तुशास्त्र के सभी मानकग्रन्थों में भी दिखाई देती है। इससे ही हमें वास्तुशास्त्र में वास्तुपुरुष का कितना महत्त्व है, यह ज्ञात हो जाता है । वास्तव में भारतीय संस्कृति में पुरूष का एक अपना महत्त्व है । पुरूष से हमारा अभिप्राय: दार्शनिक दृष्टि से पुरूष के स्वरुप से है ना कि लौकिक दृष्टि से हड्डि-मांस के पुरूष से। और पुरूष की व्याप्ति हमें वेद से लेकर लगभग सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में दिखाई देती है । भारतीय विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं- प्रशाखाओं में हमें पुरूष की व्याप्ति प्राप्त होती है। हां, उसके स्वरूप में अवश्य ही थोडा- बहुत अन्तर दिखाई देता है। जैसा कि आप जानते है कि विश्व वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी पुरूष की कल्पना की गई है। ऋग्वेद में पुरूष- सूक्त के मन्त्रों के माध्यम से उस परम पुरूष की स्तुति करते हुए कहा गया है --

" सहस्रशीर्षा पुरूष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ।।१॥"
" पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥"
" एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरूष: ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥"

इस प्रकार से १६ मन्त्रों के माधयम से उस परम पुरूष की स्तुति करते हुए कहा गया है कि उस पुरूष के सहस्र हाथ,पैर,आंखे है और वह पुरूष इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। सृष्टि के आदि में एकमात्र वह ही पुरूष था, जिससे इस सम्पूर्ण की रचना हुई। उस पुरूष से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि उत्पन्न हुए । उस से ही वेद के सभी मन्त्र उत्पन्न हुए । उससे ही गौ आदि प्राणी उत्पन्न हुए । चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, दिशाएं सम्पूर्ण भवन आदि उस परम पुरूष से ही उत्पन्न हुए है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की कल्पना ऋग्वेद में उस परमपुरूष से ही की गई है । इस से ही भारतीय परम्परा में पुरूष का महत्त्व ज्ञात होता है । इतना ही नही, ज्ञान के परम स्रोत, वेद को भी दार्शनिक दृष्टि से पुरूष ही माना गया है । और वेद पुरूष के नाम से सम्बोधित किया गया है । छ: वेदाङ्गों को उस वेद- पुरूष के शरीर के विविध अङ्गों के रूप में विन्यस्त करते हुए कहा गया है –

" छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षु: निरूक्तं श्रौत्रमुच्यते ॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्येव ब्रह्मलोकं महीयते ॥"

इस प्रकार से छन्द वेदाङ्ग को वेद पुरूष के पैर, कल्प वेदाङ्ग को वेद- पुरूष के हाथ, ज्योतिष वेदाङ्ग को वेद- पुरूष के चक्षु, निरूक्त वेदाङ्ग को वेद पुरूष के कान, शिक्षा वेदाङ्ग को वेद पुरूष की नासिका और व्याकरण वेदाङ्ग को वेद पुरूष का मुख कहा गया है। इस प्रकार छ: वेदाङ्गो का विन्यास वेद पुरूष के विविध अङ्गो में किया गया है।

इतना ही नही , लगभग हमारे सभी शास्त्रों में एक पुरूष की कल्पना दिखाई देती है। जैसा कि आप जानते ही है ज्योतिषशास्त्र वास्तुशास्त्र से ही सम्बद्ध शास्त्र है। ज्योतिष में भी पुरूष की कल्पना दृष्टिगोचर होती है। ज्योतिष का यह पुरूष कालपुरूष के नाम से विख्यात है। कालपुरूष के शरीर में सम्पूर्ण राशियों और ग्रहों का विन्यास किया गया है। आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक के ग्रहयोनिप्रभेदाध्याय में कालपुरूष की आत्मा सूर्य को कहा है, चन्द्रमा कालपुरूष का मन है, मङ्गल कालपुरूष के शरीर का बल है, बुध कालपुरूष की वाणी है, बृहस्पति कालपुरूष का ज्ञान और सुख है, शुक्र कालपुरूष के शरीर में काम (मदन) है, और शनि कालपुरूष का दु:ख है। यथोक्तम् –

" कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगु: सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो ।
जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दु:खं दिनेशात्मज: ॥"

इतना ही नही, कालपुरूष का अपना एक साम्राज्य माना गया है, एक राष्ट्र माना गया है, और उस कालपुरूष के राष्ट्र में सूर्य- चान्द्रमा राजा के रूप में है, मङ्गल सेनापति है, बुध राष्ट्र का युवराज है, गुरू- शुक्र दोनों सचिव है और शनि सेवक है। यथोक्तम् --

" राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुध: ।
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्य: सहस्रांशुज: ॥"

इस प्रकार से कालपुरूष के माध्यम से मनुष्य के शरीर में ग्रहों के प्रभाव को बताया गया है। जो- जो ग्रह कालपुरूष के शरीर में आत्मा, मन, सत्त्व आदि जिस- जिस का प्रतिनिधि है, वो- वो ग्रह मनुष्य के शरीर में भी उसी- उसी का प्रतिनिधि है, देखा ही गया है जन्माङ्ग में चन्द्रमा की अच्छी स्थिति मानसिक बल में बृद्धि और बुरी स्थिति मनुष्य को मानसिक बल में हानि प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त मङ्गल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि आदि भी बली होने पर तत्-तत् पदार्थो में वृद्धि और बलहीन होने पर मनुष्य को हानि प्रदान करते है। इसी प्रकार से रवि, चन्द्र,मङ्गल,बुध आदि बली होने पर मनुष्य मे राजत्व, सेनानायकत्व, और युवराजत्व आदि गुणों का विकास करते है। इस प्रकार से कालपुरूष और सामान्य पुरूष की साम्यता दिखाई गई है। ग्रहों के विन्यास की तरह द्वादश राशियों का विन्यास भी कालपुरूष के शरीर में किया गया है। मेष राशि को कालपुरूष का सिर, वृषभ को मुख, मिथुन को वक्षस्थल, कर्क को हृदय, सिंह राशि को उदर, कन्या राशि को कटि, तुला राशि को वस्ति (नाभि और व्यञ्जन

योनि का मध्य भाग) वृश्चिक राशि को लिड्ग या योनि, धनुराशि को पैरों की सन्धि, मकर राशि को पैरों की गांठ, कुम्भ राशि को जांघ, और मीन राशि को कालपुरूष के शरीर के पैर माना गया है । यथोक्तम् –

" कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोडवासो भृतो ।
वस्तिर्व्यञ्जनमुरुजानुयुग्ले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम् ॥
मेषाश्विप्रथमानवर्क्षचरणाश्चक्रस्थिता राशयो ।
राशिक्षेत्रगृहर्क्षभानि भवन चैकार्थसम्प्रत्यया: ॥"

इस प्रकार से कालपुरूष के शरीर में विविध राशियों का विन्यास किया गया है। जन्माङ्ग में जो- जो राशि शुभग्रह से युत- दृष्ट होकर बली रहती है, मनुष्य के शरीर का भी वह भाग पुष्ट होता है और जो राशि पापग्रहों से युत दृष्ट होकर पीडित रहती है, मनुष्य के शरीर का वह भाग भी पीडित, कमजोर या बलहीन होता है । इस कालपुरूष के शरीर में विविध राशियों के विन्यास को हम एक चित्र के माध्यम से भी समझ सकते है।

कालपुरुष का स्वरुप

DOMINATION OF THE ZODIAC OVER MAN.
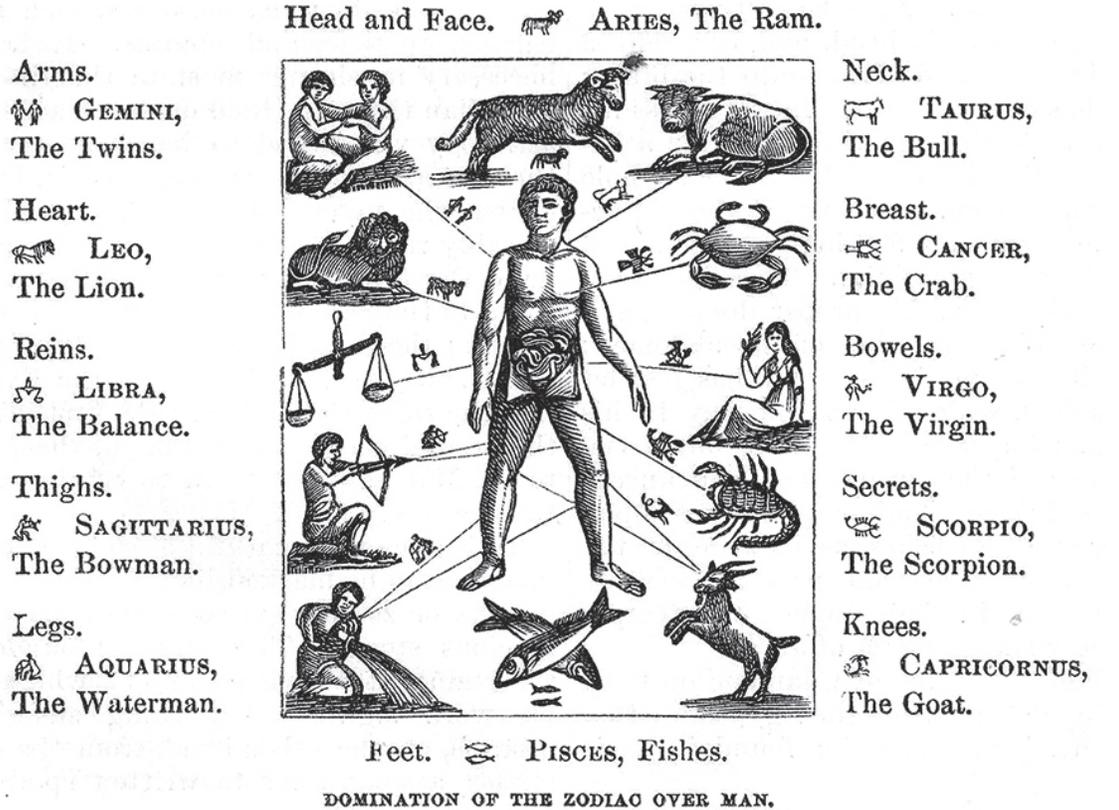
इस प्रकार से ज्योतिष के कालपुरूष के शरीर में विविध राशियों के विन्यास के माध्यम से हम मानव के शरीर के विविध अङ्गों में राशियों की स्थिति को समझ सकते है । इस प्रकार से आपने जाना कि पुरूष भारतीय संस्कृति में परमपुरूष, वेदपुरूष, कालपुरूष आदि के रूप में सर्वत्र व्याप्त है । इन्ही की तरह वास्तुशास्त्र में वास्तुपुरूष की कल्पना की गई है । वास्तव में " पुरिश्शेते पुरूष:" । यह शरीर एक पुर है और इस शरीर रूपी पुर में निवास करने वाली आत्मा ही पुरूष है । आत्मा शरीर का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, यह हम सब जानते है । जब तक आत्मा रहती है तभी तक शरीर रहता है, आत्मा के न रहने पर शरीर निष्प्रयोजन हो जाता है। परमपुरूष इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आत्म तत्त्व है, वेद पुरूष सम्पूर्ण ज्ञान- राशि का आत्म-तत्त्व है । कालपुरूष सम्पूर्ण ज्योतिष शास्त्र का आत्म- तत्त्व है और वास्तुपुरूष सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र का आत्म- तत्त्व है ।

परमपुरूष, वेद- पुरूष, और कालपुरूष से होते हुए अब हम वास्तुपुरूष की चर्चा करेंगे । वैदिक साहित्य में जो महत्त्व वास्तोष्पति का है, पौराणिक साहित्य में वही महत्त्व वास्तु -पुरूष को प्राप्त है। वैदिक काल में वास्तुशास्त्र का सर्वाधिक उपयोग यज्ञ-वेदी की निर्माण योजना में होता था, वही पौराणिक काल में वास्तुशास्त्र का सर्वाधिक प्रयोग भव्य देव- मन्दिरों के निर्माण में होने लगा । पौराणिक काल के वास्तुपुरूष का प्रसङ्ग लगभग सभी पुराणों में व्याप्त है । मत्स्यपुराण के अनुसार – प्राचीन काल में शिव और अन्धकासुर में घोर युद्ध हुआ । युद्ध श्रम से भगवान शिव के मस्तक से पसीने की एक बूंद धरती पर गिरी । उस बूंद से एक विशाल और भयावह प्राणी की उत्पत्ति हुई जिसने उत्पन्न होते ही पृथ्वी और स्वर्ग दोनों को भयभीत कर दिया । पैदा होते ही उसने समस्त राक्षसों का विनाश किया और उनका रक्तपान किया । परन्तु इससे भी उसकी तृप्ति नही हुई । भूख से व्याकुल होकर वह तीनों लोकों का भक्षण करने के लिए उद्यत हो उठा । तब निरन्तर ऊपर की ओर बढते हुए उसके शरीर को समस्त देवताओं ने मिलकर सिर से पकडा और उसे अधोमुखी कर भूमि में गाड् दिया । जिस देवता ने उसके शरीर के जिस अङ्ग को पकडा, उस देवता की स्थापना उसके शरीर के उसी अङ्ग पर मानी जाने लगी । उसी दिन से उस पुरूष का नाम वास्तुपुरूष हो गया । यथोक्तम् –

" पुरा कृतयुगे ह्यसीन्महद्भूतं समुत्थितम् ।
व्याप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं तत: ॥
तद्दृष्ट्वा विस्मयं देवा: गता: सेन्द्रा: भयावृता: ।
ततस्तै: क्रोधसन्तसैर्गृहीत्वा तमथासुरम् ॥"
विनिक्षिप्तमधोवक्त्रं स्थितास्तत्रैव ते सुरा: ।
तमेव वास्तुपुरूषं ब्रह्मा कल्पितवान् स्वयम् ॥"

वास्तुपुरूष की उत्पत्ति का यह प्रसङ्ग लगभग इसी रूप में वास्तुशास्त्र के अन्य ग्रन्थों जैसे कि राजवल्लभवास्तुशास्त्र, बृहत्संहिता, विश्वकर्माप्रकाश और पुराणों में भी प्राप्त होता है । वास्तुपुरूष के अतिविस्तृत शरीर को जब देवताओं ने व्याप्त कर लिया और जिस देवता ने वास्तुपुरूष के शरीर के जिस अङ्ग को पकडा, उस देवता की स्थापना उसी अङ्ग पर हो गई

तो वास्तुपुरूष जो कि राक्षसी प्रवृत्ति का था, और इस सम्पूर्ण सृष्टि को, भवनों को समाप्त करने के लिए, भक्षण करने के लिए उद्यत था । और जिसका शरीर विस्तृत ही होता जा रहा था । ऐसे वास्तुपुरूष के शरीर पर अनेंको देवताओं की प्रतिष्ठा होने से उसमें देवत्व के भाव जागृत होना निश्चित ही था । अब वह वास्तुपुरूष राक्षस होते हुए भी देवों से व्याप्त होने के कारण दैवीय गुणों से युक्त हो गया था और पूजनीय हो गया था । अत: प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने उस वास्तु पुरूष को वरदान दिया कि ग्राम, नगर, दुर्ग, पत्तन, मन्दिर, गृह, सरोवर, वापी, उद्यान, आदि भवन निर्माण सम्बन्धी समस्त कार्यों में वास्तुपुरूष का पूजन सर्वप्रथम होगा । यथोक्तम् ---

" वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामह: ।
ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा ॥
प्रासादे च प्रपायां च जलोद्याने तथैव च ।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तु नर प्रभो ।
आश्रियं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे ।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ॥"

इस प्रकार से वास्तुपुरूष उस दिन से भवननिर्माण सम्बन्धी कार्यों में पूजनीय हो गया । और ब्रह्मा जी ने वरदान देते हुए कहा कि जो भी मनुष्य भूमि सम्बन्धी कार्यों में वास्तुपूजन नहीं करेगा वह पद- पद पर विघ्नों से बाधित होगा, और वास्तुपुरूष का आहार बन कर मृत्यु को प्राप्त होगा । उस दिन से ही भवनारम्भ और प्रवेश के समय वास्तुपूजन की परम्परा का शुभारम्भ हुआ । वास्तव में वास्तुपुरूष की संकल्पना का आधार भी हमारी संस्कृति की अध्यात्म निष्ठा है । हमारे यहां भवन ईंट- पत्थर से निर्मित भवन मात्र नही है, बल्कि उस भवन मे, गृह के हर एक भाग में विविध देवों का निवास स्थान है । इन देवों के निवास की भावना को जानकर जो मनुष्य उस भवन में निवास करेंगे, वे भी दैवीय गुणों से ओत- प्रोत होकर समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण जीव- जगत् के कल्याण में निरन्तर तत्पर रहेंगे ।

2.4.1 भवन में वास्तुपुरूष

प्रत्येक भवन में वास्तुपुरूष औंधे मुंह लेटा हुआ है ऐसा माना जाता है । और उस वास्तुपुरूष पर देवों का निवास है । इस प्रकार से प्रत्येक भूखण्ड पर देवों का वास होने के कारण वह भूखण्ड भवन मात्र न रहकर देवालय हो जाता है । और उस देवालय में निवास करने वाले मनुष्य भी देवत्त्व भाव से युक्त हो जाते है । भवन निर्माण के समय जिस देवता की जो प्रकृति हो, उस प्रकृति के अनुसार कक्ष विन्यास का विधान वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में किया गया है । इस विधि का उल्लेख वास्तुपदविन्यास के नाम से वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में प्राप्त होता है । इस विधि के अनुसार वास्तुपुरूष का विन्यास सम्पूर्ण भूखण्ड पर किया जाता है । जिस हेतु सर्वप्रथम दिक्- साधन की परम्परा है । दिक्- साधन की चर्चा आप अगले अध्यायों में विस्तार से पढेगें । दिक्- साधन के पश्चात् वास्तुपुरुष का विन्यास किया जाता है । ईशान- कोण में

वास्तुपुरूष का सिर, नैऋत्य- कोण में पैर, आग्नेय और वायव्य कोण में वास्तुपुरूष के हाथ प्रतिष्ठित है। भूखण्ड पर औंधे मुंह व्याप्त इस वास्तुपुरूष के शरीर के विविध अङ्गों पर विविध देवों की स्थापना की कल्पना है। अग्निदेव वास्तुपुरूष के शिरो भाग पर, वरूण देवता मुख पर, अदिति नेत्रों में, जयन्तादि वास्तुपुरूष के कानों में, सूर्य- चन्द्र वास्तुपुरूष की दक्षिण और वाम भुजा पर, आपवत्स, महेन्द्र, और चरक, इन तीनों देवताओं की प्रतिष्ठा वास्तुपुरूष के वक्ष स्थल पर, अर्यमा और पृथ्वीधर की प्रतिष्ठा दक्षिण और वामस्तन पर की जाती है। यक्ष्मा,रोग,नाग, मुख्य और भल्लाट, इन पांचों देवताओं की प्रतिष्ठा वास्तुपुरूष की वाम भुजा पर, सत्य, भृश, नभ, वायु और पूषादि पांच देवताओं की स्थापना दक्षिण भुजा पर की जाती है। वास्तुपुरूष के हाथों पर सावित्र, सविता, रूद्र और शक्तिधरादि प्रतिष्ठित होते है । हृदय पर ब्रह्मा, दक्षिण कुक्षि पर वितथ और गृहक्षत, वाम कुक्षि पर शोष और असुर की प्रतिष्ठा की जाती है । वास्तुपुरूष के उदर पर मित्र और विवस्वान्, लिङ्ग पर जय और इन्द्र, दक्षिण उरु पर यम तथा वाम उरु पर वरूण की स्थापना मानी जाती है। मृग, गन्धर्व और भृश की प्रतिष्ठा दक्षिण जङ्घा पर, दौवारिक सुग्रीव और पुष्पदेवों की प्रतिष्ठा वाम जङ्घा पर तथा पितृगणों की प्रतिष्ठा चरणों पर की जाती है। यथोक्तम् –

" पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा पुरूषोऽयमवाङ्मुखोऽस्य शिरसि शिखी।
आपो मुखे स्तनेऽस्यार्यमा ह्युरस्यापवत्सश्च ॥
पर्जन्याद्या बाह्या दृक्श्रवणोर: स्थलांशगा: देवा: ।
सत्याद्या: पश्चभुजे हस्ते सविता च सावित्र: ॥
वितथो बृहत्क्षतयुत: पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च ।
उरु जानु च जङ्घे स्फ़िगिति यमाद्यै परिगृहीता: ॥
एते दक्षिणपार्श्वस्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्था: ।
मेढ्रे शक्रजयन्तौ हृदये ब्रह्मा पिताऽग्निगत: ॥

वास्तुपुरूष के भवन में विन्यास और वास्तुपुरूष के शरीर पर विविध देवों की प्रतिष्ठा को हम चित्र के माध्यम से समझ सकते है।
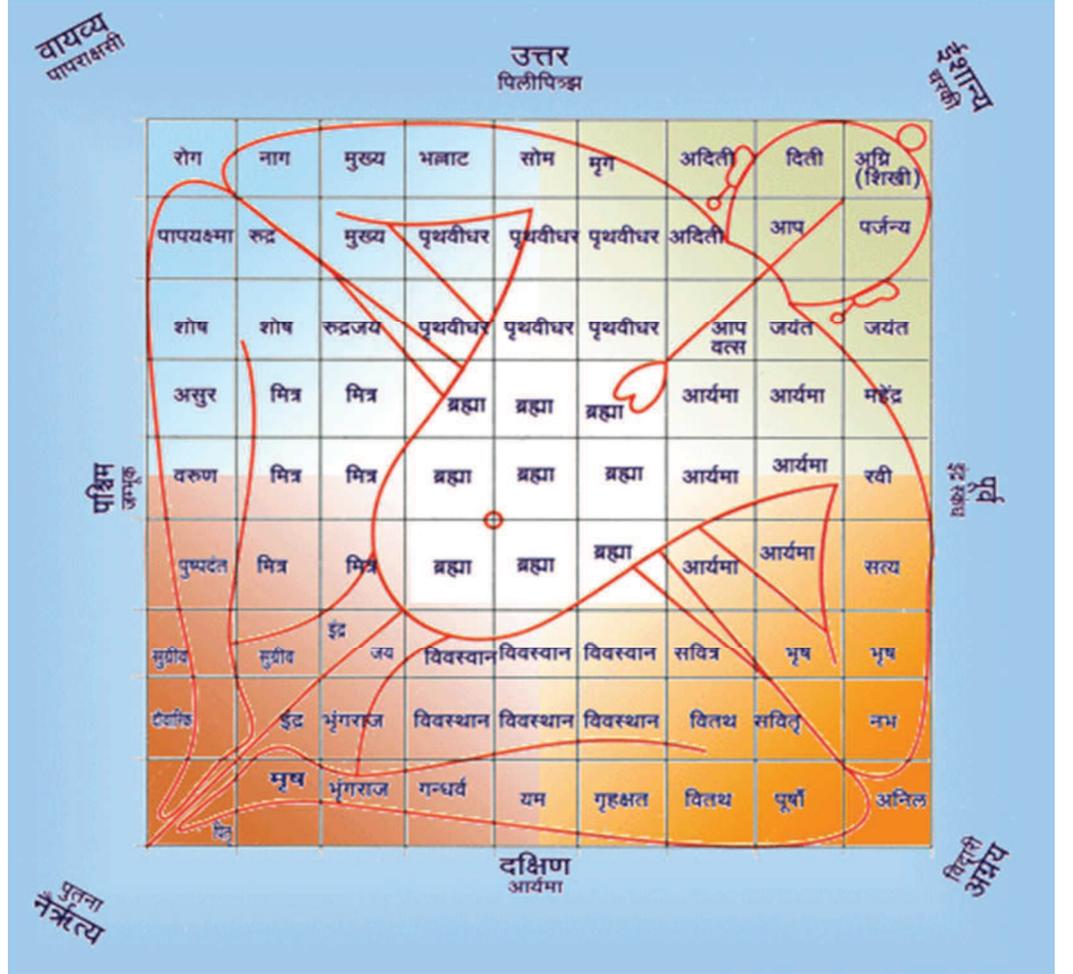
इस प्रकार से वास्तुपुरूष सम्पूर्ण भूखण्ड पर व्याप्त है और वास्तुपुरूष के शरीर पर ४५ देवता प्रतिष्ठित है। भूखण्ड पर जब भी भवन का निर्माण किया जाता है तो भवन निर्माण के समय वास्तुपुरूष के नेत्र, मुख, हृदयादि मर्म और अतिमर्म स्थानों पर निर्माण का निषेध किया गया है। मर्म- अतिमर्म स्थान क्या है ? इस विषय में आप आगे के अध्यायों में विस्तार से पढेंगे। यह मर्म स्थान वास्तुपुरूष के शरीर में अति कोमल अङ्ग माने जाते है। जो महत्त्व मनुष्य के शरीर में इन अङ्गों का है, वही महत्त्व वास्तुपुरूष के शरीर में इन मर्म और अतिमर्म अङ्गों का है। तथा इन अङ्गों का वेध उस गृह में निवास करने वाले मनुष्यों के अनेक प्रकार के कष्टों का कारण बनता है। अत: वास्तुपुरूष का भवन निर्माण में अत्यन्त महत्त्व है। वास्तव में हमारी संस्कृति में प्रत्येक वास्तु के भौतिक और अभौतिक दो पक्ष माने जाते है। भौतिक पक्ष हमारे लिए दृष्ट होता है, जबकि अभौतिक पक्ष अदृष्ट होता है।

अभौतिक पक्ष को ही हम आध्यात्मिक पक्ष भी कह सकते है। वास्तुपुरूष भवन में अदृष्ट होता है, क्योंकि वह भौतिक तत्त्व न होकर आध्यात्मिक तत्त्व है। तथा वह अदृश्य तत्त्व हमें हमारे जीवन में शुभाशुभ फ़ल प्रदान करता है । जिस फ़ल का कारण भी अदृष्ट होता है। वास्तव में प्रत्येक भूखण्ड की आकृति भिन्न होती है और उस भूखण्ड की आकृति के अनुसार ही उस भूखण्ड पर वास्तुपुरूष का विन्यास होता है। जिस प्रकार से प्रत्येक पुरूष की एक अपनी शारीरिक संरचना होती है। और उस पुरुष की शारीरिक संरचना के अनुसार ही प्रत्येक विज्ञान या शास्त्र उसके शुभाशुभ का चिन्तन करता है।उसी प्रकार से प्रत्येक भूखण्ड की अपनी एक आकृति है। वह भूखण्ड आयताकार, वर्गाकार या वृत्ताकार हो सकता है और उस आकृति के अनुसार ही भूखण्ड पर वास्तुपुरूष का विन्यास और उस वास्तुपुरूष पर देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है फ़िर देवों की प्रकृति के अनुसार उस भवन में विविध कक्षों का निर्माण किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें ---

१) वैदिककाल में वास्तुदेव का नाम _________ था।

२) पुराणों में वास्तुदेव के रूप में _________ की स्तुति प्राप्त होती है।

३) वेद के _______ अङ्ग है।

४) ज्योतिष वेद- पुरूष का _________ स्थानीय अङ्ग है।

५) ज्योतिष का मूल तत्त्व _________पुरूष है।

६) वास्तुपुरूष का सिर __________ कोण में होता है।

७) वास्तुपुरूष के पैर __________ कोण में होते है।

2.5 सारांश

सृष्टि के आरम्भ से ही भारतीयों का जीवन धर्म से अनुप्राणित रहा है। हमारी संस्कृति में केवल लौकिक या केवल पारलौकिक अभ्युदय की कामना नही की गई है, अपितु लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति की कामना की गई है। इसलिए भारतीय शास्त्र परम्परा में केवल अलौकिक अभ्युदय के लिए ही चिन्तन नही किया गया, अपितु लौकिक अभ्युदय के लिए भी चिन्तन किया गया है। वेदान्तादिशास्त्र यहां पारलौकिक चिन्तन के द्योतक है, वही वास्तुशास्त्रादि लौकिक और पारलौकिक चिन्तन के द्योतक है। भव्य और विशाल भवन लौकिक उन्नति के द्योतक है। वास्तव में अनियोजित भूखण्ड का सुनियोजन ही

वास्तुशास्त्र है । यह पृथ्वी भी आरम्भ में अनियोजित थी । पुराणों के अनुसार- राजा पृथु ने इस धरती का सुनियोजन किया और इसे रहने योग्य बनाया। अत: इसका नाम पृथु से पृथ्वी हो गया । कहा गया है – "पृथोरियं पृथ्वी ।" भूगर्भशास्त्र के अनुसार भी पृथ्वी लाखों वर्ष पूर्व गर्म थी और शनै: शनै: रहने के योग्य बनी । यही वृतान्त पुराणों में पृथु की कथा के कथा के माध्यम से बताया गया । भारतीय विज्ञानों, कलाओं, और शास्त्रों पर धर्म और अध्यात्म का प्रभाव होने के कारण भारतीय शास्त्रों में हर तथ्य को अध्यात्म से अनुप्राणित कर प्रस्तुत करने की परम्परा है । हमारे यहां वेद में सहस्र नेत्र, सहस्र हाथ और पैरो से युत परम पुरूष की कल्पना की गई है । इस संसार की आद्य ज्ञान राशि को भी वेद -पुरुष कह कर सम्बोधित किया गया है और छ: वेदाङ्गों को उस वेद पुरूष के शरीर के विविध अङ्ग माना गया है । छ: वेदाङ्गों में से वेद पुरूष के नेत्रस्थानीय वास्तुशास्त्र से सम्बद्ध ज्योतिषवेदाङ्ग में काल पुरूष की अवधारणा है । और वास्तुशास्त्र में वास्तुपुरूष की अवधारणा प्राप्त होती है । यह वास्तुपुरूष सम्पूर्ण भूखण्ड पर व्याप्त है । और इसके शरीर के विविध अङ्गों पर विविध देवों की प्रतिष्ठा की जाती है । भूखण्ड पर निर्माण के समय वास्तुपुरूष के मर्म तथा अतिमर्म स्थानों पर प्रहार का निषेध किया गया है और वास्तुपद विन्यास के माध्यम से भवन के विविध पक्षों का वास्तुपुरूष के शरीर पर विन्यस्त देवों की प्रकृति के अनुसार विन्यास की सङ्कल्पना की गई है । गृह , मन्दिर, जलाशय, वापी आदि सभी भूमिकार्यों के आरम्भ में वास्तुपुरूष के पूजन का विधान किया गया है ।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

१) पार्थिव तत्त्व – ईंट- पत्थर आदि भवन निर्माण की सामग्री ।

२) अपार्थिव तत्त्व – दैवीय तत्त्व ।

३) वास्तोष्पति - वैदिककालीन वास्तु देवता ।

४) परमपुरूष – सर्व व्यापक ईश्वर ।

५) कालपुरूष – ज्योतिषशास्त्र में कालपुरूष की अवधारणा है जिसमें सभी राशियों और ग्रहों का विन्यास माना जाता है ।

६) वेद पुरूष – ज्ञान राशि को वेद पुरूष मानते हुए छ: वेदाङ्ग वेद- पुरूष के विविध अङ्ग है ।

७) वेदाङ्ग -- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष ।

८) वास्तुपुरूष – प्रत्येक भूखण्ड पर वास्तुपुरूष औंधे मुंह लेटा हुआ माना जाता है । और उस पर विविध देवों की प्रतिष्ठा मानी जाती है ।

९) वास्तुपद - विन्यास – भूखण्ड पर भवन निर्माण के समय विविध कक्षों के निर्माण के समय वास्तुपद विन्यास के माध्यम से निर्माण किया जाता है।

2.7 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- १ की उत्तरमाला

१) सत्य २) सत्य ३) असत्य ४) सत्य ५) सत्य

अभ्यास प्रश्न – २ की उत्तरमाला

१) वास्तोष्पति २) वास्तुपुरूष ३) छ: ४) नेत्र ५) काल ६) ईशान ७) नैऋत्य

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) सिंह अमर,अमरकोष:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २००३

ख) Williams, Monier, A Sanskrit – English Dictionary, Moti Lal Banarasi Dass, Delhi - 2002

ग) ऋग्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, भारत मुद्रणालय, मुम्बई, १९९६

घ) यजुर्वेदसंहिता, सं० सातवलेकर, स्वाध्यायमण्डल, पारडी - १९९९

ङ) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - १९५९

च) विश्वकर्मप्रकाश:, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई - २००२

छ) मत्स्यपुराण, अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - १९८९

2.9 सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली - २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली - २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ - १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु - शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली - २०१३

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

१) विज्ञान और धर्म पर एक निबन्ध लिखिए।
२) पृथु के द्वारा पृथ्वी के सुनोयोजन पर निबन्ध लिखिए
३) वास्तुपुरूष की अवधारणा पर एक निबन्ध लिखिए।
४) भवन में वास्तुपुरूष के विन्यास पर एक निबन्ध लिखिए।
५) वास्तुपुरूष के शरीर पर देव- विन्यास का वर्णन कीजिए।

इकाई – 3 भूमि लक्षण शोधन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 भूखण्ड का चयन
 3.3.1 भूमि के लक्षण
3.4. भूमिशोधन
 3.4.1 शल्योद्धार
3.5. सारांश
3.6. पारिभाषिक शब्दावली
3.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9. सहायक पाठ्य सामग्री
3.10. निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य की मूल आवश्यकताओं में भवन प्रमुख है और भवन निर्माण के लिए कोई न कोई भूखण्ड आवश्यक है क्योंकि भूखण्ड ही उस भवन का आधार होता है। अतः भारतीय वास्तुशास्त्र में सर्वप्रथम भूखण्ड के चयन पर विचार किया गया है। वास्तु का आरम्भ तो यहीं से हो जाता है। भवन निर्माण के लिए चयनित भूखण्ड का आकार कैसा हो ? उसकी मिट्टी की गुणवत्ता कैसी है ? उस भूखण्ड की भूमि "ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या यां शूद्रा" इनमे से किस कोटि की है? भूखण्ड में शल्य तो नहीं है और अगर है तो उसका शोधन किस प्रकार होगा ? भूमि की ढलान किस ओर है ? भूखण्ड की वीथी कौन सी है ? इत्यादि अनेक विषयों का विचार भवन निर्माण से पूर्व भूखण्ड के चयन हेतु करने का निर्देश वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में किया गया है। भूखण्ड के चयन के सम्बन्ध में भूमि के लक्षण और भूमि के शोधन आदि पर हम इस इकाई में चर्चा करेंगें।

3.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- ❖ भूखण्ड के चयन के महत्त्व को जान सकेंगें
- ❖ भूखण्ड के चयन की प्रक्रिया को समझ सकेंगें
- ❖ भूमि के लक्षणों को जान सकेंगे।
- ❖ भूमिशोधन का महत्त्व समझ सकेंगे।
- ❖ शल्योद्दार की प्रक्रिया को जान सकेंगे।

3.3 भूखण्ड का चयन

जैसा कि आप जानते हैं कि वास्तु शास्त्र का विचार केन्द्र भवन निर्माण है और भवन निर्माण के लिए सर्वाधिक आवश्यक भूमि है, क्योंकि भूखण्ड ही भवन का आधार है। इसलिए वास्तुशास्त्र में सर्वप्रथम भूखण्ड के चयन की चर्चा की गई है। वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि भवननिर्माण के लिए भूखण्ड के चयन की चर्चा के साथ-साथ ग्राम के चयन की बात भी की गई है। किस व्यक्ति को किस ग्राम में निवास हेतु भवन-निर्माण करना चाहिए ? ग्राम की किस दिशा में निवास करना चाहिए ? निवास हेतु चयनित भूखण्ड कैसा होना चाहिए ? इत्यादि विषयों पर वास्तुशास्त्र में विस्तार से चर्चा करते हुए कहा गया है कि जिस भूखण्ड के समीप ही जल की उपलब्धता हो, जो स्थान रम्य और सौम्य हो, जिस भूमि पर हरे-भरे वृक्ष, पौधे, घास आदि हो और खेती की अच्छी उपज होती हो, व्यक्ति को ऐसे

स्थान पर निवास करना चाहिए। ग्राम के चयन के सम्बन्ध में कहा गया है कि व्यक्ति के नाम की राशि से 2,5,9,10,11 वे स्थान की राशि के ग्राम में निवास सुखप्रद होता है। ग्राम में पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः वृश्चिक, मीन, कन्या, कर्क, धनु, तुला, मेष और कुम्भ राशि वालों को तथा ग्राम मध्य में वृष, मिथुन, सिंह और मकर राशि वालों को निवास करना अशुभप्रद है। इसे तालिका के माध्यम से इस प्रकार समझे।

ईशान कुम्भ	**पूर्व** वृश्चिक	**आग्नेय** मीन
उत्तर मेष	**मध्य** वृष, मिथुन, सिंह, मकर	**दक्षिण** कन्या
वायव्य तुला	**पश्चिम** धनु	**नैऋत्य** कर्क

इसके अतिरिक्त ग्राम/नगर के नक्षत्र से निवास के इच्छुक व्यक्ति के नक्षत्र तक गिनने पर निम्नफल नराकृति के अनुसार जानना चाहिए।

स्थान	**मस्तक**	**मुख**	**कुक्षि**	**पाद**	**पृष्ठ**	**नाभि**	**गुह्य**	**दक्षिण हस्त**	**वाम हस्त**
नक्षत्र	१.५	६.८	९.१३	१४-१९	२०	२१.२४	२५	२६	२७
शुभाशुभ फल	लाभ	धन हानि	धन धान्य	स्त्री हानि	पैर में कष्ट	सम्पत्ति	भय	पीड़ा	क्रन्दन

अपने नाम के आद्याक्षर तथा ग्राम के नाम के आद्याक्षर के माध्यम से ग्राम चयन का विधान है। अष्टवर्ग चक्र के अनुसार निम्न प्रकार से अपने वर्ग तथा ग्राम के वर्ग का ज्ञान होता है-

वर्ग	अ	क	च	ट	त	प	य	श
वर्ग-संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८
दिशा	पूर्व	आग्नेय (दक्षिण - पूर्व)	दक्षिण	नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	पश्चिम	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	उत्तर	ईशान (पूर्व-उत्तर)
वर्गाधिपति	गरूड़	मार्जार (बिल्ली)	सिंह	श्वान (कुत्ता)	सर्प	मूषक (चूहा)	मृग	मेष (मेढा)
वर्गाक्षर	अ,इ,उ,ऋ,ए,ऐ,ओ,औ,अं,अः	क,ख,ग,घ,	च,छ,ज,झ,´	ट,ठ,ड,ढ,ण	त,थ,द,ध,न	प,फ,ब,भ,म,	य,र,ल,व	श,ष,स,ह

इस तालिका के अनुसार अपने वर्ग से पंचम वर्ग शत्रु होता है, जैसे गरूड़ से पंचम सर्प है जो शत्रुवर्ग है अतः ग्राम और ग्राम में रहने के इच्छुक व्यक्ति का परस्पर पंचम वर्ग नहीं होना चाहिए। शत्रुवर्ग को छोड़कर शेषवर्ग शुभ होते है।

इसके अतिरिक्त एक और विधि के माध्यम से ग्राम चयन का विधान है, इस विधि को काकिणी विचार कहते है।

काकिणी-विचार - अपने-अपने वर्ग की संख्या को दोगुणा करके दूसरे की वर्ग संख्या को जोड़ना चाहिए। फिर 8 का भाग देने से शेष काकिणी होती है। जिसकी काकिणी अधिक हो, वह ऋणी होता है, अतः स्थान की काकिणी अधिक होना शुभ माना जाता है। उदाहरण के लिए पार्थसारथी नाम का व्यक्ति होशियारपुर नाम के नगर में निवास करना चाहता है। पार्थसारथी की वर्गसंख्या 6 है और होशियारपुर की वर्गसंख्या 8 है। नियम के अनुसार (6×2+8) /8= शेष 4, व्यक्ति की काकिणी (8×2+6) /8= शेष 6, स्थान की काकिणी।

यहाँ होशियारपुर नामक स्थान की काकिणी पार्थसारथी नाम के व्यक्ति की काकिणी से

अधिक है अतः होशियारपुर नामक स्थान पार्थसारथी नामक व्यक्ति का ऋणी है,अतः पार्थसारथी को होशियारपुर में निवास शुभदायक है।

इस प्रकार से आपने समझा कि सर्वप्रथम निवास हेतु ग्राम का चयन किस प्रकार किया जाता है। उपरोक्त वर्णित विविध विधियों के माध्यम से व्यक्ति अपने निवास हेतु ग्राम का चयन कर सकता है। ग्राम के चयन के बाद ग्राम में भवन निर्माण हेतु भूखण्ड का चयन किया जाता है। भूमिचयन के लिए सर्वप्रथम भूमि के समीपस्थ परिवेश का विचार किया जाता है।

भूमि का समीपस्थ परिवेश

आप समझ गए होंगे कि भूमि का चयन करने की कौन सी विधियाँ है। इन सब विधियों के माध्यम से भूमि का चयन करते समय भूखण्ड के समीपस्थ परिवेश का विचार भी अत्यावश्यक है, क्योंकि इसका प्रभाव गृहस्वामी के भवन एवं परिवार दोनों ही पर पड़ता है। भूखण्ड के समीपस्थ परिवेश का विचार करते समय निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए।

- भूमि के दक्षिण या पश्चिम अथवा नैऋत्य कोण में ऊँचे भवन, पेड़, पहाड़ इत्यादि शुभ है परन्तु उत्तर या पूर्व में इनकी स्थिति अशुभ है।
- भूमि के पूर्व या उत्तर अथवा ईशान कोण का भाग दक्षिण-पश्चिम अथवा नैऋत्य कोण से नीचा होना चाहिए। इसी प्रकार पूर्वोत्तर तथा ईशान की ओर भूमिगत जलस्त्रोत, नदी, नाल आदि जिसका प्रसार दक्षिण से उत्तर तथा पश्चिम से पूर्व हो तो शुभ है किन्तु दक्षिण-पश्चिम और नैऋत्य कोण में जलाशयादि अशुभ है।
- आवासीय भवन के निकट शमशान, कार्यालय, विद्यालय, सिनेमाहाल, मन्दिर होना अशुभ तथा हानिप्रद है जबकि व्यावासायिक भवन के निकट अशुभ नही है।
- आवासीय भवन के निकट अस्पताल, पुलिस थाना, नदीघाट, अदालत, रेलवे क्रांसिग और शराबखाना होना अशुभ और हानिप्रद है जबकि व्यावासायिक भवन ऐसे परिवेश में भी बनाया जा सकता है।
- जिस भूखण्ड में आस-पास के स्थानों से जल आकर एकत्र हो जाए, वहाँ भवन निर्माण नहीं करना चाहिए।
- जिस भूमि का निकटवर्ती परिवेश रम्य और मनोहारी हो, वह भूमि शुभ होती है।

आवासीय भवन के समीपस्थ परिवेश का निम्न प्रकार से शुभाशुभ फल कहा गया है।

गृह समीप स्थिति	**सचिव गृह**	**धूर्तगृह**	**देवगृह**	**चौराहा**	**चैत्य (प्रधान) वृक्ष**	**दीमक युक्त या पोली भूमि**	**गड्ढा**	**कछुए की आकृति की भूमि**
फल	धन नाश	पुत्रनाश	खेद	अपयश	ग्रहभय	आपदा	प्यास रोग	धननाश

गृह के आस-पास वृक्षों का शुभाशुभ फल इस प्रकार है।

वृक्ष	**काँटेदार वृक्ष**	**दूधवाले वृक्ष शमी, शाल आदि**	**फलदार वृक्ष**	**अशोक, पुत्रग**	**मौलश्री, कटहल**
फल	शत्रुभय	धननाश	सन्ततिनाश	अरिष्ट	शुभ एवं दोषनाशक

3.3.1 भूमि के लक्षण

अब हम भूमि के लक्षणों को जानेंगे। निवास हेतु कौन सी भूमि शुभ या अशुभ है, इसका निर्धारण, भूमि की आकृति और ढलान के आधार पर किया जाता है। मिट्टी के गुण-दोषों का विचार उसके रंग, गन्ध एवं स्वाद आदि के अनुसार किया जाता है वास्तु शास्त्र में भवन निर्माण हेतु भूमि को चार श्रेणियों में बांटा गया है।-

(1) ब्राह्मणी भूमि,

(2) क्षत्रिया भूमि,

(3) वैश्या भूमि,

(4) शूद्रा भूमि।

1. ब्राह्मणी भूमि

ब्राह्मणी भूमि सफेद रंग की, कुशा युक्त, मधुर, स्वाद एवं सुगन्धित मिट्टी वाली होती है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इस भूमि को सर्वसुखदायक कहा है। यह भूमि बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक लोगों के लिए परम शुभ है।

2. क्षत्रीया भूमि

इसकी मिट्टी का रंग लाल होता है, इसका स्वाद कसैला और गन्ध रक्त जैसी होती हैं और इस पर शर उगते हैं। यह भूमि ज्ञान, बल, सम्मान और राज्यप्रदायक है। यह भूमि मन्त्री, राज्याधिकारी, सेना, पुलिस तथा प्रशासनिक लोगों के आवास के लिए शुभ हैं।

3. **वैश्या भूमि**

इस भूमि का रंग हरीतिमा लिए हुए यां पीला होता है। इसमें अन्न जैसी गन्ध होती हैं। इस मिट्टी में कुश और कास उगते हैं। यह मिट्टी उपजाऊ होती है यह भूमि कृषि और व्यापारिक केन्द्रों के लिए उत्तम कहीं गई हैं। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इसे धन-धान्यप्रद कहा है।

4. शूद्रा भूमि

इस भूमि का रंग काला होता है। इस मिट्टी की गन्ध मदिरा जैसी होती है। इसका स्वाद कड़वा होता है। और इस पर सब तरह की घास उगते हैं, यह भूमि निवास के दृष्टिकोण से शुभ नहीं मानी जाती।

भूमि का ढलान

वास्तुशास्त्र के अनुसार भूमि की ढलान पूर्वोत्तर दिशा में शुभ और दक्षिण-पश्चिम दिशा में अशुभ मानी जाती है। पूर्व की ओर ढलान वाली भूमि विकास और वृद्धिदायक, उत्तर की ओर ढलान वाली भूमि धन-धान्यप्रद, पश्चिम की ओर ढलान वाली भूमि कीर्ति की नाशक और दक्षिण की ओर ढलान वाली भूमि मृत्युदायक होती है, उसी प्रकार से ईशान की ओर ढलान

वाली भूमि श्रीसुखदायक, आग्नेय कोण में मृत्युशोक, नैऋत्य में धन हानि और वायव्यकोण में भूमि का ढलान होने पर उस भूमि पर रहने वालों को उद्वेग होता है।

वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
ढाल
पूर्व सामान्य
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
ढाल
पूर्व सामान्य से कम
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
गलत
ढाल
पर्वू अशुभ
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
गलत
ढाल
पूर्व अशुभ
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण
वायव्य कोण उत्तर ईशान कोण
पश्चिम
गलत
ढाल
पूर्व उत्तम
नैर्ऋत्य कोण दक्षिण आग्नेय कोण
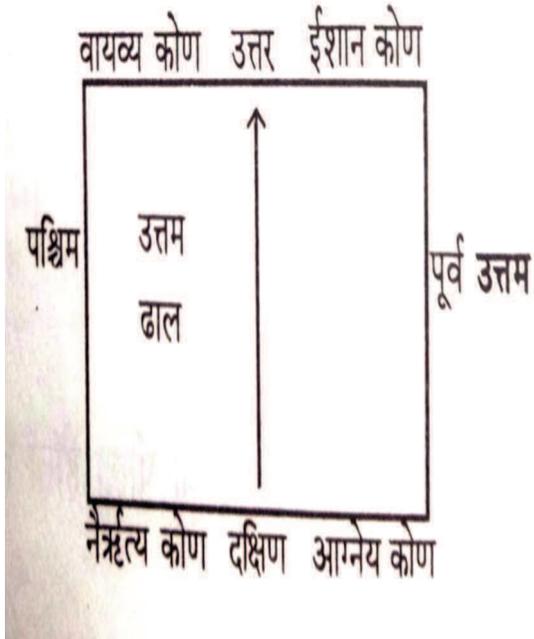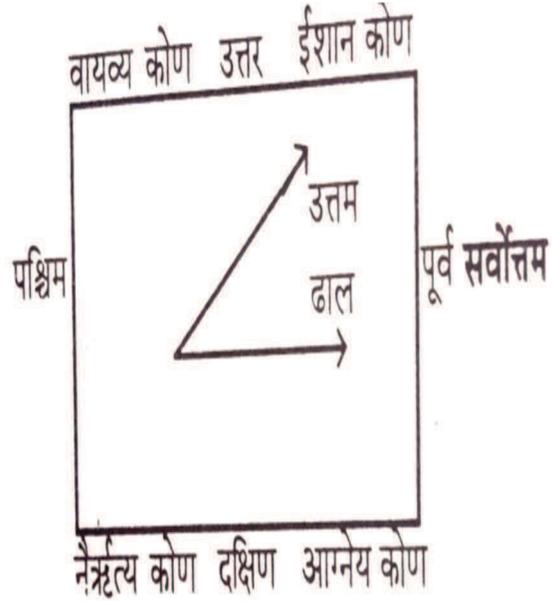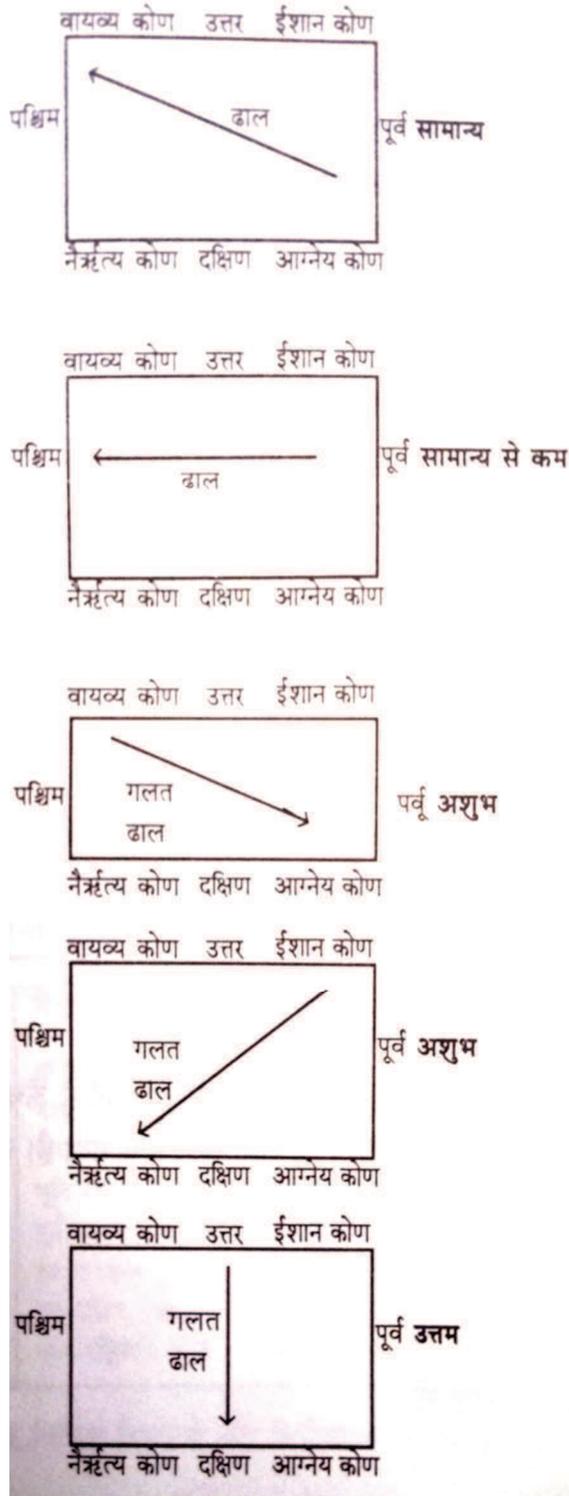
वास्तुशास्त्र में भूमि की आठ दिशाओं में ऊँचाई-नीचाई और ढलान के अनुसार चार पृष्ठ संज्ञाएँ और आठ वीथियों का वर्णन किया गया है।

ईशान कोण में ऊँची तथा नैऋत्य में नीची भूमि भूतवीथी, आग्नेय कोण में ऊँची और वायव्य में नीची भूमि नागवीथी, वायव्यकोण में ऊँची और आग्नेयकोण में नीची वैश्वानरी वीथी, नैऋत्यकोण में ऊँची और ईशान में नीची भूमि धनवीथी, पश्चिम में नीची जलवीथी, उत्तर में ऊँची और दक्षिण में ढलान वाली यमवीथी तथा दक्षिण में ऊँची और उत्तर में ढलान वाली भूमि गजवीथी कहलाती है। इसे इस तालिका के अनुसार समझा जा सकता है।

क्र.	वीथी नाम	दिशा ऊँचाई	दिशा ढलान	फल
1	गोवीथी	पश्चिम	पूर्व	शुभ
2	जलवीथी	पूर्व	पश्चिम	अशुभ
3	यमवीथी	उत्तर	दक्षिण	अशुभ
4	गजवीथी	दक्षिण	उत्तर	शुभ
5	भूतवीथी	ईशान(उत्तर-पूर्व)	नैऋत्य(दक्षिण-पश्चिम)	अशुभ
6	नागवीथी	आग्नेय(दक्षिण-पूर्व)	वायव्य(उत्तर-पश्चिम)	अशुभ
7	वैश्वानरवीथी	वायव्य(उत्तर-पश्चिम)	आग्नेय(दक्षिण-पूर्व)	शुभ
8	धनवीथी	नैऋत्य(दक्षिण-पश्चिम)	ईशान(उत्तर-पूर्व)	शुभ

गजपृष्ठ आदि भूमियाँ

भूखण्ड की विभिन्न दिशाओं और विदिशाओं में ऊँचाई के आधार पर उस भूखण्ड को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। जो इस प्रकार है।

गजपृष्ठ :- जो भूमि दक्षिण, पश्चिम, नैऋत्य और वायव्य से ऊँची उठी हो, उसे गजपृष्ठ भूमि कहते है। निवास के लिए गजपृष्ठ भूमि शुभ मानी जाती है। यह धन और वायु की वृद्धिकारक है।

कूर्मपृष्ठ :- मध्य से ऊपर उठी हुई तथा चारों तरफ से नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते है, यह भूमि उत्साह, सुख और धन-धान्य की वृद्धि कारक है।

दैत्यपृष्ठ:- जो भूमि ईशान, आग्नेय तथा पूर्व में ऊँची तथा पश्चिम में नीची हो,उसे दैत्यपृष्ठ भूमि कहते है,यह भूमि निवास के लिए अशुभ है और पारिवारिक कलह की कारक है।

नागपृष्ठ :- जो भूमि पूर्व और पश्चिम में लम्बी, उत्तर एवं दक्षिण में ऊँची और बीच में नीची होती है उसे नागपृष्ठ भूमि कहते है, यह भूमि सन्तान हानि और शत्रु वृद्धि को देने वाली है।

क्र	भूमि संज्ञा	दिशा ऊँचाई	दिशा ढलान	फल
1	गजपृष्ठ	दक्षिण,पश्चिम,नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम),वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	------	लक्ष्मी प्राप्ति एवं आयुवृद्धि
2	कूर्मपृष्ठ	भूमि मध्य	चारों ओर	उत्साह व धनधान्य
3	दैत्यपृष्ठ	पूर्व,आग्नेय(दक्षिण-पूर्व) ईशान (उत्तर-पूर्व)	पश्चिम	धन,पशु एवं पुत्र हानि
4	नागपृष्ठ	पूर्व-पश्चिम-लम्बी उत्तर-दक्षिण-ऊँची	मध्य	उच्चाटन,मृत्युभय, शत्रुवृद्धि, स्त्रीपुत्रादि हानि

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं और विदिशाओं में ऊँचाई तथा ढलान के अनुसार निवास योग्य भूखण्ड की विभिन्न संज्ञाएँ है जिनमें से प्रत्येक का वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

क्र	वास्तु संज्ञा	दिशा ऊँचाई	दिशा ढलान	फल
1	पितामह	पूर्व-आग्नेय के मध्य	उत्तर-वायव्य के मध्य	शुभ
2	सुपन्थ	दक्षिण-आग्नेय के मध्य	पश्चिम-वायव्य के मध्य	प्रशस्त
3	दीर्घायु	दक्षिण- नैऋत्य के मध्य	उत्तर-ईशान के मध्य	कुलवृद्धि
4	पुण्यक	पश्चिम- नैऋत्य के मध्य	पूर्व-ईशान के मध्य	शुभ
5	अपथ	पश्चिम-वायव्य के मध्य	पूर्व-आग्नेय के मध्य	शत्रुता, कलह
6	रोगकृत	उत्तर-वायव्य के मध्य	दक्षिण-आग्नेय के मध्य	रोग-व्याधि
7	अर्गल	उत्तर-ईशान के मध्य	दक्षिण-आग्नेय के मध्य	महापापनाशक
8	श्मशान	पूर्व-ईशान के मध्य	पश्चिम- नैऋत्य के मध्य	कुलनाश
9	श्येनक	नैऋत्य , ईशान व वायव्य	आग्नेय	मृत्यु, विनाश
10	स्वमुख	ईशान, आग्नेय व वायव्य	नैऋत्य	दरिद्रता
11	ब्रह्मघ्न	नैऋत्य, आग्नेय व ईशान	पूर्व एवं आग्नेय	प्राणभय
12	स्थावर	आग्नेय	नैऋत्य, ईशान व वायव्य	शुभ
13	स्थण्डिल	नैऋत्य	आग्नेय, वायव्य व ईशान	शुभ
14	शाण्डुल	ईशान	आग्नेय, वायव्य व नैऋत्य	अशुभ
15	सुस्थान	नैऋत्य , आग्नेय व ईशान	वायव्य	ब्राह्मण हेतु शुभ
16	सुतल	पश्चिम, नैऋत्य व आग्नेय	पूर्व	राष्ट्र वृद्धिकारक (क्षत्रिय को शुभ)
17	चर	उत्तर, ईशान व वायव्य	दक्षिण	वैश्य हेतु शुभ

मार्ग के अनुसार भूखण्ड का चयन करने के उपरान्त भूखण्ड के आकार के विषय में वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में पर्याप्त विचार किया गया है। भूखण्ड के आकार का उस भूखण्ड में रहने

वाले निवासियों पर शुभाशुभ प्रभाव पड़ता है, अतः वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में बताया गया है कि आयताकार भूखण्ड अत्यन्त शुभ, वर्गाकार धनदायक, भद्रासन सफलतादायक, वृत्ताकार शुभ, चक्राकार दरिद्रताकारक, विषमबाहु शोकप्रद, त्रिकोणाकार राजभयदायक, शकटाकार निर्धनतादायक, दण्डाकार पशुहानिकारक, मृंदगाकार स्त्रीनाशक, सिंहमुखी बन्धनकारक, गोमुखी शुभ, व्यजनाकार धननाशक, कूर्मपृष्ठ वधबन्धनकारक, सूर्पभूखण्ड सम्पत्तिनाशक, धनुषाकार चोर भयदायक तथा अर्धचन्द्राकार भूखण्ड क्लेशदायक होता है। आयताकार भूखण्ड चन्द्रवेधी होने पर शुभ और सूर्य वेधी होने पर अशुभ होता हैं। जिस भूखण्ड की चौड़ाई पूर्व से पश्चिम में कम हो तथा उत्तर से दक्षिण में अधिक हो, उसे चन्द्रवेधी तथा जिस भूखण्ड की चौड़ाई उत्तर से दक्षिण में कम तथा पूर्व से पश्चिम में अधिक हो, उसे सूर्यवेधी भूखण्ड कहा जाता है। विभिन्न आकार के भूखण्ड और उनका शुभाशुभ फल वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में इस प्रकार वर्णित है।

1. **वर्गाकार भूखण्ड** :- जिस भूखण्ड की चारों भुजाएँ समान हो और प्रत्येक कोण 90^0 का हो, वह वर्गाकार भूखण्ड कहलाता है। ऐसे भूखण्ड पर भवन निर्माण करने से भवन के निवासी धन-धान्य और सुख समद्धि से यक्त रहते हैं।
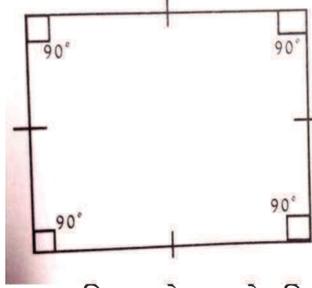
2. **आयताकार भूखण्डः-** जिस भूखण्ड की आमने-सामने की भुजाएँ समान हो तथा चारो कोण 90^0 के हो, ऐसे भवन को आयताकार कहते है, आयताकार भूखण्डों में चन्द्रवेधी शुभ तथा सूर्यवेधी अशुभ होता है।
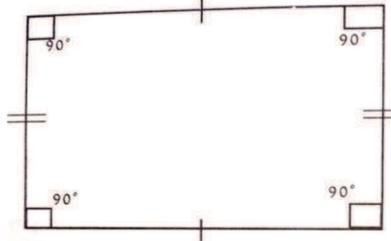
3. **वृत्ताकार भूखण्ड :-** जो भूखण्ड गोल होता है, उसे वृत्ताकार भूखण्ड कहते है, आवास और व्यापार की दृष्टि से यह भूखण्ड उत्तम माने जाते हैं परन्तु इन पर निर्माण भी

वृत्ताकार ही होना चहिए, यदि इस पर वृत्ताकार निर्माण न किया जाए, तो अशुभ फलों की प्राप्ति होती है।
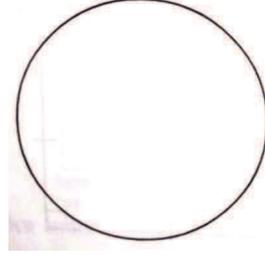
4. **भद्रासन भूखण्ड** :- जिस वर्गाकार भूखण्ड की लम्बाई चौड़ाई बराबर हो और मध्यभाग समतल हो,उसे भद्रासन भूखण्ड कहते है। ऐसे भूभाग पर निर्माण गृहस्वामी के लिए शुभ और कल्याणकारी होता है।
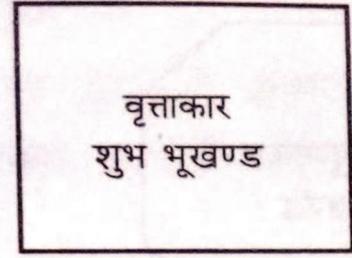
5. **त्रिभुजाकार भूखण्ड** :- जो भूखण्ड त्रिभुज के आकार का होता है उसे त्रिभुजाकार भूखण्ड कहते हैं।ऐसा भूखण्ड भवन निर्माण के लिए अशुभ है।
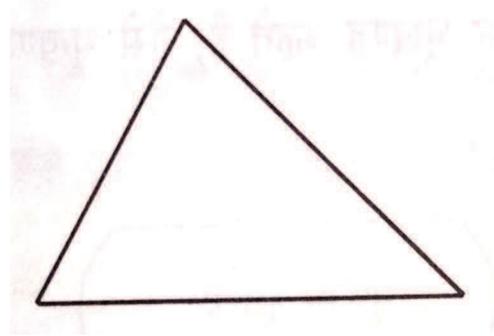
6. **चतुष्कोणाकार भूखण्ड** :- जिस भूखण्ड की आमने-सामने की भुजाएँ और कोण बराबर हो पर वह समकोण न हो, उसे चतुष्कोणाकार भूखण्ड कहते है, निर्माण की दृष्टि से ऐसा भूखण्ड सुख, शान्ति और समृद्धिदायक होता है।
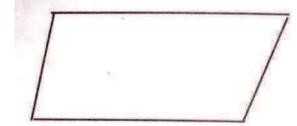
7. **अष्टभुजाकार भूखण्ड** :- जो भूखण्ड आठ भुजाओं और आठ कोणों वाला होता है उसे अष्टभुजाकार भूखण्ड कहते है, ऐसे भवन में रहने वालों को सुख और समृद्धि की प्राप्ति होती है।

8. **सूर्पाकार भूखण्डः-** जो भूखण्ड मार्ग की ओर सूप तथा पीछे की ओर अर्धचन्द्राकार जैसा हो, उसे सूर्पाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड में निवास करना शुभप्रद नहीं होता
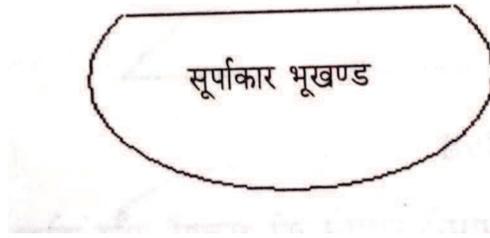
9. **अर्धवृत्ताकार भूखण्डः-** जिस भूखण्ड की आकृति मार्ग की ओर अर्धवृत जैसी हो, उसे अर्धवृत्ताकार भूखण्ड कहते है, यह भूखण्ड भवन निर्माण के लिए अशुभ माना जाता है।
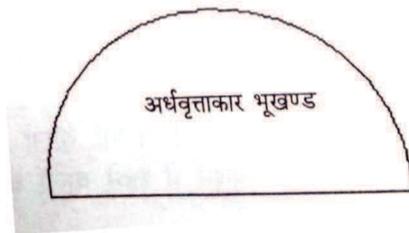
10. **दीर्घवृत्ताकार भूखण्डः-** जिस भूखण्ड की आकृति अण्डे जैसी हो, उसे अण्डाकार या दीर्घवृत्ताकार भूखण्ड कहा जाता है, निर्माण के लिए यह भूखण्ड अशुभ है।
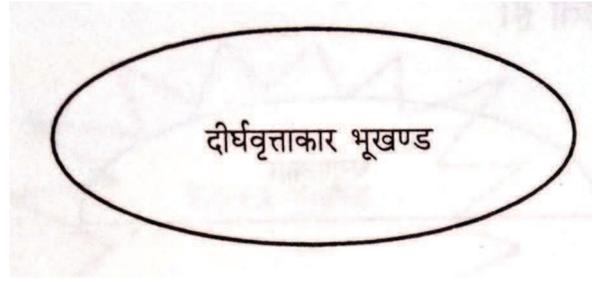
11. **मृंदङ्गाकार भूखण्ड:-** जिस भूखण्ड की आकृति मृंदङ्ग (ढोलक) जैसी हो, उसे मृंदङ्गाकार भूखण्ड कहते है। ऐसे भवन पर निवास करने से गृहपति को स्त्रीकष्ट रहता है।
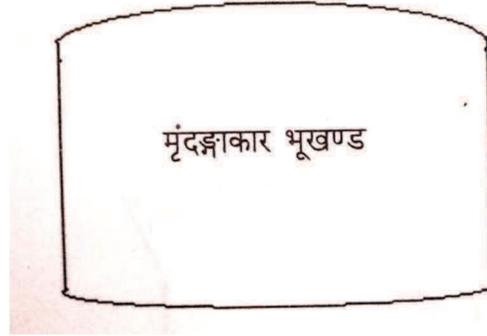
12. **शकटाकार भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृति शकट (बैलगाड़ी) जैसी हो, उसे शकटाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड पर भवन निर्माण से निवासियों को अनेक प्रकार के रोगों का भय रहता है।
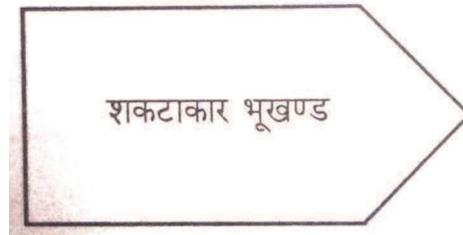
13. **धनुषाकार भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृति मार्ग की ओर धनुष जैसी हो, उसे धनुषाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे स्थान पर निवास करने से पारिवारिक सदस्यों में परस्पर कलह रहता है।
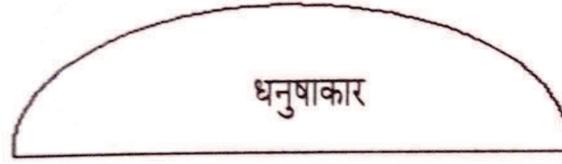
14. **व्यजनाकार भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृति हस्त-व्यजन (हाथ वाले पंखे) जैसी होती है, उसे व्यजनाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भवन में निवास करने से धन एवं पशु हानि होती हैं।
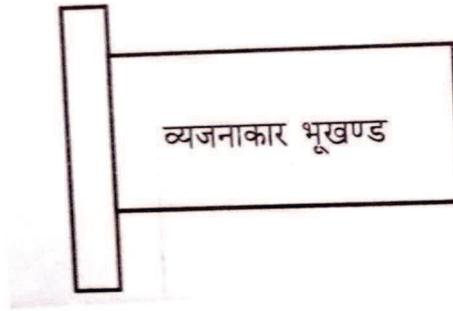
15. **कूर्मपृष्ठाकार भूखण्ड** :- जिस भूखण्ड की आकृति कछुए की आकृति जैसी हो, अर्थात् वो मध्य से उठा और चारों तरफ से समान रूप से झुका हो, उसे कूर्मपृष्ठाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से बन्धन कर भय रहता है।
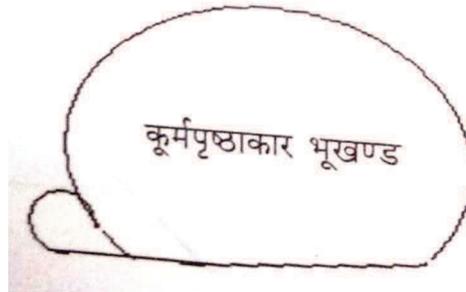
16. **ताराकार भूखण्ड** :- जो भूखण्ड तारे के आकार जैसा हो, उसे ताराकार भूखण्ड कहते हैं, निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड अशुभ माना जाता है।

17. **त्रिशूलाकार भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृति त्रिशूल जैसी हो, उसे त्रिशूलाकार भूखण्ड कहते है। निवास क जाता है।

18. **पक्षीमुख भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृति पक्षी के मुख जैसी हो उसे पक्षीमुख भूखण्ड कहा जाता है, निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड भी अशुभ हैं।
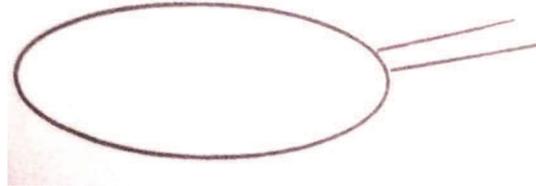
19. **कुंभाकार भूखण्ड :-** जो भूखण्ड घड़े, कलश या मटके की आकृति का हो, उसे कुंभाकार भूखण्ड कहते हैं, निवास के लिए यह भूखण्ड अशुभ माना जाता है।

20. **चक्राकार भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की आकृति चक्र (पहिये) के समान हो, उसे चक्राकार भूखण्ड कहते है, ऐसा भूखण्ड निवास के लिए अशुभ माना जाता है।

21. **विषमबाहु भूखण्ड :-** जिस भूखण्ड की चारो भुजाएँ असमान हो, वह विषमबाहु भूखण्ड कहलाता है, ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से दुःख, अशान्ति और आर्थिक हानि होती हैं।
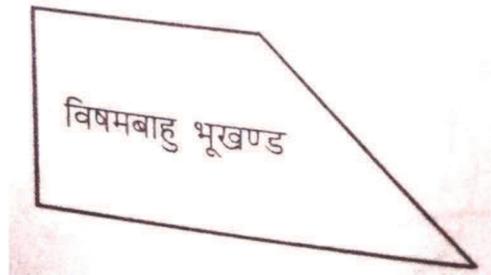
22. **दण्डाकार भूखण्ड** :- जिस भूखण्ड की आकृति दण्ड के समान हो उसे दण्डाकार भूखण्ड कहा जाता है, निवास के दृष्टिकोण से यह भूखण्ड अशुभ है और पशुधन की हानि करता हैं।
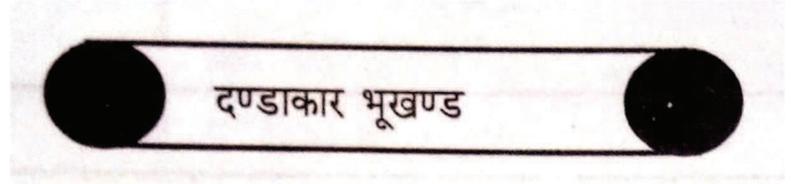
23. **वीणाकार भूखण्ड** :- ऐसा भूखण्ड, जो आकार में वीणा जैसा हो, उसे वीणाकार भूखण्ड कहते हैं, ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से शारीरिक कष्ट होता हैं।

24. **सिंहमुखी भूखण्ड** :- जो भूखण्ड मूार्ग की तरफ अधिक चोड़ा और पिछले हिस्से से कम चौड़ा हो, उसे सिंहमुखी भूखण्ड कहते है, यह भूखण्ड निवास के लिए अशुभ तथा व्यापार के लिए शुभ है।
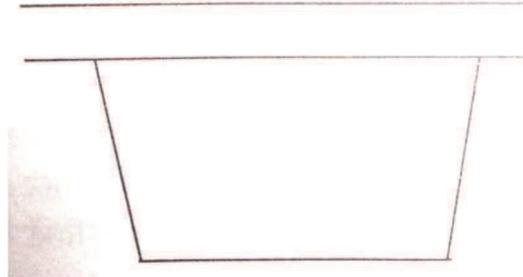
25. **गोमुखी भूखण्ड** :- जो भूखण्ड मार्ग की तरफ से कम चौड़ा और पिछले हिस्से में अधिक चौड़ा हो, उसे गोमुखी भूखण्ड कहते हैं, यह भूखण्ड निवास के लिए उत्तम माना जाता हैं।
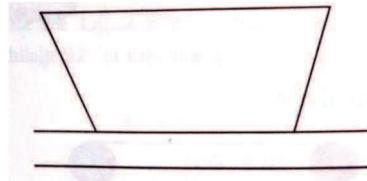
26. **षट्कोणाकार भूखण्ड** :- जिस भूखण्ड की छः भुजाएँ हो, उसे षट्कोणाकार भूखण्ड कहते है, निवास की दृष्टि से यह भूखण्ड शुभ माना जाता हैं, ऐसे भूखण्ड पर निवास करने से उन्नति की प्राप्ति होती हैं।
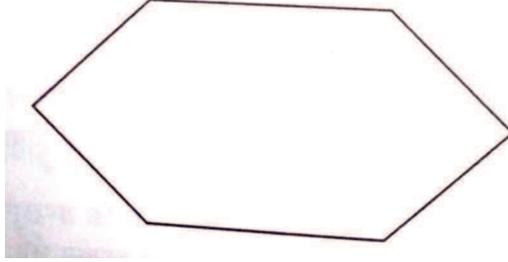
इस प्रकार से वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में भूखण्ड की विभिन्न आकृतियाँ और उनका शुभाशुभ फल वर्णित है। यद्यपि कहा गया है जिस भूमि पर जाते ही नेत्र और मन संतुष्ट हो जाएँ, प्रसन्न हो जाए, ऐसी भूमि निवास के लिए सर्वोत्तम हैं। तथापि निवास हेतु भूखण्ड का चयन करते समय वास्तुशास्त्र में बताई गई भूखण्डों की शुभाशुभ आकृतियों का अवश्य विचार करना चाहिए।

क्र.	भूखण्ड-आकृति	विशेषता	फल
1	वर्गाकार	चारों भुजाओं की लम्बाई समान व प्रत्येक कोण समकोण होता है।	धनागम
2	आयताकार	आमने सामने की भुजाओं की लम्बाई समान और चारों कोण समकोण होते हैं। लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात 2%1 से अधिक न हो।	सर्वसिद्धि। कुछ विद्वानों के मतानुसार चन्द्रवेधी-शुभ सूर्यवेधी-अशुभ
3	वृत्ताकार	वृत्ताकार भूमि में वृत्ताकार भवननिर्माण ही शुभ होता है।	बुद्धिवृद्धि
4	भद्रासन	वर्गाकार भूखण्ड व बीच का भाग समतल हो। कुछ विद्वानों के अनुसार अष्टकमलदल की आकृति भद्रासन है।	शुभ, कल्याण
5	चक्राकार	अनेक कोणों एवं भुजाओं वाला चक्र के समान आकार वाला भूखण्ड।	दरिद्रता

6	विषम	असमान भुजाओं एवं विषम भूमि त्रिभुज की आकृति	शोक
7	त्रिकोणाकार	त्रिभुज की आकृति	राजकीय भय
8	शकटाकार	बैलगाड़ी रथ की आकृति	धनक्षय
9	दण्डाकार	दण्ड की आकृति	पशुक्षय
10	सूपाकार	मार्ग की ओर सूप एवं पीछे की ओर अर्धचन्द्राकार	गोधनक्षय
11	कूर्माकार	कछुए की पीठ जैसी आकृति	बन्धनपीडा
12	धनुषाकार	अनुष जैसी अर्धचन्द्राकार आकृति	भय
13	कुम्भाकार	घड़ा, मटका या कलश जैसी आकृति	कुष्ठरोग
14	पवनाकार	हाथ से झलने वाले पंख जैसी आकृति	नेत्रकष्ट व धननाश
15	गोमुखी	गाय के मुख जैसी आकृति	आवास हेतु शुभ व्यापार हेतु अशुभ
16	सिंहमुखी या बृहन्मुंखी	सिंह के मुख के जैसी विस्तृत आकृति	आवास हेतु अशुभ व्यापार हेतु शुभ
17	चतुष्कोण	आमने सामने की भुजाओं की लम्बाई एवं कोण बराबर हों परन्तु समकोण न हों।	सुख, धनधान्य
18	षड्भुजाकार	छह भुजाओं वाली भूमि	उन्नतिकारक
19	अष्टभुजाकार	आठ भुजाओं वाली भूमि	सुख, सम्पत्ति
20	अर्धवृत्ताकार	सूपाकार के विपरीत आकृति	विकास बाधा, चोरभय
21	अण्डाकार	दीर्घवृत्ताकार या अण्डे जैसी आकृति	हानि, दरिद्रता परन्तु त्यागियों के लिए शुभ
22	ताराकार	तारे के समान आकृति	असफलता, विवाद
23	त्रिशूलाकार	त्रिशूल जैसी आकृति	अशान्ति, संघर्ष परन्तु वीरप्रासु भूमि

24	पक्षीमुखी	पक्षी के मुख की समान आकृति	हानि, दुर्घटना
25	ध्वजाकार	ध्वज या पताका के जैसी आकृति	यश, सम्मान
26	मुदगराकार	मुद्गर जैसी आकृति	अशुभ

भूखण्ड का विस्तार और कटाव

वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन-निर्माण के लिए आयताकार या वर्गाकार भवन सर्वोत्तम है परन्तु यदि भवन का विस्तार या कटाव किसी एक दिशा या विदिशा में हो, तो उसका क्या प्रभाव होगा? यदि कोई व्यक्ति अपने भूखण्ड का विस्तार किसी दिशा में करना चाहे तो उसे यह विस्तार किस दिशा में करना चाहिये।इस जिज्ञासा के शमन हेतु वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में बताया गया है कि किसी भूखण्ड का विस्तार यदि दक्षिण दिशा में या दक्षिण-पूर्व में हो तो यह अशुभ होता है। ऐसा होने पर आगजनी, शत्रुभय, धनहानि और दुर्घटना की संभावना रहती है। इन दिशाओं में पाँच प्रकार के भूखण्डों का निर्माण होता है और ये सभी अशुभ हैं।
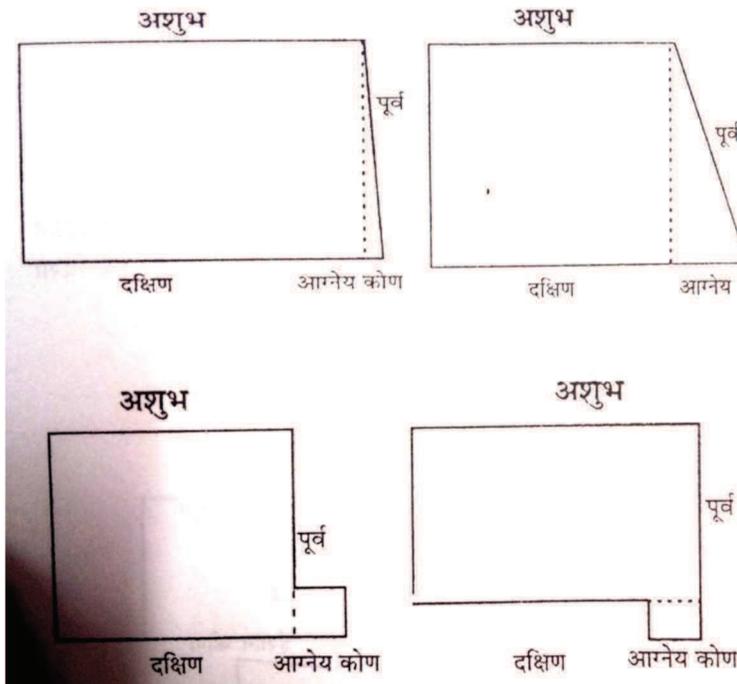
1. दक्षिण पूर्व में कटान

दक्षिण-पूर्व में कटान होने पर तीन-प्रकार के भूखण्डों का निर्माण होता हैं। इनमें से ऐसा कटान जिससे ईशान कोण में वृद्धि हो रही हो, वह शुभ है जबकि शेष दोनों कटान अशुभ हैं। ऐसे भवन स्त्रीकष्ट और रोग प्रदान करते हैं।
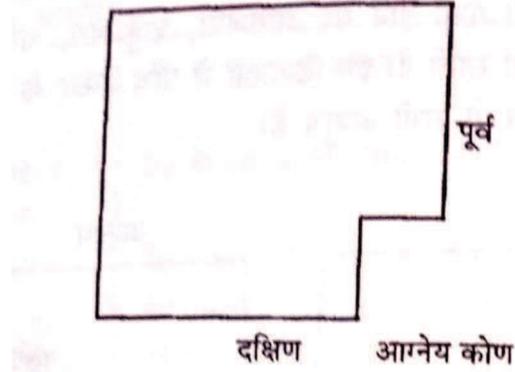
2. उत्तर-पूर्व में विस्तार

उत्तर-पूर्व में भूखण्ड का विस्तार अत्यन्त शुभ माना गया हैं। ईशान कोण में विस्तार से उन्नति, समृद्धि और धन की प्राप्ति होती हैं। इस दिशा में विस्तार से पाँच प्रकार का निर्माण होता हैं।
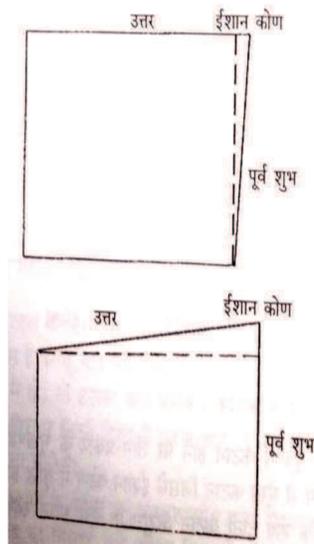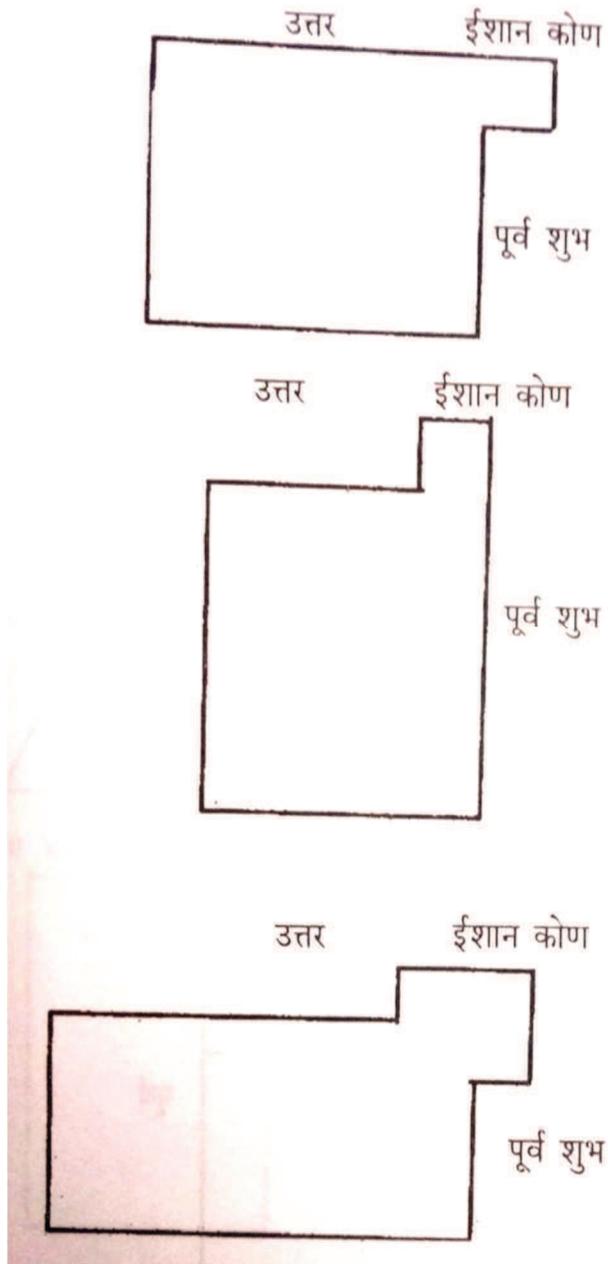
3. उत्तर-पूर्व में कटाव

इस दिशा में भूखण्ड का कटाव अशुभकारी है। ईशान में भूखण्ड कटाव के कारण तीन प्रकार का निर्माण संभव हैं। ऐसे भूखण्ड मानसिक चिन्तादायक और उन्नति में बाधक होते हैं।
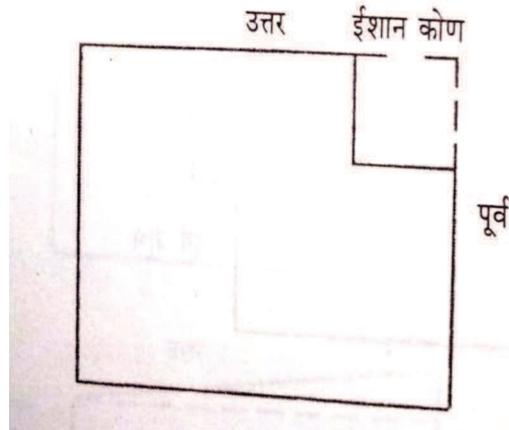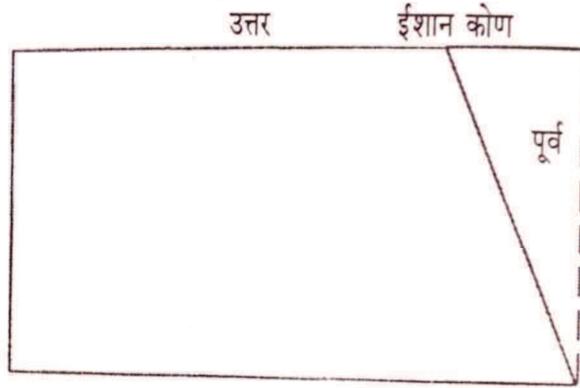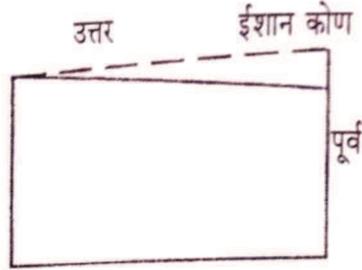
4. उत्तर-पश्चिम में विस्तार

उत्तर-पश्चिम में भूखण्ड का विस्तार पाँच प्रकार से संभव है पर यह विस्तार अशुभ है। इस कोण में विस्तार होने से गृह निवासियों को धन हानि और राजनीतिक भय होता है।
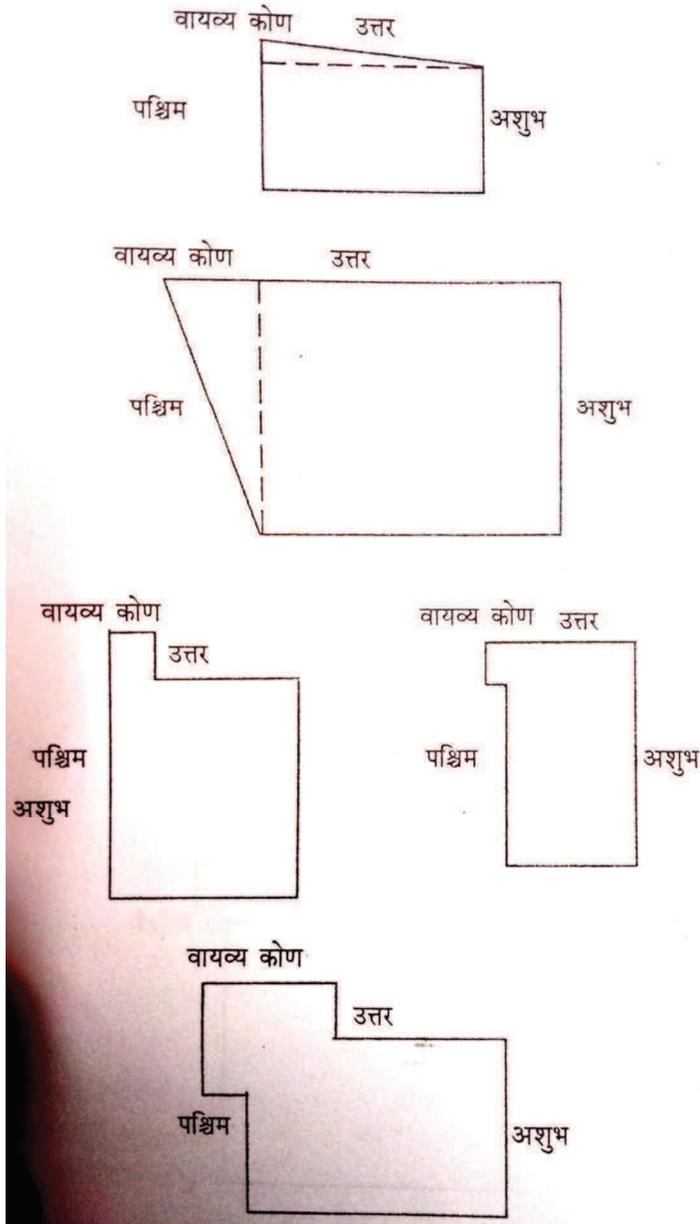
5. उत्तर-पश्चिम में कटाव

उत्तर-पश्चिम अर्थात् वायव्य कोण में ऐसा कटाव जो ईशान में वृद्धिकारक हो, शुभ होता है, उसके अतिरिक्त कटाव उन्नति और धन में बाधक हैं।
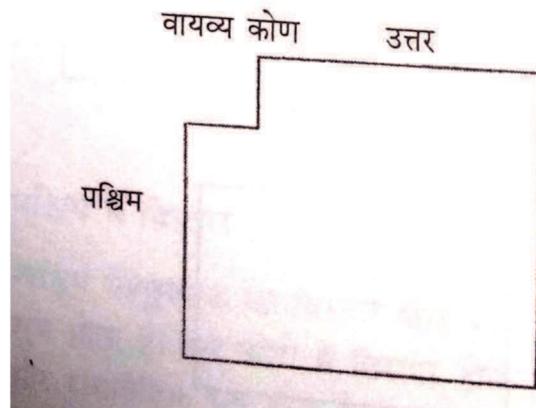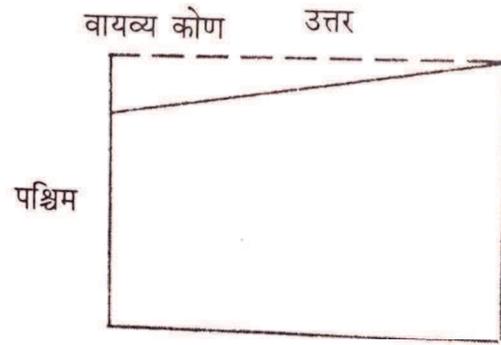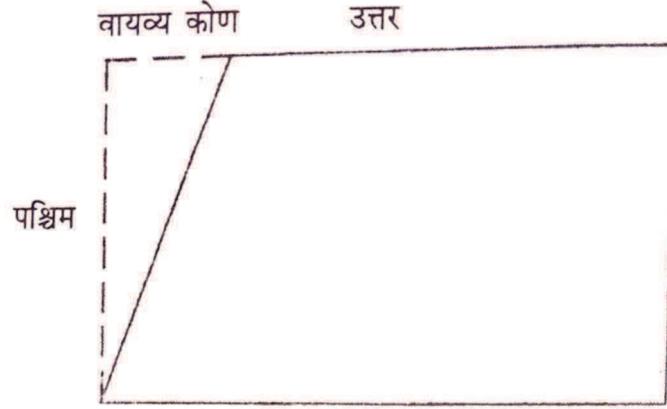
7. दक्षिण-पश्चिम में विस्तार

दक्षिण-पश्चिम अर्थात् नैऋत्य कोण में भूमि का विस्तार पाँच प्रकार से संभव है और किसी भी प्रकार का विस्तार इस दिशा में शुभ नहीं हैं। यह विस्तार स्वास्थ्य हानि, पारिवारिक कलह, जैसे अशुभ परिणाम प्रदान करता हैं।
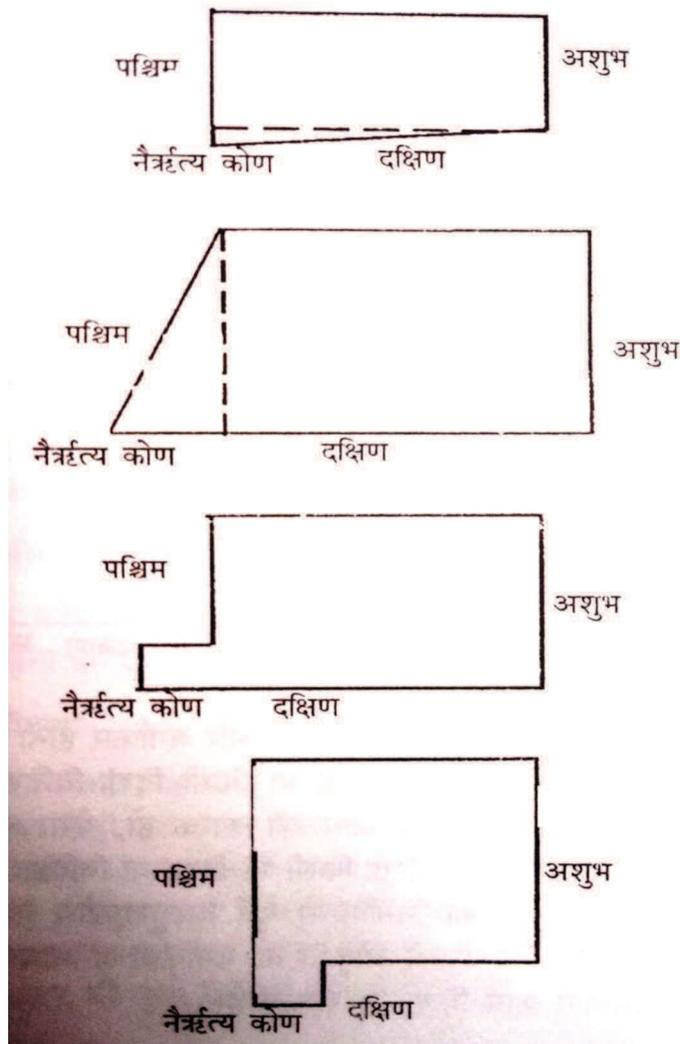
8. दक्षिण-पश्चिम में कटाव

इस दिशा में किसी भी प्रकार का कटाव शुभ नहीं हैं। इस दिशा में कटाव होने पर व्यक्ति को विवाद, संतति कष्ट और असफलता का सामना करना पड़ता हैं,
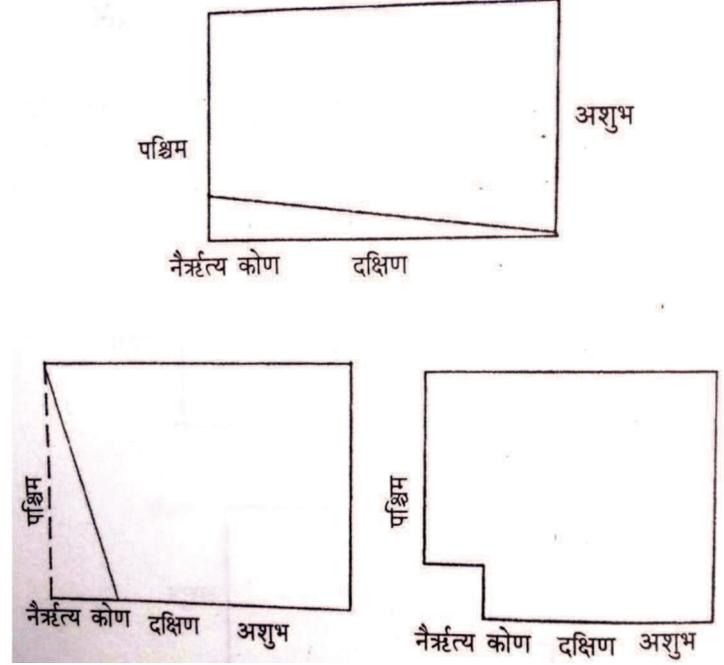
इस प्रकार से भूखण्ड का आयताकार और वर्गाकार होना सर्वोत्तम है परन्तु यदि ईशान कोण में विस्तार हो यां किसी दिशा-विदिशा में ऐसा कटाव हो जो ईशान कोण में विस्तार का कारक हो, ऐसा भूखण्ड भी निर्माण हेतु शुभ है, इनके अतिरिक्त किसी भी दिशा यां विदिशा में विस्तार या कटाव युक्त भूखण्ड को निर्माण से पूर्व वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार उसमें सुधार कर उसकी आकृति को वर्गाकार या आयताकार बना कर उस पर निर्माण कार्य किया जा सकता है।

भूखण्ड के कोणों का माप

भूखण्ड का चयन करते समय भूखण्ड के कोनों का माप जानना अत्यन्त आवश्यक हैं। जिस भूखण्ड के चारों कोण 90^0 अंश के हो, वह भवन निर्माण हेतु सर्वोत्तम माना जाता है,

इसके अतिरिक्त भूखण्ड के अन्य कोणों के विषय में अग्रलिखित विचार करना चाहिए।

(1) ईशान कोण

इस कोण में कोने का माप 90^0 अंश या उससे कुछ कम शुभ है परन्तु 90^0 अंश से अधिक होना हानिकारक हैं।

(2) आग्नेय कोण

इस कोण में कोने का माप 90^0 अंश या उससे कुछ अधिक होना शुभ हैं परन्तु 90^0 अंश से कम होना हानिकारक हैं।

(3) वायव्य कोण

इस कोण में कोने का माप 90^0 अंश से अधिक होना शुभ है परन्तु 90^0 अंश से कम होना हानिकारक हैं।

(4) नैऋत्य कोण

इस कोण में कोने का माप 90^0 अंश ही होना चाहिए। कम या अधिक होना हानिकारक हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिए –

१. वास्तुशास्त्र का विचार-केन्द्र भवननिर्माण है ।
२. कन्या राशि वालों को ग्राम की उत्तर दिशा में रहना चाहिए ।
३. आरम्भ से ही पृथ्वी सुनियोजित थी ।
४. पृथु ने पृथ्वी का सुनियोजन किया था ।
५. पृथ्वी सौर- मण्डल की ही इकाई है ।
६. निवास हेतु चक्राकार भवन शुभ है ।
७. निवास हेतु भद्रासन भवन अशुभ है ।

८. दक्षिण-पश्चिम में कटाव शुभ है।

3.4.भूमि शोधन

भवन-निर्माण के लिए जिस भूखण्ड का चयन किया गया है उस भूखण्ड की मिट्टी का घनत्व कैसा हैं? वह खोखली तो नहीं हैं? क्या वह भवन को ठोस आधार देने में सक्षम हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर के रूप में भारतीय वास्तुशास्त्र में भूमि-परीक्षण किया जाता है जिसके माध्यम से मिट्टी का घनत्व जान कर उसके ठोस-पन का अनुमान लगाया जाता हैं। भूमि परिक्षण की कुछ विधियाँ निम्नलिखित है।

- गृह निर्माण हेतु चयनित भूखण्ड के मध्य भाग में गृहस्वामी के हस्त-परिमाण से एक हाथ गहरा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ लम्बा गड्ढे भरने से यदि मिट्टी बच जाए तो भूखण्ड गृह निर्माण के लिए उत्तम, यदि मिट्टी न बचे तो मध्यम और यदि मिट्टी कम पड़ जाए तो भूखण्ड को अधम माना जाता है।
- चयनित भूखण्ड के मध्य भाग में स्वामी हस्त परिमाण से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे जल से भर दे। फिर 100 कदम दूर जाकर लौट कर देखें। यदि गड्ढा पूर्ण भरा हो तो शुभ, यदि गड्ढे में आधे से ज्यादा पानी हो तो मध्यम तथा यदि पानी आधे से कम हो या सूख जाए तो अशुभ होता है।

- चयनित भूखण्ड के मध्य भाग में गृह स्वामी के हस्त परिमाण से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोद कर सायंकाल उसे पानी से भर दें। अगले दिन प्रातः काल देखें, यदि गड्ढे में कुछ पानी बचा हो, तो मध्यम और यदि पानी न हो तथा गड्ढे में दरारें दिखाई दें तो ऐसी भूमि गृह निर्माण के लिए अशुभ मानी जाती हैं।

- चयनित भूखण्ड पर गृह स्वामी के हस्त परिमाण से एक हाथ लम्बा, चौड़ा और गहरा गड्ढा खोदें। फिर उसमें जल भरें, जल भरने पर यदि गड्ढे का जल स्थिर रहे तो घर में स्थिरता, यदि जल दक्षिण की ओर घूमें तो सुख, यदि जल वामावर्त हो तो भ्रमण तथा शीघ्र सूख जाए तो मृत्यु का भय रहता हैं।

- चयनित भूखण्ड पर किए गए गड्ढे में चार दिशाओं में मिट्टी के चार दीपक जलाकर रखें, उत्तर दिशा के बत्ती की लौ स्वच्छ और देर तक प्रज्वलित होने पर वह भूमि ब्राह्मण के लिए, पूर्वदिशा का दीपक देर तक जलने पर क्षत्रिय के लिए, दक्षिण दिशा का दीपक देर तक जलने पर वैश्य के लिए और पश्चिम दिशा का दीपक देर तक जलने पर वह भूमि शूद्रवर्ण के लिए शुभ कही गई हैं।

- एक अन्य विधि के अनुसार सायंकाल गड्ढे में दीपक के स्थान पर सफेद, लाल, पीला और काला फूल क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम दिशा में रखे, अगले दिन प्रातः काल जो फूल सबसे कम मुरझाया हो उस वर्ण के लिए वह भूमि उत्तम कहीं गई हैं।

- एक अन्य विधि में बताया गया है कि भूमि परीक्षण के लिए एक पुरुष के आकार जितनी गहराई तक खुदाई करनी चाहिए। यदि खुदाई में चींटी एवं दीमक के बिल, अजगर, साँप, भूसा, हड्डी, कपड़े, राख, कौड़ी, रूई, जली लकड़ी, खप्पर या लोहा निकले तो ऐसी भूमि भवन निर्माण के लिए अशुभ मानी जाती हैं।

- भूमि के परीक्षण की एक विधि यह भी है कि जिस भूमि पर खड़े होते ही मन को संतोष और नेत्र को तृप्ति प्राप्त हो ऐसी भूमि पर भवन निर्माण करना शुभप्रद होता हैं कहा गया हैं -

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायते भुवि।

तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्।।

भूमि के दोष

भूमि का सबसे मुख्य गुण उसका चिकनापन एवं ठोस होना हैं, इसके विपरीत जो मिट्टी रेतीली या पोली हो, जिस भूमि में दरारें हो, चीटियों या दीमक के बिल हो, कब्रिस्तान हो, शल्य हो, दलदल हो, बहुत ऊँची-नीची हो, ऐसी भूमि दोषपूर्ण मानी जाती है और भवन निर्माण के लिए प्रशस्त नहीं मानी जाती। भवन निर्माण का आधार भूमि है। भूमि जितनी ठोस, निर्दुष्ट और शुभ लक्षणों से युक्त होगी उस भूमि पर बनने वाला भवन भी उतना ही स्थायी,

मजबूत और सुखदायक होगा। अतः वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में भूखण्ड के परीक्षण की विविध विधियों के अनुसार भूमि परीक्षण करके ही शुभ लक्षणों से युक्त भूमि का चयन भवन निर्माण के लिए करना चाहिए।

3.4.1. शल्य-निष्कासन

भूमि की गुणवत्ता उसकी दोषशून्यता से है और इन दोषों में से एक दोष शल्यदोष हैं। शल्ययुक्त भूमि पर किया गया भवननिर्माण कभी भी शुभ नहीं होता। इसलिए भवननिर्माण से पहले शल्य निष्कासन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में "शल्योद्धार" के नाम से वर्णन किया गया है। शल्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है हड्डी, परन्तु वास्तुशास्त्र में केश, चर्म, कोयला, काष्ठ, भस्म और तुष इन सबका परिगणन भी शल्य के रूप में किया जाता हैं। यदि शल्य युक्त भूमि पर भवन निर्माण किया जाए तो भवन कितना ही भव्य क्यों न हो, भवन में निवास करने वाले लोगों को आजीवन शारीरिक, मानसिक और आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ता हैं। अतः भवननिर्माण से पूर्व भूमि में खनन कर शल्य का निष्कासन करने के पश्चात ही भवन का निर्माण करना चाहिए, और यह खनन जलान्त (खुदाई करते समय जहाँ जल निकल जाए) प्रस्तरान्त (जहाँ बड़ी चट्टान आ जाए) अथवा पुरुषान्त ($3\frac{1}{2}$ हाथ) नीचे तक ही करना चाहिए। इतनी भूमि तक शल्य प्राप्त न होने पर भूमि को निःशल्य मान लिया जाता है, कहा गया है-

जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा।

क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत्।।

इसलिए शल्य निष्कासन का सर्वोत्तम उपाय यह है कि भूखण्ड की मिट्टी को $3\frac{1}{2}$ हाथ की गहराई तक खोदकर निकलवा देना चाहिए और उसमें अच्छी मिट्टी तथा पत्थर के मोटे टुकड़े भरवा देने चाहिए। ऐसा करने से मिट्टी पत्थरों के बीच जमकर जम जाती हैं और भूखण्ड का घनत्व बढ़ जाता हैं जिससे जमीन में दीमक, बिल, रूई, कपड़ा, राख, भूसा, एवं लकड़ी जैसी चीजें जो जमीन के अन्दर होती हैं उन सबका दोष दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त शल्य निष्कासन की कई विधियों का वर्णन वास्तुग्रन्थों में मिलता हैं जो अग्रलिखित हैं।

जिस भूखण्ड पर भवन निर्माण करना हो, उस भूखण्ड के नौ भाग करें। उन नौं भागों में अ-क-

च-ट-ए-त-श-प् वर्ग पूर्वादि क्रम में लिखे। मध्य में यवर्ग लिखें। स्वस्तिवाचनादि कर ब्राह्मण प्रधान स्थपति से कहे कि वो गृहस्वामी को किसी देवता, फल या वृक्ष का नाम लेने को कहें। गृहपति द्वारा उच्चारित शब्द का प्रथम वर्ण जिस कोष्ठक में हो, भूखण्ड की उसी दिशा में शल्य कहना चाहिए। शल्य-निष्कासन की इस विधि को हम तालिका के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते है –शल्यज्ञान की एक अन्य विधि के अनुसार, गृहनिर्माण के समय गृहस्वामी प्रधान स्थपति एवं दैवज्ञ के साथ गृह के अन्दर प्रवेश करें। उस समय गृहस्वामी अपने शरीर के जिस अङ्ग को खुजलाए, वास्तुपुरुष के शरीरावयव विभाग के अनुसार उसी अङ्ग में शल्य होता है। अथवा गृहस्वामी भवन के जिस हिस्से में खड़ा हो जाए, उसी स्थान पर शल्य होता है।

प फ ब भ म **ईशान**	अ ई उ ट्ट लृ **पूर्व**	क ख ग घ घ **आग्नेय**
श ष स ह **उत्तर**	य र ल व **मध्य**	च छ ज झ व **दक्षिण**
त थ द ध न **वायव्य**	ए ऐ ओ औ **पश्चिम**	ट ठ ढ ड ण **नैऋत्य**

एक अन्य विधि के अनुसार, निर्माणाधीन भवन में प्रवेश करते समय कोई पक्षी सूर्याभिमुख होकर दीप्त दिशा में कठोर स्वर करें तो गृहस्वामी उस समय अपने शरीर के जिस अंग को स्पर्श करे, वास्तुपुरूष के शरीर के उसी अंग में शल्य होता है। दीप्त दिशा के विषय में वर्णन किया गया है, कि सूर्य अपने उदय के बाद पहले प्रहर में पूर्व, द्वितीय प्रहर में आग्नेय, तृतीय प्रहर में दक्षिण और सायंकाल तक नैऋत्य में होता है, पुनः रात्रि के प्रथम प्रहर में सूर्य पश्चिम, द्वितीय प्रहर में वायव्य, तृतीय प्रहर में उत्तर तथा चतुर्थ प्रहर में ईशान कोण में होता है, सूर्य जिस दिशा का भोग कर चुका है वो अङ्गारिणी, जिस दिशा में रहता है वो दीप्त, उससे आगे धूमिता और शेष दिशाएँ शान्ता कहलाती है दीप्त दिशा के सम्मुख हाथी, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली आदि जो भी पशु शब्द करता है भूमि में उसी जीव की हड्डी होती है और भूखण्ड के जिस भाग पर स्थित होकर गृहपति शरीर के जिस अङ्ग को स्पर्श करता है। भूखण्ड के उसी भाग में उस जीव के शरीर के उसी अङ्ग का शल्य होता है। एक अन्य विधि के अनुसार भवन निर्माण के समय सूत्र प्रसारण काल में जो जीव सूत्र का लंघन करे उसी जीव की हड्डी भूखण्ड में होती हैं।

शल्य निष्कासन की एक अन्य विधि के अनुसार, प्रश्न के प्रथमाक्षर से शल्य का ज्ञान किया जाता है जिसके अनुसार नौ भागों में विभक्त भूमि पर अकारादि वर्ण तालिका में दिखाये अनुसार भूखण्ड में शल्य का ज्ञान किया जाता है। जिसे इस तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है।

क्र	प्रश्न का प्रथमाक्षर	दिशा	शल्यस्थिति	शुभाशुभ फल
1	अ,आ,इ,ई,उ,ऊ,ट्ट, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः	पूर्व	मनुष्य की हड्डी डेढ़ हाथ नीचे	मृत्युदायक
2	क,ख,ग,घ,घ	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	गधे की हड्डी, दो हाथ नीचे	राजदण्डभय
3	च,छ,ज,झ,	दक्षिण	मनुष्य की हड्डी, कमर पर्यन्त नीचे	लम्बी बीमारी के बाद मृत्यु
4	ट,ठ,ड,ढ,ण	नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	कुत्ते की हड्डी, डेढ़ हाथ नीचे	घर में उत्पन्न बच्चों के लिए मृत्युकारक
5	त,थ,द,ध,न	पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ नीचे	बच्चे की हड्डी, (घर से बेघर)	गृहच्युत
6	फ,ब,भ,म,	वायव्य (पश्चिम-उत्तर)	भूसी, कोयला आदि चार हाथ नीचे	मित्रनाश व दुःस्वप्न
7	य,व,र,ल	उत्तर दिशा में कमर पर्यन्त नीचे	ब्राह्मण की हड्डी	निर्धनता
8	श,ष,स	ईशान (उत्तर-पूर्व) में डेढ़ हाथ नीचे	गाय की हड्डी	गोधन नाश
9	प और ह	मध्यभाग	मानव कपाल की हड्डी व कोश, भस्म, लोहा आदि कमर पर्यन्त नीचे	कुलनाश

वास्तुरत्नाकर में शल्यनिष्कासन की एक अन्य विधि का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार भूखण्ड को नौ भागों में विभक्त कर पूर्वादि से व,क,च,त,ए,ह,श,प् तथा मध्य में या इन वर्णो को स्थापित किया जाता हैं। इसके पश्चात् स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन कर, इष्टदेव और कुलदेव

का स्मरण कर, भूमि पूजन कर तीन ब्राह्मणों द्वारा ''ॐ धरणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा'' इस मन्त्र का तीन-तीन हजार कुल ९००० जप करवाकर ब्राह्मण पुष्प का, क्षत्रिय नदी का, वैश्या देवता का और अन्य लोग फल का नाम उच्चारित करें, भूस्वामी द्वारा उच्चारित नाम का प्रथम अक्षर जिस कोष्ठक में हो, उस कोष्ठक की दिशा अनुसार शल्य का ज्ञान होता हैं। इसको हम तालिका के माध्यम से ही समझ सकते है -

नाम का प्रथमाक्षर	**दिशा**	**शल्यस्थिति**	**शुभाशुभ फल**
व	पूर्व	मनुष्य की हड्डी, डेढ हाथ नीचे	मृत्युदायक
क	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)	गधे की हड्डी, कमर पर्यन्त नीचे	राजदण्डभय
च	दक्षिण	बन्दर की हड्डी, कमर पर्यन्त नीचे	मृत्यु
त	नैॠत्य (दक्षिण-पश्चिम)	घोड़े की हड्डी, डेढ़ हाथ नीचे	धननाश
ए	पश्चिम	बच्चे की हड्डी, डेढ़ हाथ नीचे	गोधननाश
स	उत्तर	ब्राह्मण की हड्डी, कमर पर्यन्त नीचे	निर्धनता
य	ईशान (उत्तर-पूर्व)	भालू की हड्डी, डेढ़ हाथ नीचे	गोधननाश
प	मध्यभाग	मानव कपाल की हड्डी व केश, भस्म, शल्य हृदय पर्यन्त नीचे	कुलनाश

वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विविध प्रकार के शल्यों का शुभाशुभफल भी वर्णित हैं। यथा-

शल्यं गवां भूपभयं हयानां रूजं शुनोत्वोः कलहप्रनाशौ।

खरोष्ट्रयोर्हानिमपत्यनाशं स्त्रीणामजस्याग्निभयं तनोति।।

अर्थात् गौ की हड्डी होने पर राजभय, घोड़े की हड्डी होने पर रोगभय, कुत्ते की हड्डी से कलह व विनाशभय, गधे और ऊँट की हड्डी से हानि व संततिनाशभय तथा बकरे की हड्डी से अग्निभय होता हैं।

इस प्रकार से शल्य निष्कासन वास्तुग्रन्थों में वर्णित एक अनिवार्य प्रक्रिया है जिसको आधुनिक समय में भवन निर्माण में अनदेखा किया जाता है जिस कारण से भव्य भवनों में रहने वाले लोग भी वास्तविक सुख, समृद्धि और शान्ति से वंचित है अतः भवन निर्माण से पूर्व भूमि मे से शल्य निष्कासन अवश्य करना चाहिए और शल्य निष्कासन के पश्चात ही भूमि शोधन होने पर भवन निर्माण करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न - 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

1. भू-शोधन हेतु ---------हाथ गहरा गड्ढा खोदा जाता है
2. गड्ढे में जल का दक्षिणावर्त होना -------- है
3. सूर्यावस्थित दिशा की संज्ञा -------- है
4. भूमि में गौ के शल्य का फल ----------है
5. भूमि में बकरे के शल्य का फल ---------है

3.5. सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि भवन-निर्माण के लिए कौन सी भूमि का चयन किया जाए । सर्वप्रथम निवास हेतु काकिणी-विचार के माध्यम से ग्राम का चयन किया जाता है, तदनन्तर भूमि-चयन किया जाता है। गुणवत्ता के आधार पर भूमि के ब्राह्मण-क्षत्रिया-वैश्या-शूद्रादि चार विभाग किए गये है, भूमि की गुणवत्ता को गजपृष्ठादि और

वीथियों के माध्यम से बताया गया है । निवास हेतु चयनित भूखण्ड के विविध आकार और उनके शुभाशुभ फल का वर्णन किया गया है । भूखण्ड का विविध दिशाओं में विस्तार और कटाव भी भूखण्ड पर निवास करने वाले लोगो को शुभाशुभ फल को प्रदान करता है । इस शुभाशुभ फल को भी हमने प्रस्तुत इकाई में हमने जाना । भूमि-चयन के अनन्तर भूमि-परिक्षण की विविध विधियाँ बताई गई है । चयनित भूखण्ड पर गृह स्वामी के हस्त परिमाण के तुल्य लम्बा, चौडा और गहरा गड्ढा खोदकर उसको जल से भरकर भूमि-परीक्षण का वर्णन किया गया है । तदनन्तर भूमि के अन्तर्गत शल्य का विचार किया गया है । विविध विधियों के माध्यम से शल्यनिष्कासन की प्रक्रिया बताई गई है । शल्य के विविध शुभाशुभ फल भी प्रस्तुत इकाई में हमने जाने । इस प्रकार से गृह-निर्माण से पूर्व इन सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए ग्राम-चयन,भूमि-चयन,भूमि-परीक्षण और शल्यनिष्कासन करना अत्यन्त आवश्यक है तांकि गृह में निवास करने वाले लोगो का जीवन सुखी,समृद्द और सुरक्षित हो सके ।

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

1) ईशान कोण – पूर्व-उत्तर दिशा

2) आग्नेय कोण – पूर्व-दक्षिण दिशा

3) नैऋत्य कोण – दक्षिण-पश्चिम दिशा

4) वायव्य कोण – पश्चिम-उत्तर दिशा

5) काकिणी -- निवास हेतु किस ग्राम का चयन किया जाए, ग्राम की शुभाशुभता जानने के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता है। उस विधि को काकिणी विचार कहते है ।

6) पृष्ठ – विविध विदिशाओ में भूखण्ड की उँचाई और नीचाई के फलस्वरूप भूखण्ड की पृष्ठादि विविध सँज्ञाएँ है ।

7) वीथी – भूखण्ड की विविध दिशाओ में ढलान के फलस्वरूप भूखण्ड की गौ-वीथी आदि विविध सँज्ञाएँ है ।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

१) सत्य २) असत्य ३) असत्य ४) सत्य ५) सत्य ६) असत्य ७) असत्य ८) असत्य

अभ्यास प्रश्न – २ की उत्तरमाला

१) एक २) शुभ ३) दीप्त ४) राजभय ५) अग्निभय

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

ख) बृहद्वास्तुमाला, सं० रामनिहोर द्विवेदी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – २००१

ग) वास्तुरत्नाकरः, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

घ) राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् , सं० श्रीकृष्ण जुगनू , परिमल पब्लिकेशन,दिल्ली,२००५

ङ) समराङ्गणसूत्रधारः, सं० एवं अनु० पुष्पेन्द्र कुमार , न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन , दिल्ली - २००४

च) विश्वकर्मप्रकाशः, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

3.9 सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

१) भूमिचयन पर एक विस्तृत निबन्ध लिखें।

२) काकिणी विचार का विस्तार से वर्णन करें।

३) भूमि के विविध भेदों का विस्तार से वर्णन करें।

४) गजपृष्ठादि भूमियों का वर्णन करें ।

५) भूखण्ड की विविध आकृतियों पर निबन्ध लिखें।

६) भूपरीक्षण पर निबन्ध लिखें।

७) शल्यनिष्कासन पर निबन्ध लिखें।

इकाई – 4 खात, वास्तु पद विन्यास, पिण्ड निर्माण एवं द्वार विन्यास

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 खात-निर्णय

4.3.1 वास्तुपदविन्यासविमर्श

4.4 पिण्डसाधन

4.4.1 द्वारविन्यास

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते है कि वास्तुशास्त्र भवन निर्माण से सम्बन्धित शास्त्र है। इसमें भवन के विविध अङ्गों के निर्माण की वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचना की गई है। विगत इकाईयों में आपने वास्तुशास्त्र के विविध विषयों को जाना। प्रस्तुत इकाई में आप खात,वास्तुपदविन्यास,पिण्डसाधन एवं द्वार-विन्यास के विषय में अध्ययन करेंगे। वस्तुतःभवन निर्माण के आरम्भ का प्रथम सोपान खात ही है। भवन निर्माण के समय शिलान्यास के लिए सर्वप्रथम खात किया जाता है। खात कब किया जाए ? खात किस दिशा में किया जाए ? खात की गहराई कितनी होनी चाहिए? इत्यादि विषयों को आप प्रस्तुत इकाई में पढेंगे। तदनन्तर वास्तुपदविन्यास की चर्चा की जाएगी। भूखण्ड पर विविध देवों का विन्यास किस प्रकार किया जाए? किस दिशा में किस देवता का पद होगा? इत्यादि विषयों की चर्चा आप प्रस्तुत इकाई में की जाएगी । तदनन्तर पिण्डसाधन की चर्चा होगी। पिण्ड से अभिप्रायः है क्षेत्र । भूखण्ड के कितने भाग पर भवन का निर्माण होगा, इन विषयों पर पिण्डसाधन में विचार किया जाएगा। द्वार-विन्यास में गृह के मुख्य द्वार और अन्य द्वारों की दिशा, लम्बाई,चौडाई आदि के विषय में आप पढेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. खात-निर्णय करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. वास्तुपदविन्यास के मर्म को जान सकेंगे । ।
3. वास्तुपदविन्यास करने में सक्षम हो पायेंगे।
4. पिण्डादिसाधन की प्रक्रिया को समझ सकेंगे ।
5. द्वार-निर्णय करने में समर्थ हो सकेंगे ।

4.3 खात-् निर्णय

वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में भूखण्ड में खात-निर्णय का विचार दो स्थानों पर किया गया है। जैसा कि आप जानते है कि भवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक भूखण्ड होता है। भूखण्ड के चयन के बाद सर्वप्रथम भूमि का परीक्षण किया जाता है और भूमि-परीक्षण के लिए भूखण्ड में खात किया जाता है।शिलान्यास के लिए भी भूखण्ड में खात किया जाता है , प्रस्तुत इकाई में इसी खात के निर्णय के सम्वन्ध में चर्चा की जाएगी । शिलान्यास के समय भूखण्ड में खात किस दिशा में किया

जाए ? इस सम्वन्ध में वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में व्यापक चर्चा की गई है। **" राहुमुख-पुच्छ विचार "**नामक प्रकरण के अनुसार प्रत्येक भूखण्ड पर सर्पाकार राहु अपने शरीर को फैलाए हुए स्थित है। सूर्य के राशिचार के अनुसार इस सर्पाकार राहु की स्थिति में परिवर्तन होता रहता है, अतः सर्पाकार राहु की स्थिति ज्ञात कर खनन के समय इसके शरीर के अंगों पर प्रहार करने से बचना चाहिए क्योंकि इसके शरीर पर किए गए प्रहारों के कारण गृहस्वामी को विविध अशुभ फलों की प्राप्ति होती है यथा नाग के सिर पर प्रहार से मातृ-पितृ क्षय, पूंछ पर प्रहार से रोग,पीठ पर प्रहार से हानि एवं भय , कुक्षि पर प्रहार से पुत्र-धान्यादि लाभ होता है। यथोक्तम्-

शीर्षे मातृपितृक्षयः प्रथमतो खाते रुजः पृच्छके।
पृष्ठे हानिर्भयःच कुक्षिखनने स्यात् पुत्रधान्यादिकम् "॥

अतःभूखण्ड के सदैव उसी भाग में खनन श्रेयस्कर होता है जिस भाग में नाग का कुक्षि हो। गृहनिर्माण, देवालय निर्माण और जलाशय निर्माण में नाग के मुख में भिन्नता होती है । जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। राहु का मुख-पुच्छ विचार गृहनिर्माण, देवालय निर्माण और जलाशय निर्माण में इस प्रकार से है-

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशिविलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्॥

गृहनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार –

जब सूर्य की स्थिति वृष,मिथुन एवं कर्क राशि में होती है , तो राहु का मुख आग्नेय कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति सिंह,कन्या एवं तुला राशि में होती है तो राहु का मुख ईशान कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति वृश्चिक, धनु एवं मकर राशि में होती है तो राहु का मुख वायव्य कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति कुम्भ, मीन एवं मेष राशि में होती है तो राहु का मुख नैऋत्य कोण में रहता है। जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। यथा- वृष,मिथुन एवं कर्क राशि में सूर्य के रहने पर नाग का मुख आग्नेय कोण में, पीठ ईशान कोण में,और पुच्छ वायव्य में रहती है अतः खनन हेतु उपयुक्त स्थान नैऋत्य कोण है । जब नाग का मुख ईशान कोण में होगा, तो पुच्छ नैऋत्य कोण में रहती है अतः खनन की दिशा आग्नेय कोण होगी। जब नाग का मुख वायव्य कोण में होगा, तो पुच्छ आग्नेय कोण में रहती है अतः खनन की दिशा ईशान कोण होगी। जब नाग का मुख नैऋत्य कोण में होगा, तो पुच्छ ईशान कोण में रहती है अतः खनन की दिशा वायव्य कोण होगी। इसको हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

गृहनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार

सूर्य का राशिचार	राहु-मुख की स्थिति	राहु-पुच्छ की स्थिति	खात की दिशा
वृष,मिथुन एवं कर्क	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण
सिंह,कन्या एवं तुला	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	आग्नेय कोण
वृश्चिक, धनु एवं मकर	वायव्य कोण	आग्नेय कोण	ईशान कोण
कुम्भ, मीन एवं मेष	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	वायव्य कोण

देवालयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार -

जब सूर्य की स्थिति धनु,मकर,कुम्भ राशि में होती है तो राहु का मुख आग्नेय कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मीन,मेष एवं वृष राशि में होती है तो राहु का मुख ईशान कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मिथुन,कर्क एवं सिंह राशि में होती है तो राहु का मुख वायव्य कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति कन्या,तुला एवं वृश्चिक राशि में होती है तो राहु का मुख नैऋत्य कोण में रहता है। जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। यथा- वृष,मिथुन एवं कर्क राशि में सूर्य के रहने पर नाग का मुख आग्नेय कोण में, पीठ ईशान कोण में,और पुच्छ वायव्य में रहती है अतः खनन हेतु उपयुक्त स्थान नैऋत्य कोण है । जब नाग का मुख ईशान कोण में होगा, तो पुच्छ नैऋत्य कोण में रहती है अतः खनन की दिशा आग्नेय कोण होगी। जब नाग का मुख वायव्य कोण में होगा, तो पुच्छ आग्नेय कोण में रहती है अतः खनन की दिशा ईशान कोण होगी। जब नाग का मुख नैऋत्य कोण में होगा, तो पुच्छ ईशान कोण में रहती है अतः खनन की दिशा वायव्य कोण होगी। इसको हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

देवालयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार

सूर्य का राशिचार	राहु-मुख की स्थिति	राहु-पुच्छ की स्थिति	खात की दिशा
धनु,मकर एवं कर्क	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण
सिंह,कन्या एवं तुला	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	आग्नेय कोण
वृश्चिक, धनु एवं मकर	वायव्य कोण	आग्नेय कोण	ईशान कोण
कुम्भ, मीन एवं मेष	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	वायव्य कोण

जलाशयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार –

जब सूर्य की स्थिति तुला,वृश्चिक,धनु राशि में होती है तो राहु का मुख आग्नेय कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मकर,कुम्भ,मीन राशि में होती है तो राहु का मुख ईशान कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति मेष,वृष, मिथुन राशि में होती है तो राहु का मुख वायव्य कोण में रहता है। जब सूर्य की स्थिति कर्क,सिंह,कन्या राशि में होती है तो राहु का मुख नैऋत्य कोण में रहता है। जिस विदिशा में नाग का मुख रहता है,उससे पहले की दो विदिशाओं में क्रमशः नाग की पृष्ठ और पुच्छ रहती है। यथा- तुला,वृश्चिक,धनु राशि में सूर्य के रहने पर नाग का मुख आग्नेय कोण में, पीठ ईशान कोण में,और पुच्छ वायव्य में रहती है अतः खनन हेतु उपयुक्त स्थान नैऋत्य कोण है । जब नाग का मुख ईशान कोण में होगा, तो पुच्छ नैऋत्य कोण में रहती है अतः खनन की दिशा आग्नेय कोण होगी। जब नाग का मुख वायव्य कोण में होगा, तो पुच्छ आग्नेय कोण में रहती है अतः खनन की दिशा ईशान कोण होगी। जब नाग का मुख नैऋत्य कोण में होगा, तो पुच्छ ईशान कोण में रहती है अतः खनन की दिशा वायव्य कोण होगी। इसको हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

जलाशयनिर्माण में राहु का मुख-पुच्छ विचार

सूर्य का राशिचार	राहु-मुख की स्थिति	राहु-पुच्छ की स्थिति	खात की दिशा
तुला,वृश्चिक एवं धनु	आग्नेय कोण	वायव्य कोण	नैऋत्य कोण
मकर,कुम्भ एवं मीन	ईशान कोण	नैऋत्य कोण	आग्नेय कोण
मेष,वृष एवं मिथुन	वायव्य कोण	आग्नेय कोण	ईशान कोण
कर्क,सिंह एवं कन्या	नैऋत्य कोण	ईशान कोण	वायव्य कोण

इस प्रकार से राहु के मुख-पुच्छ विचार के माध्यम से शिलान्यास हेतु खात की दिशा का विचार किया जाता है। गृहनिर्माण,देवालयनिर्माण और जलाशयनिर्माण में विविध मासों में राहु के मुख-पुच्छ का सम्यक् विचार कर पूर्वोक्त खात की दिशा में ही खनन करना चाहिए । खात के बाद आग्नेय कोण में ही शिलान्यास करना चाहिए। यथोक्तम्-

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमम्

शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः।।

4.3.1. वास्तुपदविन्यासविमर्श

खात और शिलान्यास के बाद भूखण्ड पर वास्तुपदविन्यास किया जाता है। वास्तुपदविन्यास किसी भी निर्माण का एक मौलिक अंग है। पदविन्यास से अभिप्रायः वास्तुभूमि पर देव-विन्यास से है। आधुनिक काल में वास्तुपदविन्यास को रेखाचित्र अथवा साईटप्लेनिंग के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः भारतीय स्थापत्य का आधार यज्ञ-वेदी है। भूमि-चयन, भूमि-शोधन और इष्टिका चयन यज्ञ-वेदी निर्माण के पूर्व कृत्य है। कालान्तर में इन्हीं कृत्यों का अनुसरण भवन निर्माण में भी होने लगा। भारतीय वास्तुकला प्रारम्भ से ही धर्मनिष्ठ रही है। जिसके दर्शन हमे वैदिक युग के वास्तोष्पति और पौराणिक युग के वास्तुपुरुष के रुप में होते है। वेदों में वास्तोष्पति की स्तुति वास्तु के रक्षक और पालक देव के रुप में की गई है। जो महत्व वैदिक युग में वास्तोष्पति को दिया गया है, वहीं महत्व पौराणिक साहित्य में वास्तुपुरुष को प्राप्त है। गृह,मन्दिर,दुर्ग,ग्राम,नगर,ताडाग आदि के निर्माण में सर्वप्रथम वास्तुपुरुष का ही पूजन किया जाता है। इसलिए किसी भी भवन के निर्माण से पूर्व वास्तुमण्डल का निर्माण किया जाता है और उस मण्डल में वास्तुपुरुष की प्रतिष्ठा की जाती है। वास्तुपुरुष में विन्यस्त 45 देवों का उस वास्तुपदमण्डल में आवाहन तथा पूजन किया जाता है। तदनन्तर वास्तुपदमण्डल के अनुसार ही भूमि पर वास्तुपदविन्यास किया जाता है।

वस्तुतः वास्तुपदविन्यास के माध्यम से भूखण्ड का निर्माण हेतु विभाजन किया जाता है। पदविन्यास के लिए सर्वप्रथम दिक् साधन किया जाता है, तदनन्तर सम्पूर्ण भूखण्ड पर वास्तुपुरुष का विन्यास किया जाता है। ईशान कोण में वास्तुपुरुष का सिर, नैऋत्य कोण में पैर, आग्नेय और वायव्य में हाथ प्रतिष्ठित होते है। वास्तुपुरुष की प्रतिष्ठा पृथ्वी पर अधोमुखी की जाती है। अग्निदेव की प्रतिष्ठा शिर पर, वरुण की मुख पर, अदिति की नेत्रों पर, जयन्तादि की कानों पर, सूर्य तथा चन्द्र की दक्षिण और वाम भुजा पर , आपवत्स- महेन्द्र और चरक इन तीन देवों की प्रतिष्ठा वक्षस्थल पर, अर्यमा और पृथ्वीधर की प्रतिष्ठा दक्षिण और वामस्तन पर की जाती है। यक्ष्मा- रोग- नाग- मुख्य और भल्लाट इन पाँच देवों की स्थापना वाम भुजा पर, सत्य- भृश- नभ- वायु और पूषादि पाँच देवों की स्थापना दक्षिण भुजा पर की जाती है। वास्तुपुरुष के हाथो पर सावित्र- रुद्र और शक्तिधरादि प्रतिष्ठित होते है। हृदय पर ब्रह्मा , दक्षिण कुक्षि पर शोष और असुर की प्रतिष्ठा होती है। वास्तुपुरुष के उदर पर मित्र और विवस्वान् , लिंग पर जय और इन्द्र , दक्षिण उरु पर यम, वाम उरु पर वरुण की स्थापना की जाती है। मृग- गन्धर्व और भृश की प्रतिष्ठा दक्षिण जंघा पर ,दौवारिक सुग्रीव

और पुष्प देवों की प्रतिष्ठा वाम जंघा पर तथा पितृगणों की प्रतिष्ठा चरणों पर की जाती है ।इस देव विन्यास को हम इस चित्र के माध्यम से समझ सकते है -
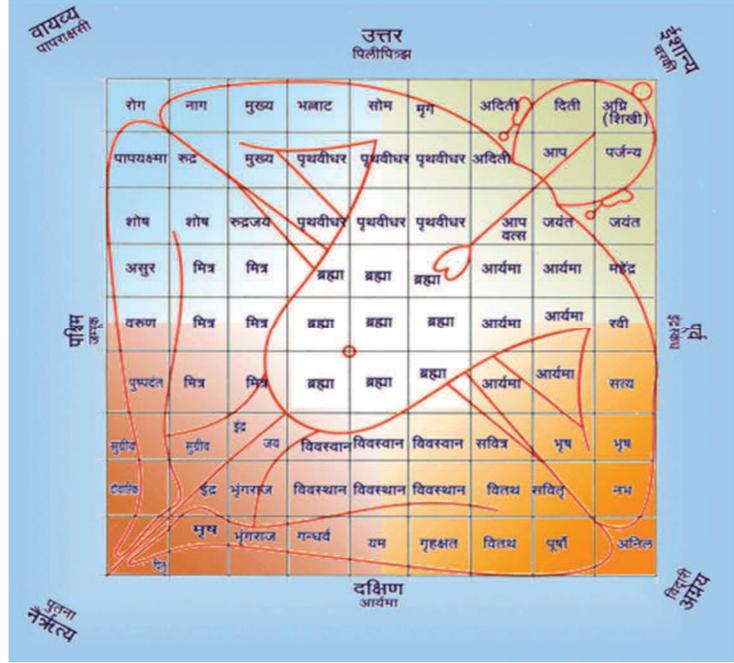
वास्तशास्त्रीयग्रन्थों में कुल 32 वास्तुपदविन्यासमण्डलों का वर्णन किया गया है, परन्तु इनमें से चतुष्षष्टिपदवास्तु,एकाशीतिपदवास्तु और शतपदवास्तु ये तीन ही मुख्य रुप से प्रयोग किये जाते है।

चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल

इसमें 64 पद होते है , इसके निर्माण के लिए के लिए पूर्वापरा और दक्षिणोत्तरा 9-9 रेखाएँ खींची जाती है। दो तिरछी रेखाएँ कोणों से खींची जाती है ,मध्य के चार पदों में ब्रह्मा की प्रतिष्ठा की जाती है । ब्रह्मा से चारों कोणों में आप- आपवत्स- सविता- सवित्र- इन्द्र -जयन्त- राजयक्ष्मा और रुद्र आदि आठ देवता, कोणों में शिखि- अन्तरिक्ष- अनिल- मृग- पिता- पापयक्ष्मा- रोग- दित्यादि आठ देवताओं की प्रतिष्ठा की जाती है। ये सभी देव आधे -आधे पद के स्वामी होते है। इन देवताओं के दोनों तरफ पर्जन्य- भृश- पूषा- भृंगराज- दौवारिक- शोष- नाग -अदिति आदि देव प्रतिष्ठित होते है, जो डेढ पदों का भोग करते है। जयन्त- इन्द्र- सूर्य- सत्य –वितथ- बृहत्क्षत- यम- गन्धर्व- सुग्रीव- कुसुमदन्त- वरुण- असुर- मुख्य- भल्लाट-सोम- भुजग- अर्यमा- विवस्वान्- मित्र और पृथ्वीधर दो-दो पदों के स्वामी होते है, चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

एकाशीतिपदवास्तुमण्डल
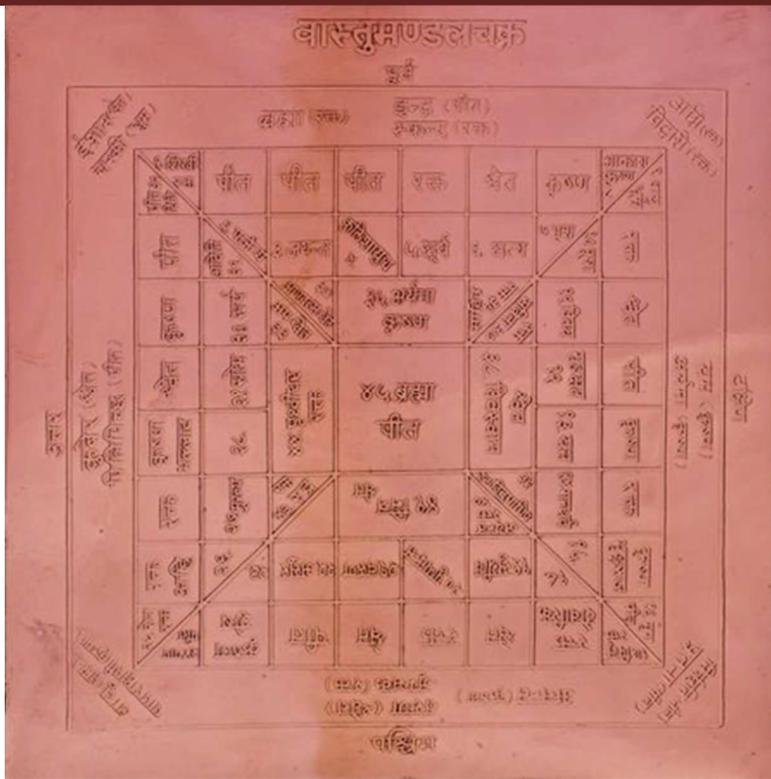
इस वास्तुपदमण्डल में कुल इक्यासी पद होते है, इसके निर्माण के लिए दस-दस रेखाएँ खींची जाती है। इस मण्डल के मध्य के तेरह पदों में तेरह देवता और बाहर के पदों में 32 देवों की प्रतिष्ठा की जाती है ।इस प्रकार से इस वास्तु क्षेत्र में कुल 45 देवों की प्रतिष्ठा की जाती है। चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है-

East

North — South

1 ईश	2 पर्जन्य	3 जयंत	4 इंद्र	5 सूर्य	6 सत्य	7 भृश	8 आकाश	9 वायु
32 दिति	33 आप	33 आप	37 मरीची	37 मरीची	37 मरीची	34 सावित्री	34 सावित्री	10 पूषा
31 अदिति	44 आपयत्स	44 आपयत्स	37 मरीची	37 मरीची	37 मरीची	38 सविता	38 सविता	11 वितय
30 सर्प	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवस्वान	39 विवस्यान	12 वृहत्क्षत
29 सोम	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवस्वान	39 विवस्यान	13 यम
28 भल्लाट	43 पृथ्वीधर	43 पृथ्वीधर	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	45 ब्रह्मा	39 विवस्वान	39 विवस्यान	14 गंधर्व
27 मुख्य	42 रुद्र	42 रुद्र	41 मित्र	41 मित्र	41 मित्र	40 विष्णु	40 विष्णु	15 भृंगराज
26 अठि	36 शेष	36 शेष	41 मित्र	41 मित्र	41 मित्र	35 इंद्रजय	35 इंद्रजय	16 मृग
25 रोग	24 पापयक्ष्मा	23 शेष	22 असुर	21 वरुण	20 पुष्पदंत	19 सुग्रीव	18 दौवारिक	17 पितृ

West

इसके अतिरिक्त शतपदवास्तुमण्डल और सहस्त्रपदवास्तुमण्डलादि अनेक वास्तुपदविन्यासमण्डलों की चर्चा अनेक वास्तुशास्त्रीयग्रन्थों में प्राप्त होती है। इनमें से समसंख्यक पदमण्डलों का विन्यास चतुष्षष्टिवास्तुपदमण्डल के समान तथा विषम संख्यकपदमण्डलों का निर्माण एकाशीतिवास्तुपदमण्डल के समान ही किया जाता है। इन वास्तुपदमण्डलों का प्रयोग भवन की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। शतपदवास्तुमण्डल और सहस्त्रपदवास्तुमण्डल को पुरनिवेश में प्रशस्त माना जाता है। चतुष्षष्टिवास्तुपदमण्डल, एकाशीतिवास्तुपदमण्डल और षोडशपदवास्तु

का उपयोग भवननिवेश तथा पुरनिवेश दोनो ही में किया जाता है। प्रासाद निर्माण में चतुष्षष्टिवास्तुपदमण्डल को प्रशस्त कहा है ।कुछ आचार्यों के मत में प्रासाद निर्माण में शतपदवास्तुपदमण्डल भी प्रशस्त है।

अभ्यास प्रश्न :-

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिये –

1) राहुमुख-पुच्छ का विचार खात-निर्णय में होता है।
2) नाग की पूंछ पर प्रहार से लाभ होता है।
3) शिलान्यास सदैव वायव्य कोण में होता है।
4) वास्तुमण्डल में देवताओं की संख्या 45 होती है।
5) चतुष्षष्टिपदवास्तुमण्डल में कुल 81 पद होते है।
6) एकाशीतिपदवास्तुमण्डल में ब्रह्मा के 4 पद होते है।

4.4 पिण्डसाधन

भूखण्ड पर राहु मुख-पुच्छ विचार ,शिलान्यास और वास्तुपदविन्यास संकल्पना के बाद भूखण्ड पर पिण्ड-साधन किया जाता है। जिस भूमि पर भवन निर्माण करना अभीष्ट हो , उस भूमि के समस्त माप अर्थात् लम्बाई * चौडाई द्वारा प्राप्त क्षेत्रफल को पिण्ड कहा जाता है। अन्तर केवल इतना है कि जिस भूखण्ड को गृहस्वामी क्रय करता है, उस भूमि की सम्पूर्ण माप को क्षेत्रफल तथा भवननिर्माण के निमित्त नींव खोदकर जो दीवाल बनाई जाती है , उस भाग को त्यागकर चार दीवारी के अन्दर जो भूखण्ड प्राप्त होता है। जिसमें आन्तरिक सभी उपयोगी प्रकोष्ठों का निर्माण करवाया जाता है , नींव रहित भूभाग का वह माप ही पिण्ड कहलाता है। शब्दकल्पद्रुम में पिण्ड शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि **"पिण्डते संहतो भवतीति पिण्डम्"** अर्थात् पिण्ड में समाहित माप की अभिव्यक्ति ही पिण्ड कहलाती है।

पिडि संहतौ धातु से अच् प्रत्यय करके पिण्ड पद का निर्माण होता है ।**पिण्डयते राशिक्रियतेति(कर्मणि घञ्) पिण्डम्** अर्थात् लम्बाई – चौडाई के माप को एक राशि में समाहित

करना ही पिण्ड है ।पिण्ड साधन का वास्तुशास्त्र में अत्यधिक महत्व है। पिण्ड साधन की चर्चा लगभग सभी वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होती है। पिण्ड साधन का सूत्र इस प्रकार है –

रूपाष्टकैर्विनिहतो भवनस्य बन्धः कर्तुः स्वमृक्षमिह युग्मशरैकनिघ्नम् ।

एकीकृतं रसनिशाकरयुग्ममुक्तं शेषं ततो भवति पिण्डपदं गृहस्य ।।

अर्थात् [(आय * 81) + (नक्षत्र * 152) / 216] = पिण्ड

पूर्वोक्त सूत्र द्वारा आनीत अंकात्मक राशि को ही पिण्ड कहा जाता है। जिस प्रकार से वर-वधू का मिलान किया जाता है , ठीक उसी प्रकार से गृह तथा गृहस्वामी के नक्षत्र द्वारा भी गुण-मिलान किया जाता है। विवाह मेलापक में समान नाडी अशुभ मानी जाती है , परन्तु वास्तु मेलापक में एक समान नाडी ही शुभ मानी जाती है । गृह मेलापक में गृह एवं गृहस्वामी का एक ही नक्षत्र होना अशुभ माना जाता है । अतः एक ही नक्षत्र दोनो का ग्रहण नही करना चाहिए, नाडी एक होना प्रशस्त है।

पिण्ड साधन करने में इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय अत्यावश्यक है, अतः इनके विषय में जान लेना भी आवश्यक है। गृहस्वामी के नाम के प्रथमाक्षर से उसका नक्षत्र ज्ञात हो जाता है और गृह का नक्षत्र अपनी इच्छा से कोई भी चुन लिया जाता है । मेलापक विधि द्वारा गृहस्वामी के अनुकूल नक्षत्र का ही ग्रहण करना चाहिए । वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में कुल 9 नक्षत्रों में से ही गृह का नक्षत्र गृहस्वामी के अनुकूल चुनने की आज्ञा है । वे 9 नक्षत्र इस प्रकार है –

आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्य आश्लेषा च मघा भगः।

जलपाऽजपादहिर्बुध्न्य भानीष्टानि गृहे नव ।।

गृहपिण्ड बनाने में आर्द्रा, पुनर्वसु. पुष्य,आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, शतभिषा , पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ये 9 नक्षत्र ही शुभ होते है। अतः गृहस्वामी के अनुकूल इनमें से किसी एक नक्षत्र को चुन कर पिण्ड साधन किया जाता है। पिण्ड साधन में प्रयुक्त होने वाला दूसरा उपकरण आय है । आय आठ प्रकार की होती है जो इस प्रकार है-

ध्वजो धूम्रो हरिश्वौ गोःखररेभो वायसोऽष्टमः।

पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः।।

पूर्वादि दिशाओं के क्रम से आठों दिशाओं में ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, गौ, गधा, गज, तथा कौआ आय मानी गई है। जिसका फल इस प्रकार है –

ध्वजे बहुधनं प्रोक्तं धूम्रे चैव भ्रमं भवेत् ।
सिंहे च विरला लक्ष्मीःश्वाने च कलहं भवेत् ।।
धनं धान्यं वृषे चैव खरेषु स्त्रीविनाशनम् ।
गजाख्ये पुत्रलाभश्च ध्वांक्षे सर्वस्य शून्यता ।।

इस प्रकार से ध्वज,सिंह,वृष और गज आय शुभ है । किसी भी भवन की आय के ज्ञान हेतु भवन की लम्बाई को चौडाई से गुणा कर आठ से भाग देने पर जो शेष बचे, वह आय कहलाती है। एक अन्य विधि वर्ग-काकिणी है , जिसके माध्यम से भी भूमि सम्बन्धी शुभाशुभ विचार किया जाता है , पूर्वादिक्रम से आठ वर्गों की आठ दिशाएँ तथा क्रम से ही गरुड,मार्जार,सिंह,श्वान,सर्प,मूषक,गज तथा शशक इनके स्वामी होते है । अपने वर्ग से पंचम वर्ग वाले स्वामी आपस में शत्रु होते है।अतः शत्रु दिशा के वर्ग में गृह नहीं बनाना चाहिए । इस वर्ग विचार को हम इस चक्र के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते है-

वर्ग-चक्र

वर्ग संख्या	अवर्ग	कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग	यवर्ग	शवर्ग
वर्ग स्वामी	गरुड	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	गज	शशक
वर्ग दिशा	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

इन आठ वर्गों के वर्गाक्षर इस प्रकार है-

अवर्ग- अ,इ,उ,ऋ,ए,ऐ,ओ,औ

कवर्ग- क,ख,ग,घ,ङ

चवर्ग- च,छ,ज,झ,ञ

टवर्ग- ट,ठ,ड,ढ,ण

तवर्ग- त,थ,द,ध,न

पवर्ग- प,फ,ब,भ,म

यवर्ग- य,र,ल,व

शवर्ग- श,ष,स,ह

पिण्ड साधन की विधि अनेक प्रकार से वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में कही गई है, परन्तु विविध सूत्रों से भी पिण्ड का एक ही माप प्राप्त होता है। पिण्डसाधन का मुहूर्तचिन्तामणि में वर्णित सूत्र इस प्रकार है-

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्योरुपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।

युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः।।

इस सूत्र का समीकरण इस प्रकार है-

[(इष्टनक्षत्र – 1)*152) + (इष्ट आय – 1) * 81) + 17] / 216 = गृहपिण्ड

अर्थात् इष्ट नक्षत्र और इष्ट आय में से 1–1 घटाकर एक स्थान पर 152 तथा दूसरे स्थान पर 81 से गुणा कर , दोनो स्थानों पर प्राप्त संख्या के योग में 17 जोडने पर लब्धि में 216 का भाग देने पर गृहपिण्ड की प्राप्ति होती है, इसको आप एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते है –

उदाहरण – उदाहरण के लिए सत्यपाल नामक व्यक्ति का नक्षत्र शतभिषा का अभीष्ट नक्षत्र मघा के साथ विवाह मेलापक विधि से मेलापक उत्तम मिलता है। अश्विन्यादि क्रम से गृह का अभीष्ट नक्षत्र मघा लेने पर संख्या 10 आती है , इसी प्रकार आय में इष्ट विषम आय सिंह ग्रहण की तो पिण्ड साधन इस प्रकार होगा –

इष्ट नक्षत्र संख्या 10 में से 1 घटाने पर शेष 9 को 152 से गुणा करने पर 1368 गुणनफल प्राप्त हुआ। इष्ट आय संख्या 3 में से 1 घटाने पर शेष को 81 से गुणा करने पर 162 गुणनफल प्राप्त हुआ । दोनों गुणनफलों को जोडने पर 1530 संख्या प्राप्त हुई। इसमे सूत्रानुसार 17 जोडकर 216 से भाग देने पर प्राप्त संख्या गृहपिण्ड होगी।

1530 + 17 = 1547/ 216, शेष = पिण्ड , यहाँ 35 शेष (पिण्ड) प्राप्त हुआ।

यहाँ 35 गृह का पिण्ड बना इसकी माप हस्त में आती है , आज की परिस्थिति और व्यवहार में मीटर व फीट का ग्रहण किया जा सकता है । उदाहरण में 35 संख्या से अधिक यदि गृह निर्माण भूखण्ड की माप हो , तो 35 (प्राप्त पिण्ड) में 216 जोडते जाने पर अभीष्ट भूखण्ड के अन्तर्गत सुविधानुसार पिण्ड संख्या प्राप्त हो जायेगी ।

इस प्रकार से आप समझ गये होगे कि पिण्डसाधन वास्तुशास्त्र का कितना महत्वपूर्ण अंग है ।अतः प्रत्येक निर्माण में पिण्ड साधन करने के पश्चात ही भवन के निर्माण कार्य को प्रारम्भ करना चाहिये।

4.4.1 द्वारविन्यास

जैसा कि आप जानते है कि गृह में मुख्य द्वार का अत्यधिक महत्व है । गृह के मुख्य द्वार को गृह का मुख कहा जाता है । जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में मुख का महत्व है , उसी प्रकार से भवन में मुख का महत्व है । द्वार-निर्धारण के सम्बन्ध में वास्तुग्रन्थों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

सर्वप्रथम वत्समुख विचार के माध्यम से भवन के मुख्य द्वार का निर्धारण होता है । जब सूर्य कन्या-तुला-वृश्चिक राशि में हो तो वत्स मुख पूर्व में , धनु - मकर - कुम्भ राशि में होने पर दक्षिण में, मीन-मेष-वृष राशि में होने पर पश्चिम में और मिथुन-कर्क -सिंह राशि में होने पर वत्स मुख उत्तरदिशा में होता है। वत्समुख के सम्मुख और पृष्ठ दिशा में गृहद्वार कष्टदायक है। भवन के स्वामी की राशि के अनुसार भी मुख्य द्वार का निर्धारण होता है । यथा वृश्चिक -मीन-सिंह राशि वालों के लिए पूर्व, कन्या-कर्क - मकर राशि वालों के लिए दक्षिण,धनु-तुला-मिथुन राशि के लिए पश्चिम और कुम्भ-मेष-वृष राशि के लिए उत्तर दिशा शुभ है।

आय के अनुसार भी मुख्यद्वार का निर्धारण किया जाता है ।यथा – ध्वजाय वाले गृह का मुख्य द्वार चारों दिशाओं में , सिंहाय वाले भवन का मुख्य द्वार पश्चिमातिरिक्त अन्य दिशाओं में, गजाय वाले घर के लिए पूर्व यां दक्षिण और वृषाय वाले भवन में पूर्व दिशा में घर का मुख्य द्वार शुभ होता है ।राशियों के वर्ण के अनुसार भी गृह के मुख्यद्वार का विचार होता है ।जैसे – ब्राह्मण राशियों के लिए पश्चिम,क्षत्रिय राशियों के लिए उत्तर,वैश्य राशियों के लिए पूर्व,और शूद्र राशियों के लिए दक्षिण दिशा के घर शुभ होते है।

इसी प्रकार भवनारम्भ मास के अनुसार भी मुख्यद्वार का निर्धारण होता है। कर्क- सिंह-मकर राशि के सूर्य में भवनारम्भ करने पर भवन का मुख्य द्वार पूर्व यां पश्चिम में बनाया जाता है। मेष-वृष-वृश्चिक के सूर्य में भवनारम्भ करने पर मुख्य द्वार दक्षिण यां उत्तर में बनाया जाता है। राहु के मुख-पुच्छ विचार के अनुसार – जिस दिशा में राहु का मुख हो, उसी दिशा में भवन का मुख्यद्वार रखने से सर्वविध कल्याण होता है।

इसके अतिरिक्त सप्तश्लाका चक्र के अनुसार भी मुख्यद्वार का निर्धारण किया जाता है। इस चक्र में पूर्वापर और याम्योत्तर सात रेखाएँ खींची जाती है। कृत्तिका से आश्लेषा तक सात नक्षत्र पूर्व दिशा में , मघा से विशाखा तक सात नक्षत्र दक्षिण में , अनुराधा से श्रवण तक सात नक्षत्र पश्चिम में, धनिष्ठा से भरणी तक सात नक्षत्र उत्तर दिशा में लिखे जाते है । ग्राम-नगरादि में अपने-अपने नक्षत्र दिशाओं में निवास बनाना श्रेयस्कर है। सम्मुख और पृष्ठस्थ नक्षत्रों में द्वार बनाना अशुभ तथा वाम और दक्षिण नक्षत्रों में शुभ होता है।

सप्तश्लाका चक्र

पूर्व

पश्चिम

यथा –

कृत्तिकायास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदिताः क्रमात् ।

यद्दिश्यं यस्य नक्षत्रं तत्र तस्य गृहं शुभम् ।।

इसी प्रकार से द्वार-चक्र के माध्यम से भी द्वार निर्धारण किया जाता है। द्वारचक्र में सूर्य नक्षत्र से आरम्भ कर चार नक्षत्र द्वार के ऊपर , दो नक्षत्र द्वार की शाखाओं में, तीन नक्षत्र द्वार के अधो भाग में

और चार नक्षत्र मध्य भाग में विन्यस्त किए जाते है। ऊर्ध्वनक्षत्रों में द्वार निर्माण से राज्य , कोण नक्षत्रों में उद्वासन, शाखा नक्षत्रों में लक्ष्मी प्राप्ति, ध्वज नक्षत्रों में मृत्यु और मध्य नक्षत्रों में द्वार निर्माण से सौख्य होता है।

द्वार-निर्धारण की एक अन्य विधि "पदवास्तु" के अनुसार द्वार का निर्धारण करना है। पद वास्तु के अनुसार पूर्व दिशा में सूर्य-ईश और पर्जन्य के पदों पर, दक्षिण दिशा में यम-अग्नि और पौष्ण के पदों पर, पश्चिम दिशा में शेष-असुर और पाप के पदों पर, उत्तर दिशा में रोग-नाग और शैल के पदों पर तथा क्रूर देवताओं के पदों पर द्वार निर्माण से अशुभ फल की प्राप्ति होती है। एकाशीति पद वास्तु में पूर्व दिशा के नव पदों में से तीसरे तथा चौथे पद पर, दक्षिण में तीसरे तथा चौथे पद पर, पश्चिम दिशा में चौथे और पाँचवे पद पर तथा उत्तर दिशा में तीसरे , चौथे और पाँचवे पद पर द्वारकरण धनदायक तथा सन्ततिवृद्धिकारक होता है। यथोक्तम्-

द्वारं नवमभागेषु कार्यं वामात्प्रदक्षिणम्।
तृतीय-तुर्ययोः प्राच्यां याम्ये तूर्येऽथ पश्चिमे ॥
त्रि-तुर्य-पंचमे चैव पंच-वेद-त्रिषूत्तरे।
तत्र द्वारं च कर्तव्यं धनधान्यादिवृद्धये ॥

उपरोक्त विधि के अनुसार द्वार निर्धारण के पश्चात् द्वार निर्माण के सिद्धान्तों के अनुसार ही द्वार का निर्माण करना चाहिये। समायत द्वार शुभ तथा विषमायत द्वार अशुभ होता है। द्वार के विस्तार से द्विगुणित द्वार की ऊँचाई रखनी चाहिये। यदि द्वार मान से कम हो तो दुख और मान से अधिक हो तो राजभय होता है। द्वार के कुछ गुण और दोष भी शास्त्र में वर्णित है। सुस्थिर-सुन्दर-कान्त और ऋजु द्वार एक उत्तम द्वार कहलाता है। अत्युच्च द्वार राजभयदायक, अतिनीच द्वार चौर्यदायक और कुब्जद्वार कुलपीडाकारक होता है। इसी प्रकार भवन का द्वार स्वयं उद्घाटित होना उन्मादकर, स्वयं बन्द होना कुल का विनाश, और मानाधिक्य नृप का भय करता है। यथोक्तम्-

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ॥
द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय संकटं यच्च।
आव्याप्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥
पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभवाय।

वाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ।।

द्वार के अन्य दोषो में एक दोष द्वार-वेध दोष भी है । यदि द्वार का वेध वृक्ष-कूप-देव मंदिर यां अन्य किसी पदार्थ के साथ हो तो कष्टप्रद होता है। इस वेध दोष के निवारण के लिए द्वार तथा वेधक पदार्थ का परस्पर अन्तर द्वार की ऊँचाई से अधिक होना चाहिए । इस प्रकार से द्वार की दिशा और स्थान निर्धारित होने के पश्चात् दोष रहित द्वार का निर्माण शुभ मुहूर्त में करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

१. नींव रहित भूभाग का माप ------- कहलाता है ।

२. वास्तु मेलापक में एक समान नाडी------- मानी जाती है ।

३. गृह एवं गृहस्वामी का एक ही नक्षत्र होना------ माना जाता है।

४. ध्वज, सिंह, वृष और गज आय----- है ।

५. भवन का द्वार स्वयं उद्घाटित होना------है ।

६. विषमायत द्वार------ होता है ।

4.5. सारांश

इस प्रकार से इस पाठ में आप ने गृहनिर्माण में विचारणीय अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्वों " खात, वास्तुपदविन्यास, पिण्डनिर्माण एवं द्वार-विन्यास'' को जाना । किसी भी निर्माण से पूर्व भूखण्ड पर किया जाने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृत्य खात ही है, इसलिए इस पाठ में खात विधि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। खात के अनन्तर शिलान्यास किया जाता है। शिलान्यास के बाद वास्तुपदविन्यास की चर्चा की गई है, जिसमें चतुषष्टिवास्तुपदविन्यास और एकाशीतिवास्तुपदविन्यास के माध्यम से भूखण्ड पर रेखाचित्र का निर्माण किया जाता है, जिसको साईट प्लेनिंग के नाम से भी जाना जाता है। तदनन्तर पिण्ड साधन कर भूखण्ड पर निर्मित किए जाने वाले भवन के क्षेत्रफल का निर्धारण किया जाता है । इस पाठ के अन्त में द्वार-विन्यास की चर्चा की गई है । जिसमें द्वार निर्माण की दिशा और स्थान- निर्धारण के सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है । इन सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए दोष-रहित द्वार सर्वविध सौख्य का प्रदायक होता है। इस इकाई में वर्णित खात, वास्तुपदविन्यास, पिण्डनिर्माण एवं द्वार-विन्यास के सिद्धान्त वास्तु के अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इन सिद्धान्तों का अनुपालन करने से गृहजनों को सुख और समृद्धि की प्राप्ति

होती है।

4. 6 पारिभाषिक शब्दावली

1. खात – शिलान्यास हेतु किया गया गड्ढा ।

2. विदिशा – ईशानादि कोण ।

3. राहु-मुख-पुच्छ विचार – खनन हेतु दिशा के निर्धारण की विधि।

4. शिलान्यास – नींव स्थापना

5. गृहपिण्ड - नींव रहित भूभाग का माप ही पिण्ड कहलाता है ।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-१ की उत्तरमाला

१) सत्य
२) असत्य
३) असत्य
४) सत्य
५) असत्य
६) असत्य

अभ्यास प्रश्न- २ की उत्तरमाला

१) पिण्ड
२) शुभ
३) अशुभ
४) शुभ
५) अशुभ
६) अशुभ

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) मुहूर्त चिन्तामणि, सं०केदारदत्त जोशी, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।

ख) बृहद्वास्तुमाला, सं० रामनिहोर द्विवेदी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – २००१

ग) वास्तुरत्नाकरः, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

घ) राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् , सं० श्रीकृष्ण जुगनू , परिमल पब्लिकेशन,दिल्ली,२००५

ङ) समराङ्गणसूत्रधारः, सं० एवं अनु० पुष्पेन्द्र कुमार , न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन , दिल्ली - २००४

च) विश्वकर्मप्रकाशः, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

4.9 सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली-२००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(१) खात निर्णय का विस्तार से वर्णन करें।

(२) वास्तुपदविन्यास पर एक निबन्ध लिखें।

(३) पिण्डसाधन सोदाहरण प्रस्तुत करें।

(४) " द्वार-विन्यास " इस विषय पर निबन्ध लिखें।

इकाई - 5 गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्येश्य
5.3 गृहनिर्माण में मुहूर्त विचार का महत्त्व
    5.3.1 गृहारम्भ मुहूर्त निर्णय
5.4 गृहप्रवेश में मुहूर्त विचार का उपादेयता
    5.4.1 गृहप्रवेश मुहूर्त निर्णय
5.5 सारांश
5.6 पारिभाषिक शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक पाठ्य सामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते है कि विश्व की आद्यतम ज्ञानराशि वेद है और वेदों में प्रतिपादित ज्ञान के सम्यक् अवगमन हेतु छः वेदाङ्गों की रचना हुई । इन छः वेदाङ्गों में से ही एक ज्योतिष वेदाङ्ग है जिसका विकसित स्वरुप हमें सिद्धान्त,संहिता और होरा आदि तीन स्कन्धों में विभक्त दिखाई देता है। इस ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व का मुख्य हेतु कालज्ञान ही है।यथोक्तम् –

"वेदास्तावत् यज्ञकर्मप्रवृत्ता:

यज्ञा: प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण ।

शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्

वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तं तस्मात् ।।"

अर्थात् वेद मानव को यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त करते है और यज्ञों का सम्पादन काल पर ही आश्रित है अर्थात् यज्ञों को सम्पादित करने का एक निश्चित समय है जिसको हम मुहूर्त भी कह सकते है और उस काल का ज्ञान ज्योतिष वेदाङ्ग से होता है अतः कालज्ञान अर्थात् मुहूर्त ही इस शास्त्र के वेदाङ्गत्व का मुख्य हेतु है।

यही मुहूर्त विचार ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्धान्तर्गत विविध मुहूर्त ग्रन्थों में अपने विकसित स्वरुप में दृष्टिगोचर होता है । इस विकास परम्परा में मुहूर्तशास्त्र पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की गई जिसमें से " मुहूर्त चिन्तामणि " प्रसिद्द ग्रन्थ है । वस्तुतः किसी भी कार्य की सफलता और असफलता में मुहूर्त ही हेतु है ।इसका प्रमाण किसी एक निश्चित समय पर किये जाने वाले कार्यों का सफल होना तथा एक निश्चित समय पर किये जाने वाले कार्यों का असफल होना है। इस कालविशेष का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन कर हमारे ऋषियों ने मुहूर्त ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा उन ग्रन्थों में विविध कार्यों को सम्पादन करने के लिए विविध मुहूर्तों का निर्देश किया । मुहूर्तग्रन्थों में प्रतिपादित मुहूर्तों का ज्ञान कर मानव अपने जीवन में किए जाने वाले समस्त कार्यों को सम्पादित करने के लिए शुभ समय को जानने में सक्षम हो जाता है । मानव के जीवन में गृह एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और मुहूर्तशास्त्र के ग्रन्थों में उस गृह के निर्माण तथा निर्माण के अनन्तर गृह में प्रवेश के लिए शुभ समय का चिन्तन किया गया है । प्रस्तुत इकाई में हम गृहनिर्माण तथा गृहप्रवेश में मुहूर्त विचार के महत्त्व पर चर्चा करेंगे तथा मुहूर्तशास्त्र के विविध ग्रन्थों के अनुसार गृहनिर्माण और

गृहप्रवेश में शुभ समय पर भी विचार करेगें । कौन से मुहूर्त गृहनिर्माण में ग्राह्य है और कौन से मुहूर्त गृह निर्माण में त्याज्य है ? कौन से मुहूर्त गृहप्रवेश में ग्राह्य है और कौन से मुहूर्त गृहप्रवेश में त्याज्य है ? इन सब विषयों की चर्चा हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे ।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. मुहूर्तशास्त्र के महत्त्व को जान सकेंगे ।
2. गृहनिर्माण में मुहूर्त विचार के प्रति जागरुक हो सकेंगे ।
3. गृहनिर्माण के विविध मुहूर्तों को जान सकेंगे ।
4. गृहप्रवेश में मुहूर्त विचार के प्रति जागरुक हो सकेंगे ।
5. गृहप्रवेश के विविध मुहूर्तों को जान सकेंगे

5.3 गृहनि़र्माण में मुहूर्त विचार का महत्त्व

" स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः ।।"

भाव यह है कि गृह, स्त्री-पुत्रादि भोगों और सुख को प्रदान करने वाला ,धर्म ,अर्थ और काम को देने वाला ,प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला आश्रय स्थल , ग्रीष्मादि ऋतुओं से रक्षा करने वाला है । केवल गृहनिर्माण से ही वापी,देवमन्दिरादि के निर्माण का समस्त पुण्यफल प्राप्त हो जाता है ।अतः विश्वकर्मादि देवों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण के लिए आदेश किया है ।

इस प्रकार से इन सभी शुभ पदार्थों का प्रदायक तथा रक्षक होने के कारण गृह का निर्माण करना अत्यन्त शुभ माना जाता है । अतः ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने गृहनिर्माण रूपी इस शुभ कार्य में मुहूर्त चिन्तन को अत्यन्त आवश्यक माना है । अगर गृह निर्माण का आरम्भ शुभ समय में किया जाए तो उस गृह का निर्माण कार्य अत्यन्त द्रुत गति से तथा विना किसी बाधा के सम्पन्न हो जाता है और अगर गृह निर्माण का आरम्भ अशुभ समय में किया जाए तो गृह निर्माण का कार्य अत्यन्त मन्द गति से चलता है और गृहपति को निर्माण कार्य में अनेकों बाधाओं का सामना करना पडता है और कई बार तो निर्माण कार्य भी अपूर्ण ही रह जाता है अतः गृह के निर्माण कार्य का आरम्भ सदैव शुभ मुहूर्त में ही करना चाहिए । शुभ मुहूर्त में किए गये गृह निर्माण से उसमें वास करने वाले गृहजनों का जीवन सुखमय और समृद्ध रहता है जबकि अशुभ मुहूर्त में किए गये गृहनिर्माण से उसमें वास करने वाले गृहजनों को दुःखों का सामना करना पडता है । उनका जीवन अशान्त रहता है। वे रोग और क्लेश से

पीडित रहते है अतः मनुष्य को गृहारम्भ से पूर्व निश्चित ही मुहूर्त का विचार करना चाहिए और शुभ समय का चयन कर नूतन गृह का निर्माण कार्य आरम्भ करना चाहिए क्योंकि संसार के जितने भी प्राणी है ,उनमे से चयन का अधिकार केवल मनुष्य के पास ही है । मनुष्य क्या खाएगा ? यह वह चयन कर सकता है । मनुष्य क्या पीएगा ? यह भी वह चुनता है । मनुष्य क्या पढेगा ? मनुष्य कब सोएगा ? मनुष्य कब जागेगा इत्यादि समस्त कार्यो मे वह स्वतन्त्र है और वह चयन कर अपने कार्यो का सम्पादन करता है जबकि चयन की यह स्वतन्त्रता सृष्टि के अन्य जीवों ,पशु-पक्षियों के पास नही है अगर अपने इस विशेष गुण का प्रयोग मनुष्य गृहनिर्माण के लिए शुभ समय के चयन में नही करता है तो वह मनुष्य ही इसके लिए दोषी होगा अतः मनुष्य को चाहिए कि वह ऋषियों द्वारा प्रणीत मुहूर्त ग्रन्थों के आधार पर शुभ समय का चयन कर गृह-निर्माण कार्य का शुभारंभ करें ताकि गृह-निर्माण कार्य निर्विघ्न रुप से सम्पन्न हो सके तथा गृहजनो को उस गृह में सुख ,शान्ति और समृद्धि की प्राप्ति हो सके ।

5.3.1. गृह-निर्माण का मुहूर्त निर्णय

“गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना

यतस्तस्माद् गृहारम्भ प्रवेशसमयो ब्रुवे”

अर्थात् गृहस्थ की सभी क्रियाएँ गृह के विना पूर्ण नही हो सकती अतः गृहारम्भ और गृहप्रवेश के समय की चर्चा की जाती है । सर्वप्रथम हम गृहारम्भ के मुहूर्तो की चर्चा करेंगे । गृह के लिए सर्वाधिक आवश्यक भूमि है जो गृह का आधार होती है अतः सर्वप्रथम गृह-निर्माण हेतु भूमि का क्रय किस मुहूर्त में करना है, इसका विचार किया गया है । भूमि-क्रय के मुहूर्त को आप तालिका के माध्यम से समझ सकते है । भूमि-क्रेता के चन्द्रबल का विचार करके ही भूमि का क्रय करना चाहिए ।

भूमि - क्रय मुहूर्त :-

शुभ तिथियाँ	शुभ वार	शुभ नक्षत्र
कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तथा शुक्ल पक्ष की 5,6,10,11,15	गुरुवार शुक्रवार	मृगशिरा,पुनर्वसु ,आश्लेषा,मघा,विशाखा, अनुराधा , पू.फा. ,पू.षा. , पू.भा. , मघा , रेवती

इष्टिकादि चयन मुहूर्तः-

भूमि – क्रय के अनन्तर भवन निर्माण हेतु निर्माण सामग्री यथा- इष्टिका , सीमेन्ट आदि का चयन किया जाता है अतः इष्टिका , सीमेन्ट आदि के चयन का मुहूर्त इस प्रकार है –

शुभ तिथियाँ	शुभ वार	शुभ नक्षत्र	शुभ लग्न
कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तथा शुक्ल पक्ष की 2,3,5,6,7,8, 10, 11, 12,13,15	रविवार गुरुवार शुक्रवार	अश्विनी ,रोहिणी,मृगशिरा,पुनर्वसु, उ.फा. , उ.षा. , उ.भा. , हस्त , अनुराधा, ज्येष्ठा , चित्रा , रेवती	वृष सिंह वृश्चिक कुम्भ

काष्ठादि विदारण मुहूर्तः-

भवन निर्माण हेतु एकत्रित निर्माण- सामग्री यथा-पत्थर ,काष्ठादि का विदारण कर ही वह सामग्री उपयोग के योग्य बनती है काष्ठादि का विदारण कार्य भी शुभ मुहूर्त में करने का विधान है जो इस प्रकार है –

शुभ तिथियाँ	शुभ वार	शुभ नक्षत्र	शुभ लग्न
4,8,9,11,12,13,14	रविवार मंगलवार शनिवार	अश्विनी, कृत्तिका, आश्लेषा, अनुराधा, स्वाति, विशाखा, मूल, पू.फा. ,पू.षा. , पू.भा. , उ.फा. , उ.षा. , उ.भा., हस्त, ज्येष्ठा, चित्रा , रेवती	मेष सिंह वृश्चिक मकर कुम्भ

गृहनिर्माण में प्रशस्त मास :-

गृहनिर्माण का आरम्भ कब किया जाए ? यह विचार करते हुए कहा गया है कि गृहनिर्माण का आरम्भ तथा समाप्ति विष्णु की जाग्रतावस्था में ही करना चाहिए और शयनकाल में नही । तद्यथा-

“ आरम्भं च समाप्तिं च प्रासादपुरसद्मनाम ।
उत्थिते केशवे कुर्यान्न प्रसुप्ते कदाचन”

गृहारम्भ के मासों की चर्चा करते हुए विविध मासों में गृहारम्भ का शुभाशुभ फल बताया गया है जो कि इस प्रकार है –

“ चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवे अर्थप्रदम्
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे
शून्यं भाद्रपदेत्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियं फाल्गुने

पूर्वोक्त श्लोक में कथित फल को आप इस तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है –

मास	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ	श्रावण	भाद्रपद
शुभाशुभ फल	शोक	धन लाभ	मृत्युदायक	पशुहानि	पशुवृद्धि	शून्यता

मास	आश्विन	कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माघ	फाल्गुन
शुभाशुभ फल	कलह	सेवकनाश	धान्यलाभ	धान्यलाभ	अग्निभय	धनलाभ

इस प्रकार से इन मासों में गृहारम्भ करने से गृहपति को उपरोक्त शुभाशुभ फल प्राप्त होता है। यह शुभाशुभ फल चान्द्रमासों के आधार पर बताया गया है। सूर्यमासों के आधार पर गृहारम्भ का शुभाशुभ फल भी मुहूर्त ग्रन्थों में वर्णित है ।निम्न तालिका के माध्यम से सूर्य के विविध राशियों में संचार के फलस्वरूप गृहारम्भ का शुभाशुभ फल का वर्णन किया गया है, जो कि इस प्रकार है –

सूर्य – राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
शुभाशुभ फल	शुभ	धनवृद्धि	मृत्यु	शुभ	भृत्यवृद्धि	रोग

सूर्य – राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
शुभाशुभ फल	सुख	धनवृद्धि	महत् हानि	धनागम	रत्नलाभ	भयप्रद

इस प्रकार से सूर्यमासों और चान्द्रमासों दोनो को विचार कर शुभ मासों में ही गृहारम्भ करना चाहिए।

गृहारम्भ में पक्ष-शुद्धि :-

गृहारम्भ सदैव शुक्लपक्ष में ही करना चाहिए । शुक्लपक्ष में गृहारम्भ करने से गृहपति को सुख तथा कृष्णपक्ष में गृहारम्भ करने से गृहपति को सदा चोरभय बना रहता है अर्थात् चोरी होने की सम्भावना बनी रहती है।

" शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयं "

गृहारम्भ में तिथि- शुद्धि :-

" दारिद्रयं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ।
अष्टम्युच्चाटनी ज्ञेया नवमी शस्त्रघातिनी ।
अमायां राजभीतिस्याच्चतुर्दश्यां स्त्रियः क्षयः ।।

अर्थात् प्रतिपदा तिथि में गृहारम्भ से दरिद्रता , चतुर्थी में धनक्षय , अष्टमी में उच्चाटन , नवमी तिथि में शस्त्रादि से घात , अमावस्या में राजभय तथा चतुर्दशी

तिथि में गेहारम्भ करने से स्त्री की हानि होती है , अतः द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी ,षष्ठी ,सप्तमी,दशमी,एकादशी,द्वादशी , त्रयोदशी , पूर्णिमा तिथि गृहारम्भ में ग्राह्या है ।

गृहारम्भ में वार – शुद्धि :-

रविवार और मंगलवार को छोडकर शेष वारों में अर्थात् सोम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनिवार गृहारम्भ में प्रशस्त माने जाते है ।

गृहारम्भ में नक्षत्र – शुद्धि :-

गृहारम्भ के लिए नक्षत्र-शुद्धि के सम्बन्ध में आचार्यों में मतान्तर है ।आचार्यों ने अपने अपने मत से नक्षत्रों का समावेश गृहारम्भ\में किया है । पराशर के मत में – अश्विनी,रोहिणी,मृगशिरा,आर्द्रा,पुनर्वसु,पुष्य,उत्तरात्रय,हस्त,चित्रा,स्वाती,अनुराधा ,मूल, श्रवण , धनिष्ठा,शतभिषा और रेवती नक्षत्र गृहारम्भ में प्रशस्त है ।

गृहारम्भ में योग - शुद्धि :-

गृहारम्भ के लिए प्रीति,आयुष्मान् ,सौभाग्य , शोभन, सुकर्मा, धृति, वृद्धि, ध्रुव , हर्षण, सिद्धि, वरीयान, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ , शुक्ल, ब्रह्मा व ऐन्द्र प्रशस्त योग है ।

गृहारम्भ में लग्न - शुद्धि :-

गृहारम्भ में स्थिर और द्विस्वभाव लग्न ही ग्राह्या है । चर लग्न गृहारम्भ में पूर्णतया त्याज्य है ,अतः वृष,सिंह,वृश्चिक , कुम्भ, में गृहारम्भ प्रशस्त और उत्तम माना जाता है जबकि मिथुन,कन्या,धनु,मीन लग्नो में गृहारम्भ मध्यम माना जाता है। मेष, कर्क, तुला और मकर लग्न गृहारम्भ में त्याज्य है । स्थिर और द्विस्वभाव लग्नो का नवांश भी शुभ माना जाता है । केन्द्र भावों (1,4,7,10) में और त्रिकोण भावों (5,9) में शुभ ग्रहों का होना तथा त्रिषडाय (3,6,11) में पापग्रहों का होना,अष्टम भाव में किसी भी ग्रह का न होना गृहारम्भ के लिए अत्यन्त शुभ माना जाता है ।

सप्त सकार योग :-

सप्त सकार योग गृहारम्भ में अत्यन्त शुभ माना जाता है । शनिवार, स्वाती नक्षत्र , सिंह लग्न, शुक्लपक्ष, सप्तमी तिथि, श्रावण मास और शुभ योग में गृहारम्भ करने से पुत्र, धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है। इस मुहूर्त में निर्मित घर सदैव हाथी, घोडो आदि वाहनों से युक्त रहता है यथोक्तम् –

" शनौ स्वाती सिंहलग्ने शुकलपक्षश्च सप्तमी ।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्तकीर्तिताः ।।
सप्तानां योगतो वास्तुः पुत्रवित्तप्रदः सदा ।
गजश्च धनधान्यादि पुरो तिष्ठन्ति सर्वदा" ।

भूमि-शयन विचार :-

सूर्य के नक्षत्र से 5,7,9 ,12,19, और 26 वे चन्द्रनक्षत्रों में पृथ्वी शयन करती है , अतः गृह, तालाब आदि के लिए खनन निषिद्ध है । यथोक्तम् –

" प्रद्योतनात्पंचनगाङ्कसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु ।

शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापी खननं न शस्तम्" ।।

इन सब मुहूर्तो के अतिरिक्त गृहारम्भ में कुछ चक्रों की शुद्धि का विचार भी किया जाता है । हम यहाँ उन्हीं चक्रों की शुद्धि की चर्चा क्रम से करेंगे ।

सप्तश्लाका चक्र :-

सप्तश्लाका चक्र में सात ति **पूर्व** र सात खडी रेखायें परस्पर काटती हुई खींचकर चारों दिशाओं को स्थापित कर ईशानकोण में ते नक्षत्रों को स्थापित करने से सप्तश्लाका चक्र बनता है इसमें कृत्तिका से आश्लेषा कृ रो पुन. पु आश्ले. . दिशा , अनुराधा से श्रवण तक पश्चिम दिशा तथा धनिष्ठा से भरणी पर्यन्त उत्तर दिशा है इसमें गृह का नक्षत्र और चन्द्र नक्षत्र यदि आगे-पीछे पडे अर्थात् एक पूर्वस्थ और दूसरा पश्चिमस्थ नक्षत्रों में हो तो गृहारम्भ अशुभ और यदि दक्षिण यां उत्तर में पडे तो शुभ होता है तद्यथा –

पश्चिम
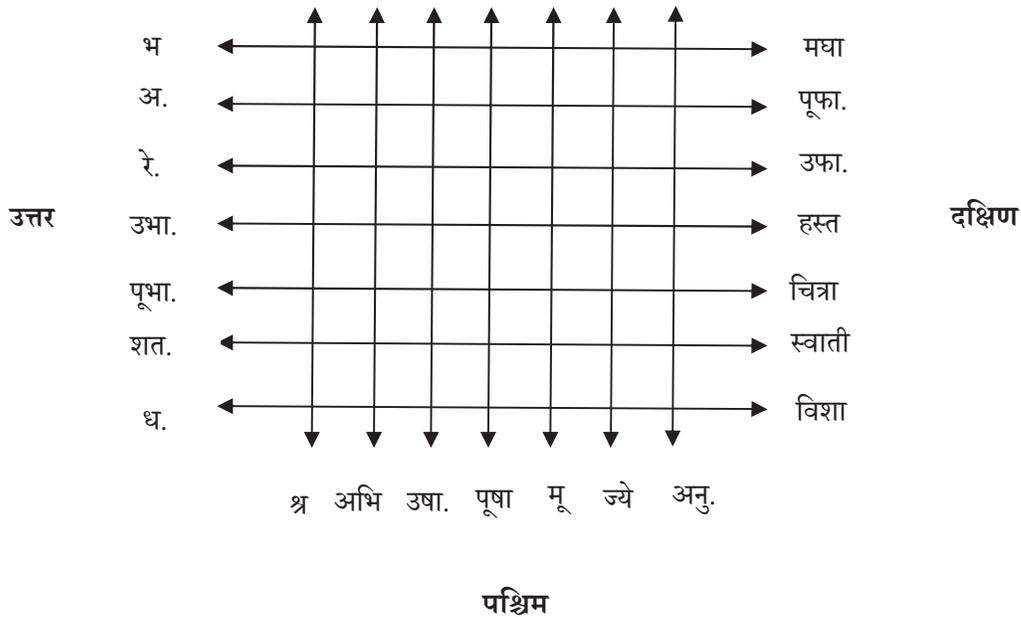
वृषवास्तु चक्र :-

गृहारम्भ के समय वृषवास्तुचक्र का भी विचार किया जाता है सूर्य जिस नक्षत्र पर स्थित हो, वहां से 3 नक्षत्र शिर पर, उससे आगे के 4 नक्षत्र अगले पैरों पर होते है । ये सातों नक्षत्र क्रमशः अग्निदाह और शून्यफलकर्ता है अतः इनमें गृहारम्भ नही करना चाहिए इसके आगे के क्रमशः 4 नक्षत्र पिछले पैर पर, 3 नक्षत्र पीठ पर और 4 नक्षत्र दाहिनी कोख में रहते है इनमें गृहारम्भ करने से क्रमशः स्थिरता , धनप्राप्ति तथा लाभ होता है। इन ग्यारह नक्षत्रों में ही गृहारम्भ करना चाहिए। इसके बाद शेष 3 नक्षत्र पूंछ पर , 4 नक्षत्र बायीं कोख में तथा 3 नक्षत्र मुख में होते है ।इनका फल क्रमशः स्वामीनाश ,दरिद्रता तथा पीडादायक रहता है अतः इन नक्षत्रों में भी गृहारम्भ नहीं करना चाहिए।

स्थान	**शिर**	**अग्रपाद**	**पृष्ठपाद**	**पृष्ठ**	**दक्षिणकुक्षि**	**वामकुक्षि**	**पुच्छ**	**मुख**
नक्षत्र संख्या	1-3	4-7	8-11	12-14	15-18	19-22	23-25	26-28
फल	अग्निदाह	उद्वेग	स्थिरता	धनागम	लाभ	दरिद्रता	स्वामीनाश	पीडा

कूर्मचक्र :-

तिथि को 5 से गुणा कर कृत्तिकादि से वर्तमान चन्द्रनक्षत्र तक गणना कर प्राप्त संख्या को जोडने पर और उसमे 12 जोड कर 9 से भाग देने पर जो शेष बचे उसका फल इस प्रकार जानना चाहिए सूत्रं यथा –

(तिथि x 5 + (कृत्तिकादि से वर्तमान चन्द्रनक्षत्र पर्यन्त संख्या) + 12)/ 9

स्थान	जल	स्थल	आकाश
शेष	1,4,7	२,5,8	०,3,6
फल	लाभ	हानि	मृत्यु

इस प्रकार से पूर्ववर्णित सिद्धान्तों का सम्यक् विचार कर गृहारम्भ हेतु शुभ मुहूर्त का चयन करना चाहिए ताकि उस आरम्भ किए गए गृह की निर्विघ्न संपन्नता हो सके।

अभ्यास प्रश्न :-

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य कथन का चयन कीजिये –

7) वेद मानव को यज्ञ – कर्म में प्रवृत्त करते है
8) मुहूर्त चिन्तामणि सिद्धान्त स्कन्ध का प्रसिद्ध ग्रन्थ है

9) पूर्णिमा तिथि गृहारम्भ में त्याज्य है
10) मंगलवार गृहारम्भ में त्याज्य है
11) चैत्रमास में गृहारम्भ शुभ माना जाता है
12) शुक्लपक्ष गृहारम्भ में ग्राह्या है
13) सप्त सकार योग में गृहारम्भ अत्यन्त शुभ है

5.4. गृहप्रवेश में शुभ मुहूर्त की उपादेयता

शुभ मुहूर्त में किये गये गृहारम्भ के सम्पन्न हो जाने पर नवनिर्मित गृह में प्रवेश का चिन्तन किया गया है वास्तव में गृहप्रवेश तीन नामों से प्रसिद्द है यथोक्तम् –

" अपुर्वसंज्ञं प्रथमप्रवेशं यात्रावसाने च सपूर्वसंज्ञम्।
द्वन्द्वोह्वयश्चाग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः।।"

अर्थात् प्रवेश तीन प्रकार का होता है –

1) अपूर्व
2) सपूर्व
3) द्वन्द्व

अपूर्व :-

जिस नव-निर्मित भवन में आवास हेतु अथवा व्यवसाय के उद्देश्य से प्रथम बार प्रवेश किया जाता है, उसे अपूर्व गृहप्रवेश के नाम से जाना जाता है। यह अपूर्व गृहप्रवेश नूतन गृह में ही किया जाता है।

सपूर्व :-

लम्बी यात्रा के बाद अर्थात् बहुत दिन के पश्चात जब घर में प्रवेश किया जाता है, तो उसको सपूर्व गृहप्रवेश कहते है ।

द्वन्द्व :-

वास्तुदोष में सुधार के लिए पुरातन गृह का जीर्णोद्धार करने के बाद अर्थात् पुनः निर्माण करने के पश्चात् किया जाने वाला प्रवेश द्वन्द्व कहलाता है।

इनमें से अपूर्व गृहप्रवेश दिन व रात्रि में कभी भी शुभ लग्नो में किया जा सकता है यथोक्तम् –

" दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः"

स्थिर लग्न (वृष,सिंह,वृश्चिक एवं कुम्भ) तथा द्विस्वभाव लग्न (मिथुन,कन्या,धनु व मीन) लग्नो में भी गृहप्रवेश किया जा सकता है। वस्तुतः गृहारम्भ का जब शिलान्यास किया जाता है तो

वह उसी प्रकार से है जिस प्रकार से उत्तम फल की प्राप्ति हेतु बीज-वपन किया जाता है और जब वही बीज फल का रुप धारण कर लेता है तो उसका भोग कर हम आनन्दित होते है ठीक उसी प्रकार से गृहारम्भ मुहूर्त के अनन्तर जब गृह निर्मित हो जाता है तो ज्योतिषशास्त्र में उस निर्मित गृह में प्रवेश के लिए भी शुभ मुहूर्त का विचार किया जाता है। शुभ मुहूर्त में किया गया गृहप्रवेश गृहपति और गृहजनों को सुख तथा समृद्धि को देने वाला होता है जबकि अशुभ समय में किया गया गृहप्रवेश रोग,क्लेश और दु:खो को प्रदान करता है क्योंकि काल ही किसी कार्य के शुभाशुभत्व का निर्णायक होता है यथोक्तम् –

" कालाधीनं जगत्सर्वम्"

इसलिए ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने मुहूर्त-ग्रन्थों में पग-पग पर शुभ काल के ग्रहण और अशुभ काल के त्याग की चर्चा की है। प्रत्येक कार्य में शुभ मुहूर्त के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है अतः गृहनिर्माण भी शुभ मुहूर्त में ही करने का निर्देश है तथा नव-निर्मित गृह में प्रथम प्रवेश भी शुभ मुहूर्त में ही करने का निर्देश है ऐसे शुभ काल में सौम्यग्रहों की केन्द्रों और त्रिकोणो में स्थिति तथा क्रूर ग्रहों की त्रिषडायभावों में स्थिति के समय किया गया गृहप्रवेश गृहजनों को धन-धान्य , सुख और समृद्धि प्रदान करता है अब हम गृहप्रवेश के लिए ग्राह्या और त्याज्य काल की चर्चा करेंगे।

5.4.1. गृहप्रवेश का मुहूर्त - निर्णय

गृहारम्भ के मुहूर्त निर्णय में जिन-जिन ज्योतिषीय तत्वों का विचार करने को कहा गया है उन-उन तत्त्वों का विचार गृहप्रवेश में भी करने का विधान है । गृहप्रवेश में हम उन्हीं ज्योतिषीय तत्त्वों की चर्चा करेंगे।

1) **अयन:-**

नूतन गृहप्रवेश उत्तरायण में ही प्रशस्त माना जाता है ,दक्षिणायन में नूतन गृहप्रवेश वर्जित है यद्यपि पुरातन गृहप्रवेश दक्षिणायन में भी किया जा सकता है।

2) **मास :-**

उत्तरायण के चार मास माघ , फाल्गुन , वैशाख और ज्येष्ठ मास गृहप्रवेश के लिए प्रशस्त माने जाते है तथा मार्गशीर्ष और कार्तिक मास में गृहप्रवेश मध्यम होता है यथोक्तम् –

"माघ-फाल्गुन-वैशाख-जयेष्ठमासेषु शोभनः।

प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः।।"

अर्थात् माघ मास में गृहप्रवेश करने पर अर्थलाभ होता है, फाल्गुन मास में पुत्र एवं धनलाभ होता है ,चैत्रमास में धनहानि एवं वैशाख मास में धन-धान्य का लाभ एवं पशु-पुत्रादि का लाभ होता है।

3) पक्ष-विचारः-

गृहप्रवेश शुक्लपक्ष में ही करना चाहिए कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि तक ही गृहप्रवेश शुभ माना जाता है। यथोक्तम् –

"शुक्ले च पक्षे सुतरां प्रवृद्ध्यै कृष्णे च तावद्दशमीं च यावत्।।"

4) तिथि-विचार :-

1,2,3,4,5,6,7,8,10,11,12,13 एवं 15 तिथियां गृहप्रवेश में प्रशस्त है। इस प्रकार रिक्ता तिथियों को छोडकर शेष तिथियों में गृहप्रवेश प्रशस्त है। अमावस्या में भी गृहप्रवेश वर्जित है।

5) वार-विचारः-

चन्द्र,बुध,गुरु,शुक्र एवं शनिवार में गृहप्रवेश शुभ माना जाता है। रविवार और मंगलवार गृहप्रवेश में वर्जित है।

6) नक्षत्र – विचारः-

उत्तराषाढा ,उत्तराभाद्रपद ,उत्तराफाल्गुनी , चित्रा, रोहिणी, मृगशिरा , अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती और शतभिषा नक्षत्रों में तीनों प्रकार के प्रवेश करने से आयुष्य,धन, आरोग्यता,सुपुत्र-पौत्रादि और सुकीर्ति की प्राप्ति होती है। तद्यथा –

"चित्रोत्तराधातृशशाङ्कमित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम्।

आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसुपुत्रपौत्रसुकीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः।।"

अर्थात् जिन नक्षत्रों पर पापग्रह हो और जो नक्षत्र पापग्रहों से विद्ध हो, वे सब नक्षत्र गृहप्रवेश में वर्जित है। पूर्वोक्त ग्राह्या नक्षत्र भी यदि पापग्रह से युत हो यां विद्ध हो, तो ये सब नक्षत्र भी अपूर्व , सपूर्व और द्वन्द्व नामक त्रिविध प्रवेश में त्याज्य माने जाते है। यथोक्तम् –

" क्रुरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्जनीयं त्रिविधप्रवेशे"

7) लग्न – विचार:-

गृहप्रवेश में सामान्यतया स्थिर लग्न को प्रशस्त तथा द्विस्वभाव लग्न को मध्यम माना जाता है, परन्तु चर लग्न को त्याज्य माना जाता है , कुछ आचार्यों के मत में कुम्भ लग्न भी त्याज्य माना जाता है यथोक्तम् –

" मेषे यानं घटे व्याधिर्धान्यहानिर्मृगे गृहम्।

विशतां कर्कटे नाशः शेषलग्नेषु शोभनम्।।"

अर्थात् मेष लग्न में गृहप्रवेश से यात्रा,कुम्भ लग्न में गृहप्रवेश से व्याधि, मकर लग्न में धान्यहानि और कर्क लग्न में प्रवेश से विनाश होता है परन्तु यदि इन निन्दित लग्नो में भी शुभ नवमांश में गृहप्रवेश किया जाए यां मेष,कर्क,तुला,मकर आदि चर राशियां गृहपति की राशि से उपचय (3,6,10,11) स्थानों में हो,तो इस स्थिति में भी गृहप्रवेश शुभ होता है यथोक्तम् –

"निन्दिताऽपिशुभांशसमेता

-स्तौलिमेषमकराः सकुलीराः।

कर्तुरौपचयगाश्च विलग्ने

राश्यः शुभफलायश्च भवन्ति।।

लग्न से केन्द्रभावों और त्रिकोण भावों में शुभग्रहों के होने पर तथा तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव में पापग्रहों के स्थित होने पर, चतुर्थ और अष्टम भाव के ग्रह रहित होने पर गृहप्रवेश शुभ माना जाता है । जन्मलग्न के द्वादश भावों में से जिस भाव की राशि गृहप्रवेश के समय लग्न में हो तो उसके शुभाशुभ फल इस प्रकार होगा-

भाव	जन्म लग्न	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठ	सप्तम	अष्टम	नवम	दशम	एकादश	द्वादश
फल	नैरोग्य	धनहानि	धन लाभ	बन्धु नाश	संतान हानि	शत्रु से पराजय	पत्नी नाश	गृहेश मृत्यु	पिटक रोग	कार्य सिद्धि	धन लाभ	अशुभ फल

कालशुद्धिः-

नूतन गृहप्रवेश सदैव गुरु तथा शुक्र के उदय में ही करना चाहिए । गुरु और शुक्र के अस्तकाल में किया गया गृहप्रवेश शुभ नही माना जाता ।

वामरवि विचारः-

गृहप्रवेश के समय वाम रवि विचार के लिए प्रवेश लग्न, गृह के मुख की दिशा तथा राशियों का ज्ञान होना चाहिए । पूर्वाभिमुख गृह में प्रवेश करने पर गृह प्रवेश लग्न से अष्टम स्थान की राशि से पांच स्थान तक सूर्य के रहने पर वामरवि होता है । दक्षिण मुख गृह में लग्न से पंचम स्थान की राशि से पांच स्थान तक सूर्य के रहने पर वामरवि होता है । पश्चिमाभिमुख गृह में द्वितीय स्थान की राशि से पांच स्थान तक सूर्य के रहने पर वामरवि होता है । उत्तराभिमुख गृह में एकादश स्थान की राशि से पांच स्थान तक सूर्य के रहने पर वामरवि होता है । यथोक्तम्-

"वामोरविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽर्के पंचमे प्राग्वदनादिमन्दिरे"

इस वामरवि विचार को आप चक्र के माध्यम से भी समझ सकते हैं-

वामरवि चक्र

भवन मुख दिशा	पूर्वाभिमुख भवन	दक्षिणाभिमुख भवन	पश्चिमाभिमुख भवन	उत्तराभिमुख भवन
गृहप्रवेश लग्न	8	5	2	11
से सूर्य इन	9	6	3	12
स्थानों पर हो	10	7	4	1
तो वाम-रवि	11	8	5	2
होता है ।	12	9	6	3

पूर्वोक्त गृहमुख विचार के अनुसार पूर्णा(5,10,15)तिथियों में पूर्वाभिमुख गृह में , भद्रा(2 ,7,12)तिथियों में पश्चिमाभिमुख गृह में और जया तिथियों(3,8,13)में उत्तराभिमुख गृह में प्रवेश शुभ माना जाता है। रिक्ता(4, 9 ,14)तिथियां गृहप्रवेश में वर्जित है। यथोक्तम् –

" पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे शुभौ नन्दादिके याम्यजलोत्तरानने"

गृहप्रवेश में कुम्भ चक्र विचारः-

त्रिविध गृहप्रवेश में कलश चक्र यां कुम्भ चक्र का विचार किया जाता है । कुम्भचक्र निर्माण में सूर्य नक्षत्र से गृहप्रवेश के दिन चन्द्र नक्षत्र तक गणना की जाती है। सूर्य नक्षत्र को कुम्भ के मुख में, अग्रिम 4-4 नक्षत्र चारों दिशाओं में और कुम्भ के गर्भ में, अग्रिम 3-3 नक्षत्र गुदा और कण्ठ में स्थापित किए जाते है। सूर्य के नक्षत्र में गृहप्रवेश करने से अग्निदाह, पूर्वदिशा के 4 नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से उद्वास(विदेश गमन), दक्षिण के 4 नक्षत्रों में लाभ, पश्चिम के 4 नक्षत्रों में लक्ष्मी-प्राप्ति, उत्तर के 4 नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से कलह, गर्भ के 4 नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से विनाश, गुदा के 3 नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से स्थिरता और कण्ठ के 3 नक्षत्रों में गृहप्रवेश करने से सुस्थिरता की प्राप्ति होती है। यथोक्तम्-

"वक्त्रे भूरविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः

प्राच्यामुद्वसनं कृतायमगताः लाभःकृताःपश्चिमे ।

श्रीर्वेदाःकलिरुतरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे

रामाः स्थैर्यमतःस्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ।।"

इस कुम्भचक्रशुद्धि को हम एक तालिका के माध्यम से भी समझ सकते है।

कुम्भ-चक्र

स्थान	मुख में	पूर्व दिशा में	दक्षिण दिशा में	पश्चिम दिशा में	उत्तर दिशा में	गर्भ में	गुदा में	कण्ठ में
सूर्य नक्षत्र से गणना क्रम	1	4	4	4	4	4	3	3
गृहप्रवेश	अग्निदाह	उद्वसन	लाभ	लक्ष्मी-प्राप्ति	कलह	विनाश	स्थिरता	सुस्थिरता

जीर्ण- गृहप्रवेश विचारः-

अग्नि , जल अथवा वायु के प्रकोप के कारण नष्ट-भ्रष्ट गृह का यदि उसी स्थान पर पुनः निर्माण किया गया हो तो श्रावण, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष मासों में स्वाती,

धनिष्ठा व शतभिषा नक्षत्रों में भी प्रवेश शुभ होता है। इसमें ग्रहों के उदयास्त का विचार भी नही किया जाता।

गृहप्रवेश में निषिद्धः-

" अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम्।

गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत्।।

र्थात् बिना दरवाजे लगे हुए, बिना छत वाले, बिना बलिदान दिये तथा बिना ब्राह्मण भोजन कराये गये गृह में प्रवेश नही करना चाहिये, ऐसा घर विपत्तियों को प्रदान करने वाला होता है।

मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त - चक्र

अयन	उत्तरायण
मास	वैशाख,ज्येष्ठ, फाल्गुन, माघ – **श्रेष्ठ** तथा कार्तिक व मार्गशीर्ष – **मध्यम**
पक्ष	सम्पूर्ण शुक्लपक्ष व कृष्ण पक्ष दशमी तक
तिथि	1,2,3,5,6,7,10,11,13,15
वार	चन्द्रवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, व शनिवार
नक्षत्र	उफा., उभा.,उषा., रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, रेवती व अनुराधा
लग्न	वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ – **श्रेष्ठ** तथा मिथुन, कन्या, धनु. मीन- **मध्यम**(जन्मलग्न व जन्मराशि से उपचय- 3,6,10,11 स्थानों में स्थित राशि का लग्न)
लग्न- शुद्धि	लग्न से 1,2,3,5,7,9,10 एवं 11 भावों में शुभग्रह, लग्न से 3,6,11 भावों में पापग्रह तथा लग्न से 4,8 भाव ग्रहरहित
कालशुद्धि	गुरु व शुक्र के अस्त का विचार

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

७. गृहप्रवेश के -------- भेद है।

८. नूतनगृहप्रवेश -------- अयन में प्रशस्त है।

९. नूतनगृहप्रवेश -------- पक्ष में प्रशस्त है।

१०. नूतनगृहप्रवेश में अमावस्या तिथि-------- है।

११. नूतनगृहप्रवेश में चर लग्न -------- है।

१२. गृहप्रवेश में -------- चक्र का विचार किया जाता है।

5.5. सारांश

इस प्रकार से शुभ मुहूर्त में गृहारम्भ कर पूर्वोक्त शुभ मुहूर्त में ही गृहप्रवेश करना चाहिए । काल के समस्त अङ्गों जैसे अयन-शुद्धि, मास-शुद्धि, पक्ष-शुद्धि, तिथि-शुद्धि, वार-शुद्धि, नक्षत्र-शुद्धि और लग्न-शुद्धि आदि का विचार कर ही गृह-सम्बन्धित मुहूर्त का निर्णय करना चाहिए। गृहारम्भ मुहूर्त निर्णय में सप्तश्लाका चक्र, वृषवास्तु चक्र, कूर्म चक्र और भूमि-शयन का विशेष विचार किया जाता है जबकि गृहप्रवेश मुहूर्त निर्णय में कुम्भ चक्र का विशेष विचार किया जाता है। इस प्रकार से मुहूर्त निर्णय कर गृहारम्भ और गृहप्रवेश करने से गृहजनों को उस घर में सर्वविध सुख और समृद्धि की प्राप्ति होती है। ऐसे घर में सकारात्मक वातावरण रहता है और नकारात्मकता दूर रहती है। गृहजनों में पारस्परिक सौहार्द की भावना रहती है। अतः सर्वविध सुख के इच्छुक लोगों को शुभ मुहूर्त में ही गृहारम्भ कर पूर्वोक्त शुभ मुहूर्त में ही गृहप्रवेश करना चाहिए ।

5. 6. पारिभाषिक शब्दावली

1. गृह – घर

2. इष्ठिका – ईट

3. काष्ठ – लकडी

4. शिलान्यास – नींव स्थापना

5. त्रिविध प्रवेश – अपूर्व, सपूर्व और द्वन्द प्रवेश

5.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-१ की उत्तरमाला

७) सत्य
८) असत्य
९) असत्य
१०) सत्य
११)असत्य

१२)सत्य

१३)सत्य

अभ्यास प्रश्न- २ की उत्तरमाला

७) तीन

८) उत्तरायण

९) शुक्ल

१०) वर्जित

११) त्याज्य

१२) कुम्भ

5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) मुहूर्त चिन्तामणि, सं०केदारदत्त जोशी, मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली ।

ख) बृहद्वास्तुमाला, सं० रामनिहोर द्विवेदी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – २००१

ग) वास्तुरत्नाकरः, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

घ) राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् , सं० श्रीकृष्ण जुगनू , परिमल पब्लिकेशन,दिल्ली,२००५

ङ) समराङ्गणसूत्रधारः, सं० एवं अनु० पुष्पेन्द्र कुमार , न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन , दिल्ली - २००४

च) विश्वकर्मप्रकाशः, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

5.9. सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

5.10. निबन्धात्मक प्रश्न

(१) मुहूर्त क्या है ? विस्तार से वर्णन करें ।

(२) गृहारम्भ मुहूर्त निर्णय पर एक निबन्ध लिखें।

(३) गृहप्रवेश मुहूर्त निर्णय पर एक निबन्ध लिखें। ।

(४) " मुहूर्तों का महत्त्व " इस विषय पर निबन्ध लिखें ।

इकाई – 6 गृहसमीप वृक्षादि विवेचन

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 पर्यावरण प्रदूषण एक समस्या

6.3.1 पर्यावरण शुद्धिकरण में गृह की भूमिका

6.4 वृक्ष तथा उनका महत्त्व

6.4.1 गृहसमीप वृक्षादि विचार

6.5 सारांश

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.9 सहायक पाठ्य सामग्री

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

आज विश्व की प्रमुख समस्याओं में से एक "पर्यावरण प्रदूषण" भी है । सम्पूर्ण विश्व इस समस्या से जूझ रहा है और छोटे-बडे सभी राष्ट्र इस समस्या के निवारण हेतु विविध उपायों के अन्वेषण में लगे है । पर्यावरण के निर्माण और शुद्धिकरण में वृक्षों की एक प्रमुख भूमिका है। वृक्षों की वृद्धि पर्यावरण की शुद्धि तथा वृक्षों की कमी पर्यावरण प्रदूषण का एक हेतु है । मानव जब भी अपने निवास हेतु किसी भूखण्ड का चयन करता है तो वह जाने- अनजाने पर्यावरण के प्रदूषण में ही अपना योगदान देता है,क्योंकि जिस भी भूखण्ड पर वो भवन निर्माण करता है, उस भूखण्ड पर स्थित वृक्षों को वह काट कर ही निर्माण करता है तथा भवन निर्माण के बाद वह भूखण्ड, जिस पर कभी हरे-भरे वृक्ष थे, वह भूखण्ड वृक्षों से रहित हो जाता है तथा वहां एक भव्य भवन खडा हो जाता है । भारतीय वास्तुशास्त्र मे उस भव्य भवन में भी वृक्ष विन्यास का विचार किया गया है । गृह की विविध दिशाओं में विविध वृक्षों के विन्यास की कल्पना की गई है, ताकि गृहनिर्माण के बाद भी गृह हेतु चयनित भूखण्ड पर हरे-भरे वृक्ष विलास करते रहें और पर्यावरण शुद्धिकरण में अपना योगदान देते रहें । प्रस्तुत इकाई में हम गृह के समीप वृक्षादि विचार पर चर्चा करेंगे । गृह की किस दिशा में किस वृक्ष का रोपण किया जाए ? यह इस इकाई का मुख्य विषय होगा ।

6.2. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1. पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के प्रति जागरूक हो सकेंगे ।
2. पर्यावरण शुद्धिकरण मे वृक्षों की भूमिका को जान सकेंगे ।
3. भारतीय संस्कृति में वृक्षों के महत्त्व को समझ सकेंगे ।
4. पर्यावरण शुद्धिकरण में गृह की भूमिका को समझ सकेंगे ।
5. गृह समीप रोपणीय वृक्षों को जान सकेंगे ।
6. गृह समीप वर्जनीय वृक्षों को जान सकेंगे ।

6.3. पर्यावरण प्रदूषण- एक समस्या

आज विश्व जिन समस्याओं से जूझ रहा है, उनमें से सबसे प्रमुख समस्या पर्यावरण प्रदूषण की समस्या है। हमारे चारो और का आवरण ही पर्यावरण है तथा इस पर्यावरण को दूषित करना ही पर्यावरण प्रदूषण है। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल पृथ्वी ही एकमात्र ग्रह है, जहां जीवन सम्भव है परन्तु हम अपने कृत्यों से इसके पर्यावरण को इतना प्रदूषित कर रहे है कि कुछ वर्षों बाद इस ग्रह पर भी जीवन की सम्भावना समाप्त हो जायेगी। पृथ्वी पर सभी गैसे एक सन्तुलित मात्रा में उपलब्ध है, परन्तु औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के तीव्र गति से हो रहे विकास के कारण यह सन्तुलन बिगडता जा रहा है। उद्योग तो बढते जा रहे है, परन्तु वन कम होते जा रहे है जिसके कारण पृथ्वी का पर्यावरण अत्यधिक प्रदूषित हो रहा है और जैसा कि आप जानते है कि इस प्रदूषण का कारण हम सब ही है। हम अपने क्षणिक सुख के लिए पर्यावरण प्रदूषण के भयंकर दुष्परिणामों की तरफ ध्यान नहीं दे रहे है। हम वृक्षों को काटते जा रहे है ताकि औद्योगीकरण तथा शहरीकरण में तेजी आ सके। यह उसी प्रकार से है जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति शीतकाल में सर्दी से बचने के लिए अपने भवन को ही जला देता है। यथोक्तम्-

ये छिन्दन्ति वनानि क्षुद्रस्वार्थस्य पूर्तिकरणार्थम्।

ते स्वं दहन्ति भवनं निजशीतनिवारणेच्छया मनुजा:॥

पर्यावरण के प्रदूषण के कारण मनुष्य को न तो स्वच्छ वायु प्राप्त हो रही है और न ही स्वच्छ जल प्राप्त हो रहा है। महानगरीय संस्कृति में तो कूप, ट्यूबबैल या भूमि से निकला हुआ जल को बिना शुद्ध किये पीना भयकंर रोग का कारण बन जाता है अत: महानगरों में बोतल बन्द जल को पीने का ही प्रचलन हो गया है।

6.3.1. पर्यावरण शुद्धिकरण में गृह के भूमिका

गृह मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। सभ्यता के आरम्भ से ही मनुष्य अपने निवास हेतु गृह का निर्माण करता रहा है। मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी आदि सभी प्राणी अपनी सुविधा तथा सुरक्षा के लिए एक घर का निर्माण करते है और उसमें निवास करते है। यहां पशु-पक्षी आदि द्वारा निर्मित "घर" पर्यावरण को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता, वहीं मनुष्य द्वारा निर्मित घर पर्यावरण के प्रदूषण का एक कारण बन जाता है। आरम्भ में मनुष्य जंगलो में, गुफ़ाओं में रहता था और अपने निवास के लिए वह पेडों, पत्थरों पहाडों, कन्दराओं आदि का प्रयोग करता था। वह सम्पूर्ण रूप से अपने जीवन यापन के लिए प्रकृति पर ही आश्रित था। क्योंकि वृक्ष, नदियां, पर्वत उसके जीवन के आधारभूत थे, इसलिए वह प्राकृतिक तत्त्वों की स्तुति और पूजा करने लगा। वह अपने किसी भी स्वार्थ के लिए इन प्राकृतिक तत्त्वों को किसी

भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता था । क्योंकि वह वृक्षों, पर्वतों, नदियों, वन्य पशु-पक्षियों के साथ ही निवास करता था । इसलिए वह अपने साथ-साथ इन सबके योग-क्षेम की भी चिन्ता करता था । उस समय का मानव अत्यन्त संवेदनशील था । वह वृक्षच्छेदन आदि कार्य तभी करता था जब उसे अत्यावश्यकता होती थी, और वृक्षच्छेदन से पूर्व वह वृक्षों से तथा उस वृक्ष पर निवास करने वाले प्राणियों से भी प्रार्थना करता हुआ कहता था कि वह अपने लिए इस वृक्ष का छेदन कर रहा है, अत: इस पर निवास करने वाले प्राणी उसे क्षमा करें तथा अन्यत्र निवास करें । यथोक्तम—

" यानीह भूतानि वसन्ति तानि

बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम ।

अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु

क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेभ्य: ॥ "

इस प्रकार से प्रार्थना कर और उस वृक्ष का विधिवत पूजन कर वह उस वृक्ष का छेदन करता था । ऐसा संवेदनशील मानव प्रकृति का उतना ही उपयोग करता था, जितनी उसको आवश्यकता होती थी, उसकी भावना प्राकृतिक तत्त्वों के दोहन की नहीं थी, अपितु प्रकृति के प्रति कृतज्ञता के भाव को रखते हुए वह उसका उपयोग करता था । इसलिए उस काल के मानव द्वारा निर्मित किए गए गृह किसी भी प्रकार से पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करते थे । क्योंकि प्रकृति के प्रति उसकी संवेदनशीलता थी ।इसलिए वह अपने हर कृत्य से पर्यावरण के शुद्धिकरण में अपना सहयोग देता था । अगर वह घर भी बनाता था तो, उसमें भी कई प्रकार के वृक्षों का रोपण करता था । परन्तु आधुनिक मानव नें अपनी आवश्यकताओं और स्वार्थों को सर्वोपरि रखा है उसमें संग्रह की प्रवृत्ति तथा दूसरे से खुद को श्रेष्ठ बनाने की प्रवृत्ति इतनी बढ गई है कि उसकी संवेदनशीलता धीरे-धीरे अत्यन्त कम हो गई है । अब वह प्रकृति के प्रति संवेदनशील नहीं है, उसके मन में प्रकृति के लिए कृतज्ञता का भाव नहीं है । वह अपने घर को भव्य से भव्य बनाने के लिए वह प्रकृति के दोहन के लिए ही निरन्तर तत्पर है । अपितु अपने इस कृत्यों से प्रकृति को हो रही हानि के प्रति वह बिल्कुल भी जागरूक नहीं है । अपने उद्योगों के विकास हेतु पेडों,नदियों, पर्वतों को नष्ट करने में वो विचार- मात्र भी नहीं कर रहा है । आज का मानव प्रकृति की गोद में बैठना ही नहीं चाहता । वह गांव के प्राकृतिक वातावरण से शहरों की तरफ तेजी से भाग रहा है,जिसके कारण शहरों का विस्तार होता जा रहा है तथा शहरों के निकट के गांव भी शहरों में ही अन्तर्भूत होते जा रहे है । महानगरीय संस्कृति में बहुमञ्जिले भवन तीव्र गति से बढते ही जा रहे है । आज का मानव विशेष रूप से महानगरों में जिन घरों में निवास कर रहा है । वे घर प्रकृति के अनुकूल नहीं बल्कि प्रतिकूल है, उनकी पर्यावरण के संरक्षण में तो

कोई भूमिका नहीं है अपितु पर्यावरण के प्रदूषण में बहुत बडी भूमिका है क्योंकि शहरों के इन भव्य बहुमंजिले भवनों के निर्माण के लिए शहरों के निकट स्थित गांवों की पर्यावरण अनुकूल भूमि का ही प्रयोग किया जाता है । और उस भूमि पर स्थित वृक्षों की कटाई के बाद ही वह भूमि बहुमंजिले भवनों का आधार बनती है । और आज के युग में इन बहुमंजिले भवनों, अपार्टमैण्ट आदि में भूखण्ड के प्रत्येक भाग का उपयोग मानव अपनी सुविधा के लिए कर रहा है, जिस कारण उस भूखण्ड पर कच्ची भूमि बिल्कुल भी नहीं बच पाती जिस पर वृक्षारोपण हो सके । अत: आधुनिक गृह पर्यावरण संरक्षण में अपना कोई योगदान नहीं दे पाता, अपितु पर्यावरण प्रदूषण का एक कारक बन जाता है । आधुनिक युग में जब सम्पूर्ण विश्व "पर्यावरण प्रदूषण" की समस्या से त्राहि-त्राहि कर रहा है तो आवश्यकता है कि हम पर्यावरण - अनुकूल गृहों का निर्माण करें । बहुमञ्जिले भवनों तथा अपार्टमैण्टस में वृक्षारोपण को बढावा दिया जाए । बहुमञ्जिले भवनों में कच्ची भूमि का उपयोग वृक्षारोपण के साथ- साथ जल संरक्षण में भी किया जाता है। बहुमंजिले भवनों में यहां एक ही अपार्टमैण्ट में कई घरों का निर्माण किया जाता है । वहां अपार्टमैण्ट के चारों तरफ अत्यधिक कच्ची भूमि छोडनी चाहिए और उस भूमि पर वास्तुशास्त्र के विविध ग्रन्थों में कहे गए वृक्षों का रोपण करना चाहिए जिससे वह अपार्टमैण्ट पर्यावरण अनुकूल हो जायेगा। वहां रहने वाले लोगों को सकारात्मक ऊर्जा की प्राप्ति तो होगी ही, उसके साथ-साथ वह भवन पर्यावरण के संरक्षण में भी अपना योगदान दे सकेगा ।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये –

(१) पर्यावरण प्रदूषण विश्व की प्रमुख समस्या है ।

(२) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे पृथ्वी पर ही जीवन सम्भव है ।

(३) आज का मानव संवेदनशील नहीं है ।

(४) महानगरों के आधुनिक गृह प्रकृति के अनुकूल है ।

(५) पर्यावरण – अनुकूल गृह में नकारात्मक ऊर्जा रहती है ।

6.4. वृक्ष तथा उनका महत्त्व

भारतीय संस्कृति में "एक एव आत्मा सर्वभूतेषु गूढ:" की भावना हमें दृष्टिगोचर होती है । हम मानते है कि ईश्वर ही का अंश इस सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है और यह ईश्वरीय अंश वृक्षों में भी विद्यमान है । इसलिए ही भारतीय संस्कृति में

वृक्षों में भी देवत्व की कल्पना की गई है । हम वृक्षारोपण को एक धार्मिक कार्य मानते है । बृहत्संहिता में निर्दिष्ट है कि वृक्ष लगाने से पहले व्यक्ति स्नान करके, पवित्र होकर, चन्दन आदि से वृक्ष की पूजा करें, फिर उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने से पूर्व घृत, तिल, शहद, दूध, गोबर इन सबको पीसकर मूल से लेकर अग्रपर्यन्त लेपकर वृक्ष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सकते है । ऐसा करने से पत्तों से युक्त वृक्ष जल्दी ही वृद्धि को प्राप्त होता है । यथोक्तम—

शुचिर्भूत्वा तरो: पूजां कृत्वा स्नानानुलेपनै: ।
रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ॥"

इन वृक्षों के कारण ही पृथ्वी पुष्पित और पल्लवित होती है । दुर्गासप्तशती में वृक्षों का महत्त्व बताते हुए कहा गया है –

" यावद भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावद तिष्ठति मेदिन्यां सन्तति: पुत्रपौत्रिकी ॥

वृक्षारोपण के उद्देश्य से जब एक छोटे से बीज का रोपण किया जाता है, और वह छोटा सा बीज धीरे- धीरे एक विशाल वृक्ष में परिवर्तित हो जाता है , समय के साथ-साथ उस पर विविध शाखाएं, पत्ते, फूल और फल शोभायमान होने लगते है । इस विश्व के सम्पूर्ण प्राणी अपनी विविध प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन्ही वृक्षों का उपयोग करते है और वृक्ष परोपकार और विनम्रता की शिक्षा देता हुआ मानव- मात्र के लिए सर्वस्व प्रदान करता है । यथोक्तम -

"निजहिताय फलन्ति न वृक्षका: ।।"

अन्यच्च -

" भवन्ति नम्रास्तरव: फलोद्गमै: ॥"

जैसा कि आप जानते ही है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता तो सम्पूर्ण रूप से वृक्षों पर ही आश्रित थी । वृक्षों की लकडी का प्रयोग भारतीय गृह निर्माण तथा भोजन निर्माण में करते थे । वृक्षों से प्राप्त होने वाले फल उदरपूर्ति का साधन थे । वृक्षों के पत्ते वल्कल वस्त्रों के रूप में प्रयुक्त होते थे । इसके अतिरिक्त भारतीय नारियां भी विविध सौन्दर्य-प्रसाधनों के लिए वृक्षों पर ही आश्रित थी । कालिदास ने "अभिज्ञानशाकुन्तलम् " में कहा है कि किसी वृक्ष ने शकुन्तला को चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेश्मीवस्त्र, किसी वृक्ष ने पैरों को रंगने के लिए लाक्षारस, किसी वृक्ष ने कलाई तक उठे हुए सुन्दर किसलयों की प्रतिस्पर्धा करने वाले आभूषण दिए है । यथोक्तम-

" क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरूणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसु भगो लाक्षारस: केनचित् ॥
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-

र्दत्तान्याभरणानि न: किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्दिभि: ॥"

इसी प्रकार से कालिदास नें मेघदूत में अलकानगरी की स्त्रियों का वर्णन करते हुए कहा है कि अलकापुरी वधुओं के हाथ में लीलाकमल, कुन्तल,केशों में नवकुन्द, मुख पर लोध्रपुष्प के पराग कणों से शुभ्रकान्ति, जूडे में नवीन कुरबक, कानों में शिरीष के पुष्प और मांग में तुम्हारे आने से उत्पन्न कदम्ब के फूल है । यथोक्तम् -

" हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धम् ।
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री: ।।
चूडापाशे नवकुरबकं चारुकर्णे शिरीषं ।
सीमान्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम ॥"

इस प्रकार से भारतीय परम्परा में आरम्भ से ही वृक्षों की प्राणी मात्र के साथ पारस्परिकता दिखाई देती है ।हमारी जनश्रुतियों, लोक विश्वासों और साहित्य में वृक्षों को अपार स्नेह और श्रद्धा भाव से देखा गया है । पूजा के लिए फलों, बिल्वपत्रों, आम्रपत्रों, दूर्वा, कुश, चन्दन, समिधा आदि का प्रयोग सामान्य सी बात है । हमने ग्रहों के साथ देवी-देवताओं के साथ वृक्षों को जोड़ा है । कृष्ण का नाम आते ही कदंब का स्मरण हो आता है ।अशोक को कामदेव का वृक्ष माना जाता है, जनश्रुति है कि वह सुंदरियों के पाद प्रहार से खिलता है । कमल का संबंध विष्णु, ब्रह्मा, और वाग्देवी से है । बिल्वपत्र का संबंध शिव से है, पीपल के पेड़ पर यक्ष का वास माना जाता है । तुलसी को तो विष्णु-पत्नी के रूप में मान्यता प्राप्त है, वृक्षों के महत्व को रेखांकित करते हुए स्वयं कृष्ण ने गीता में बहुमूल्य रत्नों के स्थान पर पत्र-पुष्प-फल की कामना करते हुए कहा है—

" पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।"

इस प्रकार से वृक्षों के महत्व को जानकर ऋषियों ने अनेकत्र वृक्षारोपण की चर्चा की है और वृक्षों को काटने का निषेध किया है । यथोक्तम् -

" शिरीषेऽभूत सहस्राक्षो निम्बे देवप्रभाकर: ।
स तु तन्मयतां यातस्तस्मात्तं न विनाशयेत् ॥"

इस प्रकार से वृक्षों में इंद्र, ब्रह्मा, सूर्य, आदि देवों का वास माना गया है । ऐतरेय ब्राह्मण में तो वृक्षों को ही प्राण कहा गया है यथोक्तम् -

" प्राणो वै वनस्पति: ॥"

वृक्षों के इसी महत्त्व को जानकर भारतीय वास्तुशास्त्र के विविध ग्रंथों में गृह में वृक्षारोपण की चर्चा की गई है । केवल गृह ही नहीं नगर,उद्यान, राजभवन का उद्यान,

देवालय का उद्यान, राजपथ के विविध उद्यानों की चर्चा भी विविध वास्तु-विन्यासों में वृक्षों के महत्त्व को स्पष्ट करती है। श्रीमद्भागवत महापुराण और विविध पुराणों में विविध उपवनों से युक्त द्वारकापुरी, चंदन वन से युक्त अमरावती, उद्यान एवं वापी युक्त व्रज का रासमंडल, श्रीपुर का महा-उद्यान, नागकेसर से युक्त जमदग्निपुरी, उद्यान युक्त वाराणसी, आम्रवन से युक्त अयोध्या तथा वन-उपवन से सुशोभित लंकापुरी आदि का वर्णन प्राचीन नगरों में उद्यानों के महत्व को रेखांकित करता है। आधुनिक काल में भी विभिन्न नगरों में स्थित विविध पार्क नगरों में उद्यानों के महत्त्व के द्योतक हैं। इसी प्रकार से राज भवनों में भी वाटिकाओं का उल्लेख है, जैसे अयोध्या की अशोक वनिका तथा लंका की अशोक वाटिका आदि। वास्तु ग्रंथों में इन वाटिकाओं की संज्ञा क्रीडा-वाटिका है। राज भवन के वाम भाग या दक्षिण भाग में वाटिका निर्माण का सिद्धांत है जो कि १०० दंड, २०० या ३०० दंड माप की होती है। इसके मध्य में जल यंत्रों से युक्त धारा मंडप होता है।

" वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां त्रेधा कार्या वाटिका क्रीडणार्थम्।
एकद्वित्रिदण्डसंख्याशतं स्यान्मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः॥"

इस क्रीडावाटिका में चंपा, कुंद, चमेली, श्वेतगुलाब, नारंग, वसन्तलता, लालपुष्प, जम्बीरी, नीम्बू, बेर, सुपारी, महुआ, आमबेल, केला, चन्दन, बरगद, पीपल, आमला, इमली, अशोक, कदम्ब, नीम, खजूर, अनार, कपूर, अगरु, किंशुक, जायफल, नागबेल, अंगूर, इलायची, शतावरी, मौलसिरी, पारिजात, चंपक आदि वृक्षों के रोपण का विधान है। मंदिर में भी वाटिका का विधान है क्योंकि देवता प्राकृतिक वातावरण में ही मुदित होते हैं -

"रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ।।"

अतः यदि प्राकृतिक रूप से देवालय का निर्माण पर्वतों, नदियों और वृक्षों के समीपस्थ ना हो पाए तो कृत्रिम उद्यानों का निर्माण देवालय परिसर में करना चाहिए। देवालय के पूर्व भाग में फलदार वृक्ष, दक्षिण में क्षीर वाले वृक्ष, पश्चिम में कमल पुष्प से युक्त जलाशय तथा उत्तर में सरल (चीड) एवं ताल वृक्ष तथा पुष्प वाटिका का निर्माण करना चाहिए तद्यथा-

" पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीर वृक्षास्तु दक्षिणे
पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोपलविभूषितम।
उत्तरे सरलैस्तालैः शुभा स्यात पुष्पवाटिका॥"

6.4.1. गृह समीप वृक्षादि विवेचन

जैसा कि आप जानते है कि गृहवाटिका का गृह में महत्वपूर्ण स्थान है । भारतीय वास्तुशास्त्र में वाटिका या उद्यान रहित गृह अपूर्ण ही माना जाता है, क्योंकि वास्तुशास्त्र का विषय ही गृह में प्राकृतिक तत्वों का संतुलन करना है । गृह के निकट वृक्षारोपण का उद्देश्य गृह में प्राकृतिक वातावरण प्रदान करना ही है । आज के इस युग में जब मनुष्य अति तीव्र वेग से प्रत्येक कार्य को संपन्न करना चाहता है और इस हेतु वह अत्याधुनिक तकनीकों का प्रयोग कर रहा है। यह तकनीकें मानव को तात्कालिक सुविधा तो प्रदान करती हैं, परंतु पर्यावरण को अत्यन्त दूषित कर रही हैं, जिसके कारण आज का मानव स्वच्छ वायु के लिए तरस रहा है । आज के इस युग में बढ़ती हुई जनसंख्या और घटती हुई भूमि प्राकृतिक संसाधनों का स्वार्थ भाव से दोहन पर्यावरण को तो प्रदूषित कर ही रहा है, मानव को भी अनेक प्रकार से शारीरिक और मानसिक रोगों को भी प्रदान कर रहा है । आज के युग में विज्ञान की हर शाखा में “पर्यावरण” शुद्धि को केंद्र में रखकर प्रत्येक प्रयोग किया जा रहा है । भवन निर्माण में भी “पर्यावरण- शुद्धि” अत्याधुनिक युग का एक यक्ष प्रश्न बन गया है । आज ऐसे भवनों के निर्माण पर चिंतन हो रहा है जो पर्यावरण के सहयोगी हों न कि विरोधी । यह चिन्तन नया नहीं है । भारतीय वास्तुशास्त्र के विविध ग्रंथों में विविध वृक्षों के रोपण का उपदेश किया गया है , जो पर्यावरण को शुद्ध करते हैं । इतना ही नही वृक्षारोपण का अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से चिन्तन करते हुए रोपणीय और वर्जनीय वृक्षों की भी चर्चा की गई है कि कौन से वृक्ष किस दिशा में लाभप्रद और किस दिशा में हानिप्रद है, इस प्रकार का सूक्ष्म चिन्तन भी वास्तु ग्रन्थों में प्राप्त होता है । प्रस्तुत इकाई में गृह के समीप विविध रोपणीय और वर्जनीय वृक्षों की चर्चा की जाएगी और विविध वृक्षों के महत्त्व को भी रेखांकित किया जाएगा । सर्वप्रथम तुलसी के वृक्ष पर हम चर्चा करेंगे-

1. **तुलसी-**

“ यावद्दिनानि तुलसी रोपितापि गृहे वसेत् ।
तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे स महीयते ॥”

तुलसी का अपर नाम वृन्दा भी है । तुलसी का महात्म्य सभी वनस्पतियों में सर्वाधिक है । यह औषधीय गुणों से युक्त दिव्य पादप है, इसका महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि सूर्य-चंद्रग्रहण के समय सभी खाद्यान्नों में तुलसी पत्र के डालने मात्र से ग्रहण की विकिरणों का प्रभाव शून्य हो जाता है व खाद्य पदार्थ अशुद्ध नहीं होता ।भगवान विष्णु की पूजा तुलसी दल के बिना सम्पूर्ण नहीं होती । वास्तु शास्त्र की दृष्टि से तुलसी का पौधा पूर्व,उत्तर या ईशान कोण में प्रशस्त है । गृह के

मध्य में कोई भी वृक्ष,चाहे वह सुवर्ण का ही वृक्ष क्यों न हो,उसके रोपण का निषेध करते हुए कहा है। तद्यथा -

" अपि हेममयान् वृक्षान् वास्तुमध्ये न रोपयेत् ॥"

परञ्च तुलसी का पौधा ऐसा है, जिसका रोपण विशेष रूप से आंगन में ब्रह्मस्थलपर प्रशस्त है-

" रोपयेत् तुलसीवृक्षं सुखदं ह्यजिरे बुधै: ॥"

तुलसी के कण-कण में समाया हुआ रोगनाशक तत्त्व हवा के झोंको के स्पर्श से निकलकर आस-पास के वायुमंडल में फैल जाता है और भवन में रहने वालों के अनेक रोगों को दूर करता हुआ सकारात्मकता को बढ़ाता है।

2. **अश्वत्थ-**

"अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणाम् ॥"

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि सभी वृक्षों में मैं अश्वत्थ का स्वरूप हूं । इसी से इस अश्वत्थ वृक्ष का महत्त्व ज्ञात होता है ।यह सभी वृक्षों में पवित्र माना गया है, इसकी पूजा की जाती है, पीपल में एक महत्वपूर्ण गुण है कि यह वातावरण में व्याप्त दूषित गैसों को नष्ट करने के लिए ऑक्सीजन छोड़ता रहता है । इस वृक्ष की शीतलता सर्वाधिक प्रिय मानी जाती है, इसका अपर नाम "चल" है । जिस समय वायु का प्रवाह नहीं होता और अन्य वृक्षों के पत्ते स्थिर होते हैं, उस समय भी इस वृक्ष के पत्ते हिलते रहते हैं। इस वृक्ष का महत्त्व इसी से ज्ञात होता है, कि पीपल को काटना ब्रह्महत्या के समान माना जाता है ।इस वृक्ष की जडें जमीन में दूर दूर तक फैली होती हैं इसलिए इस वृक्ष को घर में लगाने का निषेध है । घर से बाहर पश्चिम दिशा में इस वृक्ष का रोपण शुभ है। यथोक्तम्-

" अश्वत्थवृक्षं दिशि वारुणस्याम् ॥"

मंदिरों में इस वृक्ष का रोपण प्रशस्त माना जाता है। अश्वत्थ वृक्ष आग्नेय कोण में कदापि नहीं होना चाहिए, ऐसा होने पर यह मृत्यु तथा पीड़ा देता है।

3. **बिल्ब-**

बिल्ब का एक नाम "श्रीफल"भी है । यह वृक्ष भगवान शिव को अत्यंत प्रिय है। यथोक्तम्-

"बिल्ववृक्षं तथा देवि। भगवान शंङ्कर: स्वयम् ॥"

शिवपूजन की पूर्णता तभी होती है जब उनको बिल्बपत्र अर्पित किए जाएं, यह पूज्य होने के साथ-साथ औषधीय गुणों से युक्त वृक्ष है।

यथोक्तम्-

"रोगान् बिलति भिन्नति बिल्ब: ॥"

मंदिर प्राङ्गण में यह वृक्ष अत्यन्त शुभदायक है। यथोक्तम् –

" स्थाप्या मन्दिरपार्श्वपृष्ठदिशि तु श्रीवृक्षबिल्वाभया ॥"

गृह के मध्य में इस वृक्ष के रोपण का निषेध किया गया है और अगर स्वयं ही यह वृक्ष गृह मध्य में उदित हो जाये, तो इसको काटने का निषेध किया गया है।

यथोक्तम्-

"न मध्यप्राङ्गणे वृक्षं स्थापयेत् श्रीफलाख्यकम्।
दैवाद् यदि प्रजायेत् तदा शिववदर्च्चयेत ॥"

यह वृक्ष गृह में सभी दिशाओं में शुभ माना जाता है परन्तु विविध वास्तुग्रन्थों में वायव्य में यह वृक्ष प्रशस्त माना गया है। यथोक्तम्-

"वायव्ये बिल्ववृक्षकम् ॥"

4. **शमी-**

"शमी शमयते पापं शमी शत्रुविनाशिनी।
अर्जुनस्य धनुर्धारी रामस्य प्रियदर्शिनी ॥"

शमी वृक्ष को खेजड़ी या सांगरी नाम से भी जाना जाता है।यह वृक्ष मूलतः रेगिस्तान में पाया जाता है।अंग्रेजी भाषा में इस वृक्ष को "प्रोसोपिस सिनेरेरिया" के नाम से जाना जाता है। इस वृक्ष का संबंध शनि ग्रह से है। इस वृक्ष के नीचे प्रतिदिन नियमित रूप से सरसों के तेल का दीपक जलाने से शनि ग्रह का प्रकोप कम होता है। बिहार, झारखंड आदि राज्यों में हर घर के दरवाजे के दाहिनी और यह वृक्ष लगाया जाता है। इस वृक्ष का रोपण मंदिर प्रांगण में किया जाता है और ग्रह के उत्तर दिशा में वाटिका के बाहर शमी का वृक्ष लगाया जाता है। यथोक्तम्-

"उत्तरे च शमी बाह्ये" ॥

5. **आंवला-**

आंवला को संस्कृत में "अमृतफलम्",आमलकी या धात्रीफल कहा जाता है।

अंग्रेजी में “एब्लिक माइरीबालन” कहते हैं । यह वृक्ष समस्त भारत में पाया जाता है । यह धात्री (माता) के समान मनुष्य के शरीर को पुष्ट करता है, विशेष रूप से यह शरीर में शक्ति को बढ़ाता है । यथोक्तम्-

“ तेनेष्टा बहवो यज्ञास्तेन दत्ता वसुन्धरा: ।
स सदा ब्रह्मचारी स्याद्येन धात्री प्ररोपित: ॥”

इसलिए इस वृक्ष के रोपण का विधान गृह में है ताकि गृह के निवासियों को इस वृक्ष के औषधीय गुणों का लाभ वायु प्रवाह से तथा आंवला फल के सेवन से प्राप्त हो सके।

6. अनार-

अनार को संस्कृत में “दाडिमफल” कहते हैं ।अनार के पेड़ सुंदर और छोटे आकार के होते हैं यह शरीर में रक्त की मात्रा को बढ़ाने वाला फल है । गृह में इस वृक्ष का रोपण अत्यन्त शुभ है ।भारत में यह वृक्ष गर्म प्रदेशों में पाया जाता है अत एव वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में भी इस वृक्ष को आग्नेय कोण में रोपण करने का विधानहै। यथोक्तम्-

“आग्नेय्यां दाडिमं चैव” ।

7. पाकड़-

पाकड़ का एक नाम पिलखन भी है । यह समस्त भारत में बहुतायत से पाया जाता है इस को संस्कृत में प्लक्ष कहते हैं । यह एक हरा-भरा वृक्ष है जो घर के वातावरण को शुद्ध करता है । वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में प्लक्ष (पाकड़) का रोपण उत्तरदिशा में करने का विधान है । यथोक्तम्-

“ प्लक्षोत्तरे रोपयेत् ।”

इस वृक्ष का महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि चार प्लक्ष के वृक्षों के रोपण का फल राजसूय यज्ञ के फल के पुण्य के बराबर है ।
यथोक्तम्-

“ चतुर्णां प्लक्षवृक्षाणां रोपणान्नात्र संशय: ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानव: ॥”

8. वट -

“ वटवृक्षद्वयं मर्त्यो रोपयेद्यो यथाविधि: ।
शिवलोके गमेत्सोऽपि सेवितस्त्वप्सरोगणै: ॥”

इस प्रकार से वटवृक्ष के रोपण का अत्यधिक महत्त्व है । “रुद्ररूपो वट:” वट के वृक्ष का संबंध रुद्र से है । अतः वट के पूजन से भगवान शिव प्रसन्न होते हैं। संस्कृत भाषा में इसका अपर नाम “न्यग्रोध” है । बरगद बहुवर्षीय विशाल वृक्ष है। इसका तना सीधा एवं कठोर होता है । इसकी पत्ती चौड़ी एवं लगभग अण्डाकार होती है । वट, पीपल और नीम के वृक्ष की त्रिमूर्ति को

त्रिवेणी माना जाता है । एक ही स्थान पर इन तीनों वृक्षों का रोपण अत्यंत शुभप्रद है । गृह के बाहर पूर्व दिशा में वटवृक्ष के रोपण का विधान है । यथोक्तम्- " पूर्ववटं प्रशस्तम् ।"

9. निम्ब -

"निम्बत्रयं समारोप्य नरो धर्मविचक्षण:।
सूर्यलोकं समासाद्य वसेदब्दायुतत्रयम् ॥"

निम्ब औषधीय गुणों से संपन्न वृक्ष है ।इसका कीटनाशक व त्वचा संबंधी रोगों में बहुत प्रयोग होता है । यह वृक्ष सम्पूर्ण रूप से अर्थात फल,पत्तियों और छाल आदि के रूप में प्रयोग होता है । निम्ब की दातुन दांतो के लिए अत्यन्त लाभकारी है । निम्ब का पेड़ सूखे के प्रतिरोध के लिए विख्यात है, यह सूखे से प्रभावित क्षेत्रों में छाया देने वाला वृक्ष है। इसके प्रयोग से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है । वास्तुशास्त्र के कुछ आचार्यों के मत में नीम वृक्ष घर के समीप होना शुभ है परंतु "मनुष्यालयचंद्रिका" नामक वास्तु ग्रंथ में नीम के वृक्ष को "सहिजन" संज्ञा प्रदान की गई है और उसका रोपण घर से बाहर करने का निर्देश किया गया है ।

10. आम्र -

" पञ्चाम्रशाखिणाम् षण्णां य: कुर्यात्प्रतिरोपणं ।
गारुडं लोकमासाद्य मोदते देववत्सदा ॥"

जो व्यक्ति पांच या छ: आम्र-वृक्षों का रोपण करता है, वह देवताओं के साथ प्रसन्नता से रहता है । आम के फल को भारत का राष्ट्रीय फल माना जाता है और बांग्लादेश में आम का पेड़ राष्ट्रीय पेड़ है । संस्कृत भाषा में इसका नाम आम्र है । वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में गृह में आम के पेड़ का रोपण किस दिशा में किया जाए ? इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है । गृहवाटिका में आम के वृक्षारोपण का निर्देश प्राप्त होता है, जिसके अनुसार आम्रवृक्ष का रोपण गृहवाटिका में ईशानकोण एवं पूर्व के बीच में करना चाहिए । यथोक्तम्-

" पनसश्च तथाम्रश्च प्रशस्तौ शम्भुपूर्वयो: ।"

गृहवाटिका के मध्य में भी आम्रवृक्ष के रोपण का विधान है । यथोक्तम्-

" मध्ये तथाम्रान्विविधप्रकारान् ।"

11. उदुम्बर-

"उदुम्बरद्रुमानष्टौ रोपयेत्स्वयमेव य: ।
प्रेरयेद्रोपणायापि चन्द्रलोके स मोदते ॥"

जो व्यक्ति उदुम्बर के आठ वृक्षों का रोपण करता है तथा उदुम्बर वृक्ष के रोपण के लिए प्रेरित भी करता है वह चन्द्रलोक को प्राप्त करता है । इस वृक्ष को हिंदी भाषा में गूलर कहते हैं, इसका सम्बन्ध चन्द्र से है अतः यह एक शीतल वृक्ष है । यह वृक्ष गर्भ-हितकारी है ।गृह वाटिका में इसका रोपण दक्षिण दिशा में वास्तुसम्मत है ।

यथोक्तम्-

" उदुम्बरं दक्षिणभागके च ।"

"मनुष्यालयचन्द्रिका" नामक वास्तु ग्रंथ में भी गूलर का रोपण दक्षिण दिशा में प्रशस्त कहा गया है। तद्यथा-

"अवाच्यां तथोदुम्बरः ।"

12. इमली -

इमली का वृक्ष धीरे-धीरे बड़ा होता है । इमली के पेड़ में कई औषधीय गुण हैं । शरीर के कई रोगों में यह वृक्ष उपकारक है । गृह वाटिका में इमली के वृक्ष का रोपण नैर्ऋत्यकोण में करने का निर्देश है । यथोक्तम्-

"नैर्ऋत्ये चिञ्चिणीद्रुमान् ।"

इस प्रकार से आपने समझा कि उपरोक्त वृक्ष गृह में किस दिशा में रोपणीय है तथा किस दिशा में वर्जनीय है ।इसके अतिरिक्त भी अनेक वृक्ष हैं जिनका घर में रोपण किया जाता है और कुछ वृक्ष ऐसे भी है,जो वर्जित हैं । वृक्षारोपण में त्याज्य और ग्राह्य वृक्षों का एक सामान्य सिद्धांत बताते हुए कहा है कि जिन वृक्षों को काटने पर उनमें से दूध निकलता हो ऐसे दूध-युक्तवृक्ष, कांटेदार वृक्ष घर के समीप अशुभ फलकारक हैं चाहे वे वृक्ष फल और फूल देने वाले ही क्यों न हो, उन्हें घर में नहीं लगाना चाहिए अर्थात् ऐसे वृक्षों को त्याग दें । घर में शुभ संकेत वाले वृक्षों को ही लगाएं जैसे- तुलसी, अशोक, चंपा, चमेली, गुलाब, केला, जाति, केवड़ा आदि । दिन में एक प्रहर बीत जाने पर यदि घर के ऊपर किसी वृक्ष की छाया पड़े तो वह अशुभ फलदायक है । ब्रह्मा के मंदिर के पास में, विष्णु, सूर्य और शिव के मंदिर के सामने, जैन- मंदिर के पीछे और देवी के मंदिर के किसी भी भाग में घर का निर्माण न करें, क्योंकि वह गृहपति के लिए अरिष्टकारक है ।

यथोक्तम्-

" वृक्षा दुग्धसकण्टकाश्चफलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरत: ।
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी ।।
यामादूर्ध्वमशेष वृक्षजनिता छाया न शस्ता गृहे ।
पार्श्वे कस्य हरे रवीशपुरतो जैनानुचण्डया: क्वचित् ॥"

इन वृक्षों का रोपण यदि गृह में किया जाए तो गृहजनों को अशुभ फलों का भोग करना पड़ता है । दूध-युक्त वृक्ष घर के समीप हो तो धन का नाश करते हैं, कांटेदार वृक्ष शत्रु-भय, फलदार वृक्ष संतान की हानि तथा स्वर्ण वर्ण वाले फूल भी घर के समीप होने पर अशुभ फल को प्रदान करते हैं ।

यथोक्तम्-

" सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतम् ।
प्रजाविनाशं फलिन: समीपे गृहस्य वर्ज्या: फलधौतपुष्पा: ॥"

इस प्रकार से आपने इस इकाई में समझा कि गृह-समीप वृक्षारोपण वास्तुशास्त्र में कितना महत्वपूर्ण विषय है। वास्तुसम्मत वृक्षों के रोपण से गृहजनों को शुभफलों की प्राप्ति होती है तथा वास्तु विरुद्ध वृक्षों का रोपण गृह में कई अशुभ फलों को प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

१३. वृक्षारोपण एक .... कार्य है।

१४. वृक्ष मानव को .... की शिक्षा देते हैं।

१५. प्राचीन भारतीय सभ्यता ....पर ही आश्रित थी।

१६. कदम्ब का सम्बन्ध .... से है।

१७. बिल्ब का सम्बन्ध ....से है।

१८. तुलसी गृह में .... वृक्ष है।

१९. अश्वत्थ गृह में .... वृक्ष है।

२०. सदुग्ध वृक्ष गृह में .... हैं।

6.5. सारांश

आज के इस युग में, जब मानव पर्यावरण- प्रदूषण की समस्या से जूझ रहा है और भवनों के निर्माण के लिए असंख्य वृक्षों की कटाई की जा रही है। ऐसे समय में पर्यावरण- अनुकूलगृह का निर्माण अत्यावश्यक हो गया है। पर्यावरण की शुद्धि में वृक्षों का सर्वाधिक महत्त्व है और गृह को पर्यावरण- अनुकूल बनाने के लिए इन वृक्षों का रोपण गृह में किया जाता है। वास्तुशास्त्र के विविध ग्रंथों में गृह में रोपणीय तथा वर्जनीय वृक्षों की चर्चा की गई है। इसलिए वृक्षारोपण करते समय केवल वास्तुसम्मत वृक्ष ही गृह में अथवा गृह के आस-पास लगाने चाहिए और वर्जनीय वृक्ष नहीं लगाने चाहिए। वास्तुशास्त्र के विविध ग्रंथों में ऐसे वृक्ष जिनको काटने पर उन में से दूध निकलता हो, कांटेदार वृक्ष, और फलदार वृक्ष गृह मे नहीं लगाने की चर्चा की गई है अत: इन वृक्षों का रोपण गृह में नहीं करना चाहिए।

6.6 . पारिभाषिक शब्दावली

१.) पर्यावरण- हमारे चारों और का वातावरण

२.) शहरीकरण- शहरों का विस्तार

३.) तरव: - वृक्ष

४.) समिधा – हवन की लकडी

५.) प्राण- जीवन का कारण प्राणवायु

६.) अश्वत्थ- पीपल का वृक्ष

७.) उदुम्बर- गूलर का वृक्ष

6.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-१ की उत्तरमाला

१४) सत्य

१५) सत्य

१६) सत्य

१७) असत्य

१८) असत्य

अभ्यास प्रश्न- २ की उत्तरमाला

१३) धार्मिक

१४) परोपकार

१५) वृक्षों

१६) कृष्ण

१७) शिव

१८) रोपणीय

१९) वर्जनीय

२०) वर्जनीय

6.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क) बृहत्संहिता, सं० अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १९५९

ख) बृहद्वास्तुमाला, सं० रामनिहोर द्विवेदी , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – २००१

ग) वास्तुरत्नाकरः, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

घ) राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् , सं० श्रीकृष्ण जुगनू , परिमल पब्लिकेशन,दिल्ली,२००५

ङ) समराङ्गणसूत्रधारः, सं० एवं अनु० पुष्पेन्द्र कुमार , न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन , दिल्ली - २००४

च) विश्वकर्मप्रकाशः, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई – २००२

छ) वृक्षायुर्वेद :, सं० एवं व्या० श्रीकृष्ण जुगनू , चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी – २००१

6.9. सहायक ग्रन्थ सूची

क) चतुर्वेदी, प्रो० शुकदेव, भारतीय वास्तुशास्त्र, श्री ला० ब० शा० रा० सं० विद्यापीठ, नई दिल्ली- २००४

ख) त्रिपाठी, देवीप्रसाद, वास्तुसार, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली – २००६

ग) शर्मा, बिहारीलाल, भारतीयवास्तुविद्या के वैज्ञानिक आधार, मान्यता प्रकाशन, नई दिल्ली – २००४

घ) शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीयवास्तुशास्त्र, शुक्ला प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ – १९५६

ङ) शास्त्री, देशबन्धु, गृहवास्तु – शास्त्रीयविधान, विद्यानिधि प्रकाशन, नई दिल्ली – २०१३

6.10. निबन्धात्मक प्रश्न

(१) पर्यावरण क्या है ? विस्तार से वर्णन करें।
(२) पर्यावरण- प्रदूषण की समस्या पर प्रकाश डालें।
(३) पर्यावरण- शुद्धिकरण में गृह की भूमिका स्पष्ट करें।
(४) “ वृक्षों का महत्त्व ” इस विषय पर निबन्ध लिखें।
(५) गृह समीप रोपणीय वृक्षों पर निबन्ध लिखें।
(६) गृह समीप वर्जनीय वृक्षों पर निबन्ध लिखें।